Paper II

Unit-1 -Ancient Poetry

1. कबिरदास

जन्म : सन् 1398 **मृत्यु : सन् 1518**

कबीरदास के धर्मपिता का नाम नीरू तथा माता का नाम नीमा था। जाति के वे जुलाहा थे। अपने इस व्यवसाय को वे इतनी अधिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते थे कि मृत्युपर्यत इसीके द्वारा अपनी आजीविका चलाते रहे। जाती-पाँति की दीवार को तोड़कर सबको अपनी भक्ति-परंपरा में सम्मिलित करनेवाले स्वामी रामानंद के वे शिष्य थे।

उनकी समस्त कृतियाँ तीन भागों में विभक्त हैं --- साखी, पदावली (सबद) और रमैनी। 'साखी' में दोहे और कहीं एकाध सोरठे भी हैं जिनमें अनेक उपदेशप्रद बातें कही गयी हैं। 'पदावली' में बह्याडंबरों के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है तथा ब्रह्म, जीव और माया के रहस्यात्मक वर्णन के साथ भगवत्प्रेम की पराकाष्ठा दिखायी है। 'रमैनी' में हम उनके सिद्धांतों के सिवाय उपदेश, गुरु और राम-संबंधी भजन तथा योग, सत्संग और कर्तानिर्णय तथा कर्ता के स्वरूप-संबंधी अनेक पद हैं।

उनके काव्य में हृदयपक्ष की प्रधानता है। काव्य-कला की दृष्टि से देखते पर उनके पद्य काव्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। यहाँ तक कि अनेक दोहे पिंगल के नियमों के प्रतिकूल हैं, पदों का भी यही हाल है। पर भाव, प्रेम और भक्ति की दृष्टि से उनकी कृतियाँ अनुपम हैं। हिन्दी साहित्य में व्यंग्यात्मक शैली के सर्वप्रथम आविष्कर्ता वे ही हैं। उनकी रचनाओं में 'बीजक' मुख्य है।

साखी

सीलवन्त सबतें बडा, सर्व रतन की खानी।

तीन लोक की सम्पदा, रही सील में आनि।।1।।

शीलवान अर्थात सच्चरित्र पुरुष ही समस्त मानवों में श्रेष्ठ है। वही सब गुण - रूपी रत्नों का भण्डार है; क्यों कि शील, सदाचार या सच्चरित्रता में ही तीनों लोकों की सारी सम्पत्ति आकर बसी हुई है। अब तक संसार में जितने महापुरुष हुए, वे सब शीलवान या सच्चरित्र रहे हैं। शील के अभाव में मनुष्य मनुष्य नहीं कहलाता। 'चरित्र गया तो सब कुछ गया' कथन का भाव भी यही है।

छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।

कहा वष्णु को घटि गयो, ली भृगु मारी लात।।2।।

क्षमा एक महान् गुण है जो महापुरुषों में रहता है, छोटे अर्थत समान्य अथवा निम्न प्रवृत्तिवाले लोग उनकी निंदा आदि के द्वारा उनको कष्ट पहुँचाते हैं। लेकिन महापुरुष उनके प्रति क्रोध नहीं करते, बल्कि क्षमा कर देते हैं। इस प्रकार क्षमा कर देने से उस सहापुरुष की महत्ता और भी बढ़ जाती है। इस बात के समर्थन में कवि कबीरदास भगवान विष्णु और महार्षि भृगु का दृष्टांत देते हैं। जब महार्षि भृगु ने भगवान विष्णु के वक्षपर लात मारी तो, भगवानने महार्षि के इस अपराध की क्षमा कर दी जिससे विष्णु की मरत्ता त्रिमूर्तियोंमें बढ़ गयी। वे श्रेष्ठ माने गये।

एक बार ऋषि-मुनियों की सभा में चर्चा छिड़ी कि त्रिमूर्तियों में कौन श्रोष्ठ हैं? ऋषि-मुनियों ने निर्णय का भार महर्षि भृगु को सौंपा। भृगु पहले सत्यलोक में गये, जब वहाँ ब्रह्मा अपनी पत्नी सरस्वती के साथ एकान्त में थे। उस समय भृगुको वहाँ देखर कृद्ध हुए और शाप देने तैयार हुए। उसके बाद भृगु कैलास पर्वत पर पहुँचे। उस समय भगवान शिव और पार्वती एकान्त में थे। असमय में भृगु को वहाँ देखकर भगवान शिव भी कृद्ध हुए और उनपर त्रिशूल का प्रयोग करने उघुक्त हुए। तत्पश्चात वहाँ से निकल कर भृगु वैकुंठ में भगवान विष्णु के मंदिर में गये जहाँ लक्ष्मी-नारायण सरस-सल्लाप में थे। महर्षि का स्वागत - सम्मान नहीं हुआ। महर्षि गुस्से में आ गये और भगवान विष्णु के वक्ष पर लात मारी। भृगु के इस कार्य से विष्णु कृद्ध नहीं हुए उलटे उनके पाँव पकड कर अपनी असावधानी के लिए क्षमा मांगने लगे। इस प्रकार अपने शान्त और क्षमा गुण के कारण भगवान विष्णु त्रिमूर्तियों में श्रेष्ठ माने गये।

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।

दोऊ हाथ उलीचिये, यह सज्जन कौ काम।।3।।

नाव में बैठकर यात्रा करते समय अगर नाव में पानी आ जाय तो तुरंत दोनों हाथों से उलीचकर बाहर फेंक देना चाहिए। अन्यथा नाव के साथ यात्रिभी पानी में डूबकर मर जाता है। उसी प्रकार घर में अगर द्रव्य अर्थत धन अधिक संचित हो जाय तो उसको सत्पात्र लोगों में वितरित कर देना चाहिए। यही सज्जन का कार्य है, अन्यथा वह लोभी कहलायगा। लोभी का जीवन इह और पर दोनों दृष्टियों से व्यर्थ हो जाता है। यही उसका डूब जाना है। लोभ को पास फटकने न देना और त्याग को अपनाना यह सज्जन का एक महान गुण है।

हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देहु।

अक़ल बड़ी उपकार कर, जीवन को फल येहु।।4।।

उत्तम कुल में जन्म लेने मात्र से कोई कुलीन न होता, धन-संचय करने मात्र से कोई धनी नहीं कहलाता, उसी प्रकार पढ़-लिखकर बुद्धि को तीव्र बनाने से कोई बुद्धिशाली नहीं बनता। अतः कबीरदास कहते हैं कि अगर तुम अपने को कुलीन समझते हो तो भगवद्भजन करो, अपने को धनी मानते हो तो दूसरों को कुछ दो और अपने को अकलमंद मानते हो तो परोपकार करो। क्योंकि हरिभजन, त्याग तथा परोपकार-चिंता ये ही सफल जीवन के लक्षण हैं। दूसरे शब्दों में हरि-भजन ही कुलीनता है, त्याग ही धनवत्ता है ओर परोपकार ही बुद्धिमत्ता है।

चाह गयी चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।

जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह।।5।।

मनुष्य को इच्छा ही संसार के अंदर बांधे रखती है। अगर उसकी इच्छा या तृष्णा मिट जाय, अर्थात वह तुष्णारहित हो जाय तो उसे किसी बात की चिन्ता या फ़िक्र नहीं होगी। तब उसका मन बेफ़िक्र हो जायगा, स्वच्छंद हो जायगा, वह जिवन्मुक्त हो जाएगा, क्यों कि जिसे किसी बात की आकांक्षा नहीं रहती, वही सर्वोपरि साम्राट है।

रूखा सूखा खाइकै, ठंड़ा पानी पीव।

देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावे जीव।।6।।

संतों का एक बड़ा गुण है 'तुप्ति'। उन्हें जो चीज़ अनायास, सहज मिल जाती है, उसी में तृप्त रहते हैं। परायी धन-संपत्ति की चाह वे मन में भी नहीं करते। लेकिन साधारण साधकों की मन :- स्थिति ऐसी नहीं होती। इसलिए कबीरदासजी समझाते हैं, --- अपनी जो रूखी - सूखी रोटी है उसी को खाकर, ठण्ड़ा पानी पीकर तृप्त हो जाना। घी से बनी हुई पराई रोटी की लालच मत करना।

माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं।

तिनते पहले वे मरे, होत करत जो नाहिं।।7।।

कोई व्यक्ति किसी से कुछ माँगने अर्थत याचना करने जाता है तो समझना चाहिए कि वह मर गया। है। क्यों कि जो मर गया हो वही मांगने जाता है। लेकिन इन मांगनेवालों से पहले उनको मृत समझना चाहिए जो उनको कुछ देने से इनकार करते हैं।

पहली बात यह है कि याचना वृत्ति एक नीच वृत्ति है। जिसमें आत्म-सम्मान की भावना किंचिन्मात्र भी हो वह याचा नहीं करता। आत्मसम्मान खो बैठना ही याचक की मृत्यु है। अतः किसी को माँगने अर्थत याचना करने नहीं जाना चाहिए। दूसरी बात यह है कि उस मृतप्राय याचक से भी बदतर आदमी वह है जो याचक को

कुछ नहीं देता, उसे निराश कर लौटा देता है। मतलब है, हमें दूसरे से कुछ नहीं माँगना है, और कोई हमसे कुछ माँगता है तो लोभवंश इनकार नहीं करना चाहिए। कुछ न कुछ देकर संतुष्ट करना चाहिए।

माँगन मरन समान है, मत कोइ माँगो भीख।

माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख।। 8।।

माँगना आर्थात आत्मसम्मान को खोकर किसी से भीख माँगना और मरना - इन दोनों में कोई भेद नहीं है। माँगना माने मरना ही है। अतः किसी से कोई भीख मत मांगो। अगर मांग कर खाये बिना जीवित रहना संभव नहीं हो, तो भी सद्‌गुरु की शिक्षा यह है कि माँगकर पेट भरने से बिना खाये मरना ही अच्छा होगा।

मरी जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।

परमारथ के कारे, मोहि न आवै लाज ।। 9 ।।

कबीरदासजी अपने बारे में कहते हैं कि यदि मैं भी जाऊँ तब भी अपने शरीर को बचाने के लिए किसी से कुछ नहीं माँगूगा। क्योंकि माँगने से बढ़कर नीच वृत्ति दूसरी नहीं है। ऐसा होते हुए भी परमार्थ के लिए अर्थत साधु-संतों अथवा दीन-दुखियों की सहायता के लिए आवश्यकता पड़े तो मुझे किसी से कुछ माँगने में लज्जा नहीं होगी। भाव यह है कि व्यक्तिगत लाभ के लिए जो अनुचित है, वही कार्य अधिकांश लोगों की भलाई के लिए किया जाता है तो पवित्र बन जाता है।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।

माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।। 10 ।।

हे मन! धीरे-धीरे (आहिस्ता-आहिस्ता) काम कर। धीरे-धीरे करने पर ही सब काम परे होंगे। चाहे माली पेड़ की जड़ में हर रोज़ सौ घड़े पानी डाले, फिर भी जब फल का मौसम आता है तभी फल मिलते हैं। हर एक कार्य के पूरे होने और फल देने का समय होता है। समय आने पर ही किसा काम का परिणाम सामने आता है। महत्वाकांक्षा में जल्दबाजी या अति करने से कोई लाभ नहीं होगा।

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।

पल में परलै होयगा, बहुरि करैगो कब्ब।। 11 ।।

अच्छे काम करने में आलस्य नहीं करना चाहिए। इसलिए कबीरदास कह रहे हैं कि जो काम कल करना है उसे आज ही करो और जो काम आज करना है उसे अभी करदो। क्योंकि अगले क्षण में क्या घटेगा यह कोई नहीं जानता। हो सकता है कि अगले क्षण प्रलय हो जाय और फिर तुम्हें वह अच्छा काम करने के

लिए समय ही नहीं मिले। भगवद् भजन, दीन-दुखियों की सेवा, सज्जन-सांगत्य आदि अच्छे कामों के अंतर्गत आते हैं। ऐसे उत्तम कार्यों को आलस्यवंश आगे के सामय के लिए छोड़ देना उचित नहीं है। उन्हें जल्दी से जल्दी पूरा करने से ही ऐहिक और पारलौकिक लाभ प्राप्त हो सकेगा। अन्यथा विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होंगी, और फिर उन्हें करने का मौका ही नहीं मिलेगा।

या दुनिया में आइकै, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जाति है पैंठ।।12।।

जब तू इस दुनिया में आ ही गया है अर्थात तूने मनुष्य - जन्म पाया है तो सारा घमंड़ अर्थात धन, यौवन, शारीरिक बल, विद्या और अधिकार के कारण उत्पन्न अहंकार छोड़ दे और समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ मानव के रूप में पैदा होकर यहाँ से जितना ले सकेगा उतना ले ले। अर्थात जन्म हित के लिए जितनी साधना कर सकता है कर दे। अन्यथा न जाने कब यह बाजार उठ जायगा? जीवन समाप्त हो जायेगा।

समस्त जन्मों में मानव - जन्म श्रेष्ठ है. इस जन्म को लेकर मनुष्य को चाहिए कि भक्ति और ज्ञान की साधना के द्वारा मुक्ति प्राप्त कर ले। लेकिन लोग ऐहिक सुखों के लोभ में पड़कर आध्यात्मिक साधना नहीं करते। भक्ति, ज्ञान, सत्सांगत्य आदि से दूर रहते हैं जिससे जन्म व्यर्थ हो जाता है। घमंड़ अर्थात अहंकार साधना में सबसे बड़ा रोड़ा बनता है। अहंकर छोड़कर समर्पण भाव से भक्ति करने पर ही परमार्थ प्राप्त हो सकेगा।

दोष पराये देखिकै, चलै हसन्त हसन्त।
आपन याद न आवई, जिनका आदि न अन्त।। 13 ।।

मनुष्य का स्वभाव है, दूसरों के दोषों को देखकर हँसना। लेकन ऐसा हँसनेवाले अपने दोषों की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते। इस प्रकार के लोगों का उपहास करते हैं कबीरदास इस दोहे के द्वारा।

पराये लोगों के अवगुणों को देखकर हँसते-हँसते चलते हो, उनका उपहास करते हो। लोकिन तुम जरा अपनी ओर देख लो, न जाने कितनी बुराइयाँ तुममें हैं! अगर तुम अपने दोषों की गिनती करने लगोगे तो तुम्हें न उनका आदि मिलेगा और न अंत मिलेगा।

चलन चलन सब कोई, मोहि अंदेशा और
साहब से परिचै नहीं, पहुँचेगे किहि ठौर।। 14 ।।

सब लोग परमात्मा के पास चलने के लिए कहते हैं। पर मुझे कुछ और ही आशंका है। उन लोगों का साहब से अर्थात परमात्मा से बिलकुल परिचय नहीं है। ऐसी परिस्थिति में वे किस जगह पहुंचेगे? साधक को चाहिए कि सही साधना के द्वारा परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करे। तभी वह सफल हो सकेगा।

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहा अँगार को, जाहि चकोर चबाय।। 15 ।।

इस दोहे में कबीरदास जी गाढ-प्रेम अर्थात शुद्ध भक्ति का स्वरूप समझाते हैं।

जिसकी किसी के साथ लगन लगी होती है - सच्चा प्रेम होता है - तो वह छूटती नहीं है। अन्यथा अंगार में ऐसा क्या मीठापन है कि चोंच और जीभ के जलने की परवाह किये बिना चकोर पक्षी उसे चबाता है। चकोर पक्षी अंगार को फल समझकर उसे खाने का प्रयल करता है। उस प्रयत्न में उसकी चोंच और जिभ जलती हैं। तो भी वह अंगार को छोड़ता नहीं। इस बात को कवि लोग गहरे-प्रेम के वर्णन के संदर्भ में उदाहृत करते रहते हैं। यह एक कवि-समय है। यहाँ कबीरदास ने भगवान के प्रति सच्चे प्रेम के वर्णन के संदर्भ में उसी कविसमयका उपयोग किया है। (जो बाते प्राचीनकाल से कवियों के वर्णनों में मिलती हैं, आजकल हमें देखने को नहीं मिलतीं, उन्हें 'कवि-समय' कहते हैं।)

2. सूरदास

जन्म : सन् 1483 (लगभग) **मृत्यु : सन् 1563**

सूरदास के प्रारंभिक जीवन के संबन्ध में कुछ विशेष सामग्री प्राप्त नहीं हेती। वल्लभाचार्य से भेंट होने के पहले वे गऊघाट पर नवधा भक्ति में से दास्य भक्ति को अंगीकार कर विनय-संबंधी पदों की रचना किया करते थे। वल्लभाचार्य से भेंट होने पर उनके आदेश से सूरदास ने श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना प्रारंभ किया। वे अंधे थे और उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन शास्त्र-श्रवण, चिंतन, भगवान का कीर्तन, कीर्तन के अनुरूप विविध विषयक पदों की रचना और संतों की मर्यादा के अनुकूल परिभ्रमण करने में व्यतीत किया। भक्ति के निरूपण में उन्होंने वासुदेव-परंपरा में प्रचलित पौराणिक घटनाओं का कहीं-कहीं आश्रय लिया है।

उनकी रचनाओं में 'सूरसागर' प्रसिद्ध है। सूरसागर में श्रीकृष्ण के आसपास की सारी सृष्टि भी उन्हें अपना सखा मान उनकी प्रत्येक लीला में भाग लेती है। कवि ने राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों का जो वर्णन किया है, उसमें मानव-हृदय के सूक्ष्म उद्गार हैं, और मानव की बचपन से वृद्धावस्था तक की सब प्रकार की वृत्तियाँ भी छिपी हैं। उन्हें पढ़ने से मनुष्य का हृदय सुख-दुख के भावों से स्पंदित होता रहता है। पाठक श्रीकृष्ण

के हँसने के साथ हँसता है, उनके रोने के साथ रोता है और उनकी शृंगारिक चेष्टाओं में रागात्मिका वृत्ति का अनुभव करता है।

सूर-द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण अपने मानवीय रूप को छोड़ अतिमानव और कहीं-कहीं अलौकिक रूप को धारण करते हैं।

भवन

(1)

चरण-कमल बंदौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कछु दरसाई।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुणामय, बार-बार बन्दौं तेहि पाई।।

विद्वानों ने सूरदास के चुने हुए प्रमुख पदों का विभाजन विनय, बाललीला, रूपमाधुरी, मुरली माधुरी और भ्रमरगीत -- इन पाँच शीर्षकों के अंतर्गत किया है। प्रस्तुत पद विनय से संबंधित है। विनय का अर्थ है प्रार्थना; अर्थात भक्त का आत्मोद्धार के लिए इष्टदेव के प्रति भक्तिपूर्वक किया जानेवाला निवेदन। इसमें भक्त अपने को सांसारिक क्लेशों से पीडित, अनेक अवगुणों से युक्त और ईश्वर को सर्वशक्तिमान, करुणामय और समदर्शी प्रभु मानता है और उद्धार की याचना करता है।

मैं सूरदास, प्रभु हरि के चरण-कमलों की वंदना करता हूँ। जिनकी कृपा से लंगड़ा पर्वत पर चढ़कर उतर सकता है, अंधे को सब कुछ दिखाई देता है, बहरा सुन सकता है, गूँगा बोल सकता है, गरीब भिक्षुक सिरपर छत्र-धारण करवाकर चलता है, अर्थात छत्रधारी राजा बनता है, ऐसे उन चरणों का प्रणाम मैं बार-बार करता हूँ। तात्पर्य यह है कि सूरदास के प्रभु अघटन-घटना समर्थ हैं। कृपालु हैं। भक्त के विष्य में असंभव बातें को भी संभव बना देते हैं। चरण-कमल-चरण रूपी कमल, हरिराई-हरि रूपी राजा दोनों में रूपक अलंकार है।

(2)

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।
महामोह को नूपुर बाजत निंदा शब्द रसाल।
भरम भये मन भयो पखावज चलत कुसंति चाल।

तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।

माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दै भाल।

कोटिक कला काछि दिखरायी, जल थल सुधि नहिं काल।

सूरदास की सबै अविद्या दूर करौ नंदलाल।।

आध्यात्मिक क्षेत्र में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य को अरिषड्वर्ग कहते हैं। ये छः भाव साधक के मन में रहते हैं और हमेशा उसे साधाना-मार्ग से भ्रष्ट करते रहते हैं। इन भावों से प्रेरित व्यक्ति सत्य को जान न पाने के कारण असत्य को अर्थात संसार को सत्य मान बैठता है और विषय सुखों में आसक्त होता है। जैसा कोई नट तरह-तरह की वेष-भूषा पहनकर पैंतरे बदलते हुए नाचता है उसी प्रकार जीव भी माया (आविद्या, अज्ञान) के वशीभूत होकर जन्म-मरण रूपी चक्र में चलते हुए एक-एक जन्म में एक-एक शरीर धराण कर अंत में मनुष्य-जन्म प्राप्त करता है। इस जन्म में आकर वह समझ गया कि अब तक मैं आरिषड्वर्ग के वशीभूत होकर माया जैसा नचाती रही वैसा नाचता रहा। अब मैं नाचूँगा नहीं। भगवान की कृपा से माया या अविद्या को दूर करके मोक्ष की साधना में लग जाऊंगा। इन्हीं बातों को सूरदासजी ने सांगरूपक अलंकार के माध्यम से इस पद में व्यक्त किया है।

हे गोपाल! सृष्टि के आरंब से लेकर अब तक मैं एक नट की तरह नाचता रहा, किन्तु आगे मैं नाचूँगा नहीं। नट के रूप में मैंने काम और क्रोध रूपी चोला पहना, गले में विषय सुखों की माला डाल ली, पैरों में महामोह रूपी घुंघरु बांध ली। परनिंदा रूपी मधुर गीत गाता रहा। संसार को सत्य मानकर भ्रमित मन रूपी मृदंग बजता रहा। दुर्जन-संगत्य रूपी चाल (पैंतरा बदलना) चलता रहा। शरीर के अंदर तृष्णा नानाविध ताल देती रही। माया रूपी वस्त्र को कमर में लपेट कर बाँध लिया, माथे पर लोभ गुण को ही तिलक के रूप में धारण किया और नाचता रहा। पानी में और भूमि पर न जाने कब से नाचता रहा, काल का स्मरण ही न रहा। यह सब मैं अविद्या (अज्ञान) के कारण करता रहा। हे नंदपुत्र, मेरी यह सारी अविद्या दूर करो।

साधना क्षेत्र में कहा जाता है कि जीवों की संख्या 84 लाख है। हर एक जीव को इन सभी जन्मों से होकर गुजरना पड़ता है। मनुष्य जन्म अंतिम है, अतः इस जन्म में भक्ति, ज्ञान आदि के द्वारा जन्मराहित्य कर लेना चाहिए। अन्यथा फिर से अनेक जन्म ग्रहण करने पडेंगे।

(3)

छाँडि मन हरि विमुखन को संग

जाके संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग।

कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग।

खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अंग।

पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग।

'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजौ रंग।।

सूरदास अपने मन से दुर्जन-सांगत्य छोड़ देने को कहता है। जो भगवान से विमुख है अर्थात जो भगवान को नहीं मानता वही दुर्जन-खल है।

हे मन! जो भगवान से विमुख रहता है उसका सांगत्य छोड़ देना। जिसके साथ रहने से दुर्बुद्धि पैदा होती है और भगवद्भजन में विघ्न पड़ता है, उसका संग छोड़ देना ही चाहिए। कह सकते हो कि अपने सांगत्य से उसमें परिवर्तन लाऊँगा। उसको हरिभक्त बनाऊँगा। लेकिन यह संभव नहीं है। क्या कौए को कर्पूर खिलाने से वह सफेद बनेगा? कुत्ते को गंगा में नहाने से क्या वह पवित्र बनेगा? गधे के बदन पर चंदन आदि सुगंध-द्रव्य लगाने से क्या फायदा होगा? बंदर के अवयवों में आभूषण पहनाने से क्या वह सुदर दिखेगा? नहीं। ये सभी प्रयत्न जैसे व्यर्थ हो जाते हैं, वैसे ही दुष्ट को सज्जन बनाने का तेरा प्रयत्न भी व्यर्थ हो जाएगा। अगर कोई धनुर्धारी पत्थरपर तीर छोड़ता है तो वह तीर पत्थर को तोड़ता नहीं, उलटे अपनी इस मूर्खता के कारण वह धनुर्धारी अपनी तरकस को ही खाली कर लेता है। हे मन! याद रखो, दुर्जन काली कंबल के बराबर है। उस पर दूसरा रंग चढ़ता नहीं। अर्थात दुर्जन कभी भी सज्जन नहीं बन सकेगा।

(4)

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।

समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।

इक नदिया इक नार कहावत मैलो नीर भरो।

जब दोऊ मिलि एक भरन भये सुरसरि नाम परो।

इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।

पारस गुन अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो।

यह माया भ्रमजाल कहावै 'सूरदास' मगरो।

अबकी बार मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो।।

भगवान शरणागत रक्षक है। भगवान की प्रतिज्ञा है कि जो कोई अनन्य भाव से मेरी शरण में आयेंगे उनके गुण और अवगुणों पर ध्यान न देकर मैं उनको अपना लूंगा। उनका उद्धार करूँगा। भगवान भक्त के

अनन्य भाव को ही देखता है, अतः वे समदर्शी हैं। उनकी इस प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाकर सूरदास भगवान से कहते हैं, मेरे भी अवगुणों पर ध्यान न देकर मेरा उद्धार करो, अन्यथा तुम्हारी प्रतिज्ञा झूटी हो जायगी।

हे प्रभु! मेरे अवगुणों पर ध्यान न दो। तुम्हारा नाम समदर्शी है। अपने इस नाम को सार्थक बनाना चाहते हो तो मेरा उद्धार करो। देखो, एक प्रवाह है जिसे नदी कहते हैं। दूसरा है नाला, जिस में गंदा पानी भरा हुआ है। यह नदी, वह नाला जब एक में मिल जाते हैं, गंगा नदी में मिलकर एकाकार धारण करते हैं, तब उसका 'सुर सरिता' (देवलोककी पवित्र नदी) नाम पड़ता है। इसी प्रकार दो लोहे की वस्तुएँ हैं जिनमें एक पूजागृह में रखी गयी है और दूसरी कसाईखाने में। लेकिन पारस मणि इन दोनों में फ़रक नहीं करता। छूते ही दोनों को खालिस सोना बना देता है। छोड़ दीजिए इन सब बातों को, क्यों कि तर्क-वितर्क की ये बातें माया या भ्रमजाल कही जाती हैं। मेरी बिनती यही है कि अब की बार मेरा उद्धार करो, अन्यथा तुम्हारी प्रतिज्ञा असत्य हो जायगी। निदर्शना अलंकार है।

(5)

जसोदा हरि पालने झुलावै
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न बेगि ही आवै, तोको कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत है, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि, करि करि सैन बतावै।
इहि अन्तर अकुलाइ रहे हरि, जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ, सो नंद भामिनि पावै।।

यह पद श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के वर्णन से संबंधित है। यशोदा हरि-कृष्ण को हिंड़ोले में लिटाकर झुला रही है। हिलाती हुई, दुलार करती हुई ओर प्रेम से हाथ फेरती हुई कोई लोरी गा रही है। वह गा रही है, ओ निंदरिया (निद्रा शब्द का ग्रामीण उच्चारण) मेरे प्यारे बेटे पर आ, क्यों न आकर सुलाती है? क्यों न जल्दी आती है? तुझे कान्ह (कृष्ण) बुला रहा है। माता यशोदा इस तरह लोरी गा रही है कि कृष्ण कभी पलकें मूंद लेता है और कभी ओंठ फड़काता है। इस तरह सोने की मुद्रा में आता है। कृष्ण को सोता देखकर यशोदा गाना बंद करती है और इशारों के द्वारा दूसरों को बताती है। लेकिन इतने में ही श्रीकृष्ण गाना सुनाई न पड़ने से व्याकुल होता है। यह देखकर तुरंत यशोदा मधुर स्वर में गाने लगती है। माँ-बेटे के इन करतूतों पर कविवर

सूरदास कहते हैं कि जो सुख अमरों (दिवताओं) तथा मुनियों के लिए भी दुर्लभ है वह एक मामूली गोपालक नंद की पत्नी प्राप्त कर रही है। यह भक्ति के कारण है। स्वभावोक्ति अलंगार है। वात्सल्य और विस्मय भाववर्णन है।

(6)

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो।
मोसों कहत मोल को लीना तू जसुमति कब जायो।
कहा कहौं इस रिस के मारे, खेलन-हौं नहिं जातु।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तुम्हारो तातु।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तुम कत श्याम सरीर।
चुटकी दै-दै हँसत बाल सब, सिखै देत बलबीर।
तू मोही को मारन सीखी, दाउहिं कबहु न खीजै।
मोहन को मुख रिससमेत लखि, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
'सूरस्याम' मो गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।।

यह कृष्ण की बाललीला से संबंधित पद है। शिशु कृष्ण अब बालक बन गया। वह दूसरे बालकों के साथ खेलों में भाग लेने लगा। खेलते-खेलते न जाने बालकों में स्पर्धा, ईर्ष्या, असूया आदि कितने भाव पैदा होते हैं। बालक कृष्ण के साथ भी यही बात हो गयी। दूसरे बालकों के साथ भी यही बात हो गयी। दूसरे बालकों के साथ उसका झगड़ा हो गया। झगड़े में उसका बड़ा भाई बलराम भी उन लड़कों के साथ हो गया। सब मिलकर कृष्ण को खिजाने लगे। कृष्ण इसकी शिकायत माँ यशोदा से करता है।

माँ! मुझे भैया ने बहुत खिजाया है। वह मुझ से कहता है कि तू मोल लिया हुआ लड़का है; यशोदा ने तुझे कब जन्म दिया? क्या कहूँ? इस गुस्से के कारण मैं खेलने नहीं जाता हूँ। वह बार-बार कहता है, तेरी माता कौन है? तेरा पिता कौन है? नंद और यशोदा तेरे माता-पिता नहीं हो सकते। जब नंद गोरा है और यशोदा भी गोरी है तब तुम क्यों श्याम-शरीर के हो? बलवीर ये बातें बालकों को सिखा देता है और वे सब चुटकी बजा-बजाकर हँसते हैं। तूने तो मुझ ही को मारना सीखा है, भैया पर कभी गुस्सा नहीं करती। कृष्ण ये बातें गुस्से के साथ कहता था। मोहन (गृष्ण) के गुस्से से भरे मुख से इन बातों को सुनकर यशोदा का मन

आनंद से भर जाता था। उसने कहा --- ''कृष्ण! सुनो, बलभद्र चुगलखोर है, वह जन्मतः ही धूर्त है। मेरी गायों की कसम है; मैं माँ हूँ और तू पुत्र है। वात्सल्य रस का सुंदर उदाहरण है यह पद।''

(7)

चोरी करत कान्ह धरि पाये।
निसि वासर मोहि बहुत सतायो, अब हरि हाथहिं आये।
माखन दधि मेरो सब खायो, बहुत अचगरी कीन्हीं।
अब तौ फन्द परे हो लालन, तुम्हौं भले मैं चीन्हीं।
दोउ भुज पकरि कह्यौ कित जैहौ, माखन लेउ मँगाई।
तेरी सौं मैं नेकु न चाख्यो, सखा गये सब खाई।
मुख तन चितै विहँसि हँसि दीनी, रिस तब गयी बुझाई।
लियो उर लाइ ग्वालिनी हरि को, 'सुरदास' बलि जाई।।

बालकृष्ण की माखनचोरी-लीला से संबंधित है यह पद। एक गोपी के द्वारा कृष्ण माखन की चोरी करते रंगे-हाथ पकड़े पये। लेकिन कृष्ण ने उस पर अपना मोहजाल कैसे फैलाया? इसका मोहक वर्णन यहाँ हमें मिलता है।

कृष्ण माखन की चोरी करते हुए पकड़े गये। गोपी कहती है - तूने मुझे रात-दिन बहुत सताया है। अब मेरे हाथ में आ गये हो। मेरा सारा दही और माखन खाकर तूने बहुत शरारत की है। अब मेरी पकड़ में आ गये। मैंने तुम्हें भली-भाँति पहचान लिया है। दोनों भुजाएँ पकड़ कर वह कहती है ---- तू कहाँ जायगा? सारा माखन वापस मंगा लूँगी। (तब कृष्ण कहता हैं) तेरी कसम, मैने जरा भी चखा नहीं। सब मित्र लोग खा गये। यह कहकर उसने उस गोपी के मुख की ओर देखा और देखकर मुसकराते हुए हँस दिया। बस, गोपी का सारा गुस्सा बुझ गया। उसने हरि को अपने हृदय से लगा लिया और इस प्रकार स्वयं उस पर कुरबान हो गयी। वात्सल्य भाव का सुंदर उदाहरण है।

(8)

मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो।
भोर भये गैयन के पाछे, मधुवन मोहि पठायो।
चार पहर बंसीबट भटक्यो, साँझ परे घर आयो।

मैं बालक बहियन को छोटो, छीको केहि विधि पायो।

ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो।

तू जननी मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायो।

जिय तोरे कछु भेद उपजि है, जान परायो जायो।

यह ले अपनी लकुटि कमरिया, बहुतहिं नाच नचायो।

'सूरदास' तब विहँसि जसोदा, लै उर कंठ लगायो।

कृष्ण माखनचोरी करते पकड़े गये। उसके मुँह पर दही - माखन के छींटे लगे हुए हैं। इस अवस्था में गोपिकाएँ उसे यशोदा के सामने ले आयीं और शिकायत की। तब भी कृष्ण यशोदा के सामने अपनी सफाई देता है। तर्कपूर्ण युक्तियों से अपने को निर्दोष साबित करना चाहता है। यशोदा संदेह करती है तो ऐसा गुस्सा प्रकट करता है, उसे फटकारता है जिससे यशोदा को हार मानना पड़ता है। नटनागर कृष्ण का चातुर्य और माता यशोदा का वात्सल्य देखते ही बनता है।

ओ मेरी माँ, मैंने माखन नहीं खाया है। सबेरा होते ही तुम ही ने तो मुझे गायों के पीछे भेजा है। मैं चारों पहर - दिन भर वंशीवट के चारों ओर भटकता रहा और संध्या होने पर घर आया। मेरे पास माखन की चोरी करने का समय ही कहाँ है? इतना ही नहीं, मैं छोटा-सा बालक, जिसकी बाँहें इतनी छोटी हैं, छीके को कैसे पा सकता हूँ? (छीके पर रखी चीजें केसे ले सकता हूँ?) मेरे मुख पर दही-माखन के ये छींटे इसलिए लगे कि सब ग्वाल बालक मुझ से दुश्मनी रखते हैं जिससे उन्होंने जबरदस्ती इन्हें पोत दिया है। माँ! तू मन की बड़ी भोली है जिससे तू ने इनकी बातों पर विश्वास किया, या मुझे पराया बच्चा जानकर तेरे मन में कुछ भेदभाव पैदा हुआ है। तब तो यह लो अपनी लाठी और कमली। मैंने तुझे बहुत तंग किया है। आगे तंग नहीं करूँगा। सूरदास कहते हैं, तब यशोदा हँस पड़ी और उसे (कृष्ण को) उठाकर हृदय और कंठ से लगा लिया।

(9)

प्रेति करि काहू सुख न लह्यो।

प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यो।

अलिसुत प्रीति करी जलसुतसों, संपति हाथ गह्यो।

सारंग प्रीति करी जो नाद सों, सन्मुख बान सह्यो।

हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछुक कह्यो।

'सूरदास' प्रभु बिनु दुख दूनो, नैननि नीर बह्यो।।

यह पद भ्रमर गीत प्रसंग से संबंधित है. प्रेम में वियोग का दुःख छिपा रहता है। यह वियोग-दुःख असह्य होता है। यहि बात गोपिकाएँ उद्धव से कहती हैं जो कृष्ण का संदेश लेकर उनके पास आया था।

प्रेम करके किसी ने सुख प्राप्त नहीं किया है। पतंग ने दीपक से प्रेम किया तो अपने प्राण जला डाले। भ्रमर ने कमल से प्रेम किया तो सके हाथ कौन सी संपत्ति लगी? कुछ भी नहीं लगी, उलटे उसे रातभर कमल में बंदी रहना पड़ा। हरिणने संगीत से प्रेम किया तो उसे क्या मिला? छाती में तीर के लगने से प्राण देने पड़े। उसी प्रकार जो हमने भी माधव से प्रेम किया तो हमें क्या मिला? यहाँ से चलते वक्त कृष्ण हमसे कुछ बोले बिना ही चले गये। अब भी स्वयं आने के बदले उन्होंने संदेश कहकर भेजा जिससे हमारा दुःख दुगुना हो गया है। सूरदास कहते हैं, ऐसा कहते हुए उनकी आखों से पानी निकल पड़ा।

लोक में पसिद्ध है कि पतंग प्रेम के कारण दीपक पर गिरकर मरता है, भ्रमर कमल के मुकुल में बंदी बन जाता है और संगीत -प्रेम के कारण हिरण भागना छोड़ देता है जिससे वह मार दिया जाता है। ये सब कविसमय हैं। यह पद अर्थान्तरन्यास अलंकार का अच्छा उदाहरण है।

(10)

सब जग तजे प्रेम के नाते।
चातक स्वाति-बूँद नहिं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते।
समुझत मीन नीर की बातें, तजत प्राण हठि हारत।
जानि कुरंग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि व्याध सर मारत।
निमिष चकोर नैन नहिं लावत, ससि जोवत जुग बीते।
ज्योति पतंग देखि वपु जारत, भये न प्रेमघट रीते।
कहि अलि, क्यों बिसरति वै बातैं, संग जो करि ब्रजराजै।
कैसे 'सूरस्याम' हम छाँडैं, एक देह के काजै।।

प्रेमी लोग प्रेम के नाते सब जगत छोड़ देते हैं किन्तु प्रेम को छोड़ते नहीं। चातक पक्षी स्वाति की बूँद नहीं छोड़ता, सारा जल छोड़कर वह उसीका नाम लेकर पुकारता रहता है। मीन - मछली पानी की बातें समझती है, अर्थात वह जानती है कि पानी उससे प्रेम नहीं करता, तब भी वह पानी से प्रेम करती है, अतः पानी से अलग होते ही हठ करके प्राण दे देती है। कुरंग - हरिण यद्यपि यह जानता है कि नाद सुनते खड़े रहने से व्याध बाण से मारेगा, तो भी वह वंशीनाद से अपना प्रेम नहीं छोड़ता। चंद्रमा से प्रेम करनेवाला चकोर युगों तक उसकी बाट जोहता रहता है किन्तु आँखों पर पलक अने नहीं देता। अर्थात सोता नहीं। दीपक पतंग से

प्रेम नहीं करता। वह पतंग का शरीर जला डालता है, किन्तु पतंग के प्रेम का घड़ा कभी भी रिक्त नहीं होता। हे अलि! भ्रमर! कह, हमने व्रजराज के साथ जो बातें की थीं उन्हें हम कैसे भुला देतीं? अपनी एक देह के लिए हम श्याम को कैसे भूलेंगी? भाव यह है कि चाहे कृष्ण हम से प्रेम करें या न करें, चाहे हम मर जायँ हम अपना प्रेम छोड़ती नहीं।

(11)

ऊधो, मन-माने की बात।
दाख छोहरा छाँड़ि अमृतफल, विषकीरा विष खात।
जो चकोर को देइ कपूर कोइ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ में, बँधत कमल के पात।
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपक सो लपटात।
'सूरदास' जाको मन जोसों, सोई ताहि सुहात।

हे उद्धव! प्रेम व्यक्ति की अपनी पसंद की बात है। अर्थत प्रेम का कारण अज्ञात होता है। विष का कीड़ा अंगूर, खजूर आदि अमृत जैसे फल छोड़कर विष ही खाता है। कारण कोई नहीं जानता। उसी तरह अगर कोई चकोर पक्षी को कर्पूर खिलाना चाहता है और उसे देता है तो क्या वह अंगार को छोड़कर तृप्त होता है? नहीं! भोरे को दिखिये, वह काठ में छेद करके अपना घर बना लेता है, लेकिन वही कमल के पत्तों में बंदी बन जाता है। जैसे पतंग उससे प्रेम न करनेवाले दीपक से प्रेम करता है ओर उससे जाकर लिपटता है जिसे वह जल मरता है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जिसका मन जिससे लगता है वही उसे अच्छा लगता है। इसलिए हमको कृष्ण अच्छा लगा तो हमारा मन उसकी ओर सहज रूप से आकृष्ट हो गया। मन को उससे हटाना असंभव है। उदाहरण अलंकार।

3. तुलसीदास

जन्म : सन् 1532 **मृत्यु : सन् 1623**

तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। उनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। पत्नी की ओर उनकी अत्यंत आसक्ति थी । एक बार इसी आसक्ति के कारण वे उसके पीछे पागल होकर बिना सूचना दिये ही यकायक ससुराल पहुँच गये। पत्नी को उनका वहाँ आना बहुत बुरा लगा। उस समय उसने अत्यंत दुखी हो उद्‌बोधन-रुप में उन्हें कुछ वाक्य कहे। पत्नी का यह उद्‌बोधन कवि के लिए संजीवनी सिद्ध हुआ। उनका, पत्नी की ओर का यह अत्यधिक झुकाव, यकायक

सार्वजनिक प्रेम में रूपांतरित हुआ। पत्नी की ओर की अपनी वासना-जन्य आसक्ति को अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त राम की ओर मोड़कर वे संन्यासी हो घर से निकल पड़े।

तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। उन्हें वे सर्वस्व मानते थे और उन्हीं पर उनका अटल विश्वास था। अपनी इस अविचल श्रद्धा के कारण ही उन्होंने वैदिक काल के वाङ्मय से लेकर अपने समय तक के प्रायः सब ग्रंथों का अनुशीलन, परिशीलन और अध्ययन किया। उस अध्ययन तथा चिंतन के परिणामस्वरूप उन्होंने वाल्मीकि से भिन्न स्वतंत्र रुप से रामचरितमानस की रचना की । उनका यह ग्रंथ वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण की तरह हिन्दी साहित्य का एक विराट ग्रंथ है। इसके कारण ही वे आज प्रत्येक पाठक के श्रद्धाभान बने हुए हैं।

रमचरितमानस के अतिरिक्त उन्होंने रामलला नहछू, रामगीतावली, कृष्णगीतावली, रामाज्ञा प्रश्नावली, कवितावली, विनयपत्रिका, पार्वतीमंगल आदि अनेक ग्रंथों की रचना की।

केवट - प्रसंग

यह रामचरितमानस के आयोध्याकाण्ड का प्रसंग है। श्रीरामचंद्र सीता और लक्ष्मणके साथ श्रृंगबेरपुर पहुँचे। निषादराज गुहने उनका आदर-सत्कार किया। रामने भाई और पत्नीके साथ गंगा नदी के किनारे एक वृक्षके नीचे रात बितायी। सबेरे गंगा पार करने तीर पर आये।

चौपाई ---- माँगी नाव केवट अना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन-कमल-रज कहुँ सब कहई।
मानुष करनि मूरि कुछ अहई।।

श्रीरामने केवटसे नाव माँगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा - मैंने तुम्हारा भेद (रहस्य) जान लिया। तुम्हारे चरण कमलोंकी धूलिके लिए सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है। रामचन्द्र की चरण-धूलिके स्पर्शसे पाषाण-सदृश पड़ी हुई अहल्या पुनः चेतन-युक्त हो गयी। इसी बात का स्मरण दिलाता है, केवट।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन तें न काठ कठिनाई।
तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई।
बाट परइ मोरि नाव उडाई।।

जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुन्दर स्त्री बन गयी। मेरी नाव ते काठ की है। काठ पत्थर से कठोर होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जायेगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जायेगी तो मैं लुट जाऊँगा। अथवा रास्ता रुक जायगा जिससे आप नदी पार न हो सकेंगे और मेरा कमाने - खाने का रास्ता मारा जायगा।

एहिं प्रतिपालउँ सब परिवारू।
नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू।
मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।

मैं तो इसी नाव से सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ। दूसरा कोई धंधा नहीं जानता हूँ। हे प्रभु! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरण कमल प्रक्षालन करने (धोने) के लिए कह दो।

छंद---पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं।
बरु तीरु मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं।।

हे नाथ! मैं आपके चरण-कमल धोकर ही आप लोगों को नाव पर चढ़ा लूँगा। इस कामके लिए मैं आपसे भाड़ा नहीं चाहता। हे राम! मुझे आपकी दुहाई है. आपके पिताजी दशरथकी सौगंध है, मैं सच-सच कहता हूँ। लक्ष्मण भले ही मुझे तीरसे मारे, (केवट के इनकार करते देख शायद लक्ष्मण में क्रोध के लक्षण दिखे होंगे) पर जबतक मैं पैरोंको धो न लूँगा, तब तक हे तुलसीदास के नाथ! हे कृपालु! मैं पार नहीं उतारूँगा।

भक्त तुलसीदास ने अपने काव्यनायक राम का चित्रण सर्वत्र परमात्माके रूप में ही किया था। राम चरित मानस के अन्य कई पात्र श्रीराम को परमात्मा के रूप में ही देखते हैं और खुले तौर पर अपनी भक्ति प्रकट करते हैं। केवट भी ऐसा ही एक पात्र है जो अवसर का सदुपयोग कर अपने जीवन का उद्धार कर लेना चाहता है। केवट यद्यपि अपढ़, अशिक्षित मल्लाह है किन्तु अपने व्यवसाय के लिए आवश्यक चतुराता भी रखता है। इसीलिए वह अपनी कामना को तर्कपूर्ण शब्दों में दृढ़ता-पूर्वक राम के सामने रखता है। केवट एक गँवार है किन्तु वह भक्त है, निड़र है, अपनी बात को कैसे कहना है, अच्छी तरह जानता है। ये सारी विशेषताएँ उसके वचनों से प्रकट होती हैं।

सोरठा ---- सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।

बिहँसे करुना ऐन, चितइ जानकी लखन तन।।

केवट के प्रेम से सने हुए भोलेभाले शब्द सुनकर दयानिधान श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण की ओर देखकर हँसे।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई।

सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई।

बेगि आनु जल पाय पखारू।

होत बिलंबु उतारहि पारू।।

कृपा के समुद्र श्रीरामचन्द्रजी केवटसे मुसकराकर बोले - भाई, तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाय। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। देर हो रही है, पार उतार दे।

जासु नाम सुमिरत एक बारा।

उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।

सोइ कृपासु केवटहि निहोरा।

जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा।।

श्रीराम केवट जैसे एक साधराण व्यक्ति की बात मान गये, इस पर कविवर तुलसीदास अपनी व्याख्या कर रहे हैं, इस चैपाई में :-

एक बार जिसका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भव-सागरके पार उतर जाते हैं, और जिन्होंने (वामनावतार में) समस्त जगत को तीन पगसे भी छोटा कर दिया था, वही कृपालु, श्रीरामचन्द्रजी गंगा नदी से पार उतारनेके लिए केवटका निहोरा कर रहे हैं। भाव यह है कि भगवान भक्त पराधीन है। वह भक्त की इच्छा पूरा करनेमें छोटे-बड़े का ख्याल नहीं रखता। वामनावतार में भगवान ने पृथ्वी ओर आकाश को दो ही पगों में नाप दिया था।

पद नख निरखि देवसरि हरषी।

सुनि प्रभु वचन मोहँ मति करषी।

केवट राम रजायसु पावा।

पानि कठवता भरि लेइ आवा।।

प्रभु के इन वचनों को सुनकर देवसरिता गंगा की बुद्धि मोह से खिंच गयी कि ये साक्षात भगवान होकर भी पार उतारने के लिए केवट से अनुनय कर रहे हैं। परन्तु समीप आनेपर अपनी उत्पत्ति के स्थान पदनखों को देखते ही वह हर्षित हो गयी। गंगा समझ गयी कि भगवान नर लीला (मनुष्य की तरह आचरण) कर रहे हैं, इससे उसका मोह नष्ट हो गया और यह विचारकर हर्षित हो गयी कि इन चरणों का स्पर्श प्राप्त करके मैं धन्य होऊँगी। केवट श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर कठौते में पानी ले आया।

पुराणों के अनुसार गंगा नदी भगवान विष्णु के चरणों से उत्पन्न हुई है। इसीलिए उसे 'विष्णुपादोद्भवा' कहते हैं।

अति आनंद उमगि अनुरागा।
चरन सरोज पखारन लागा।
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।
एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं।।

अत्यंत आनंद और प्रेममें उमँगकर केवट भगवानके चरण-कमल धोने लगा। इस दृश्यको देखकर देवताओंने फूल बरसाये और वे उसके भागय पर ईर्ष्या करने लगे। कहने लगे कि इस के बराबर कोई पुण्यराशि नहीं है।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितरु पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।

केवट चरणों को धोकर और सारे परिवार सहित स्वयं जल (चरणोदक) पीकर उस महान पुण्य के द्वारा अपने पितरों को भवसागरसे पारकर फिर आनंदपूर्वक प्रभु श्रीरामचंद्रजी को गंगा नदी के पार ले गया।

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता।
सीय रामु गुह लखन समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा।
प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।।

सीता, राम गुह और लक्ष्मण सब नाव से उतरकर गंगा नदी की रेत पर खड़े हो गये। तब केवट ने उतर कर दण्डवत् प्रणाम किया। उसको दण्डवत् प्रणाम करते देखकर प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं।

पिय हिय की सिय जाननिहारी।

मनि मुँदरी मन मुदित उतारी।

कहेउ कृपाल लेहि उतराई।

केवट चरन गहे अकुलाई।।

पति के हृदय की बात जाननेवाली सीताने प्रसन्न मनसे अपनी रत्नजिटित अंगूठी अँगुलीसे उतारी। कृपालु रामचंद्रजीने केवटसे कहा नावकी उतराई लो। कोवटने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिये। राम और लक्ष्मण मात्र ही राजसी पोशाक और आभूषण छोड़कर वनक्ल पहने वन में गये। लेकिन सीता दशरथ की अज्ञा के अनुसार आभूषणोंके साथ ही वन गयी। रामायण से यह बात स्पष्ट होती है। अतः यहाँ शंका नहीं करनी चाहिए कि सीता के पास मुँदरी कहाँ से आयी।

नाथ आजु मैं काह न पावा।

मिटे दोष दुख दारिद दावा।

बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।

आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।।

श्रीरामचन्द्र केवट को मजूरी देने लगे तो उसने कहा - हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया! मेरे सब दोष, दुःख, दरिद्रता की आग आज बुझ गयी है। मैंने बहुत समय तक मजदूरी दे दी। ''दोष दुख तारिद दावा'' मैं रूपक अलंकार है।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें।

दीनदयाल अनुग्रह तोरें।

फिरती बार मोहि जो देबा।

सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा।।

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।

बिदा कीन्ह करुनायतन भगति विमल बरु देइ।।

शब्दार्थ :- करुनायतन -करुना के धाम, बरु - वर।

प्रभु श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता तीनों ने बहुत आग्रह किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणाधाम श्रीरामचंद्र जी ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे बिदा किया।

4. मीराबाई

जन्म: सन् 1498 **मृत्यु: सन् 1546**

मीराबाई का जन्म मेड़ता (राजस्थान) में हुआ था। वह रत्नसिंह की पुत्र और राव दूदाजी की पौत्र थीं। उनका विवाह उदयपुर के महाराण भोजराज के साथ हुआ था, जो विवाह के कुछ समय बाद ही अचानक काल-कवलित हो गये।

यों तो बचपन से ही नटनागर कृष्ण के प्रति उनकी पूर्ण भक्ति थी। परंतु वैध्व्य के वज्रपात ने उनके हृदय में एक तीव्र वेदना उत्पन्न की, जिसके कारण वे भक्ति में विभोर हो स्वयं गिरिधरमय हो गयीं। कृष्ण के प्रति इस तल्लीनता को देखकर उनके बंधुजनों ने उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया। कहा जाता है कि मार्गदर्शन के लिए उन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को भी पत्र लिखा था। 'जाके प्रिय न राम वैदेही, सो नर छाँडिये कोटि वैरि सम जदपि परम सनेही'---- उत्तर देकर गोस्वामीजी ने उन्हें भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत किया। संत रैदास उनके दीक्षागुरु थे।

मीराबाई हिन्दी की श्रेष्ठ कवयित्री हैं। कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में उनका स्थान सूरदास के बाद आता है। विद्यापति, कबीर सूर और तुलसी आदि भक्त कवियों की तरह उनके पद भी लोगों के कंठहार बने हुए हैं। भाषा से अपरिचित होने पर भी दक्षिणवासी उनके पदों को सुन 'आण्डाल' के पदों की तरह रस का अनुभव करते हैं।

मीरा के गीत उनकी अन्तरात्मा की पुकार हैं। उनमें हृदय की कसक है, वियोगिनी का आर्त-क्रंदन है, आत्मनिवेदन है और मार्मिकता तथा कोपलता का अद्भुत मिश्रण।

मीरा-माधुरी

(1)

मनरे परसी हरि के चरण।
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिन चरण प्रहलाद परसे, इंद्र पदवी धरण।
जिन चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण।
जिन चरण ब्रह्मांड मेट्यो, नखसिखाँ सिरी धरण।
जिन चरण प्रभु परिसि लीनो, तरी गोतम घरण।

जिन चरण कालीनाग नाथ्यो, गोपलीला करण।

जिन चरण गोबरधन धार्यो, इन्द्र को ग्रब हरण।

दासि मीरा लाल गिरिघर, अगम तारण तरण।।

भक्त मीराबाई अपने मन को संबोधित कर कहती है, वह हरि के चरणों का स्पर्श करे। हरि के चरण सुंदर हैं, शीतल हैं, कमल के समान मृदुल हैं और आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन त्रिविध तापों का हरण करनेवाले हैं।मीराबाई और भी कहती हैं, जिन चरणों का स्पर्श करके (भक्तिसे पूजा करके) प्रह्लाद ने इंद्र-पटवी प्राप्त की, जिन चरणों में दृढ़तापूर्वक शरण लेखर धुव ने अपनी रक्षा कर ली, नख से लेकर शिका तक श्री को धारण करनेवाले अर्थात् अत्यंत शोभामय जिन चरणों ने समस्त ब्रह्मांड को (तीन पगों में) नाप दिया, जिन चरणों से प्रभु ने स्पर्श किया तो गौतम महर्षि की पत्नी अहल्या का उद्धार हुआ, जिन चरणों ने गोकुलवासियों के सामने लीला करते हुए कालिय नाग को वश में कर लिया और जिन चरणों ने इंद्र के गर्वापहरण के लिए गोवर्धन पर्वत का धारण किया - दासी मीरा के लाल (प्रियतम) गिरिधर के वे चरण अगम (दुर्लंध्य) संसार-सागर के पार पहुँचानेवाली नौका हैं।

इस पद में उल्लिखित प्रह्लाद, धुव, अहल्या, गोकुलवासी ये सब भगवद्भक्त हैं जिन्होंने अपनी अचंचल भक्ति के द्वारा भगवान् की कृपा प्राप्त की। 'जिन चरण ब्रम्मांड मेट्यो' में वामनावतार की कथा सचित की गयी है। गोवर्धन पर्वत उठाकर इंद्र का गर्वापहरण कृष्ण-लीला से संबंधित है। ये सभी उदाहरण भागवत आदि पुराणों में मिलते हैं।

(2)

बसो मोरे नैनन में नँदलाल।

मोहिनी मूरति साँवरी सूरति, नैन बने बिसाल।

अधर सुधारस मुरली राजति, उर वैजंती माल।

छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपूर सबद रसाल।

मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्तवछल गोपाल।

मीराबाई इस पद में क्षीकृष्ण के रूपसौंदर्य का वर्णन करती हैं और प्रार्थना करती हैं कि वे सद उनकी आंखों में बसे रहें।

हे नंद के प्यारे पुत्र, मेरे नयनों में निरंतर निवास करो। है प्रभु! तुम्हारी अत्यंत मोहक मूर्ति है। सांवला रुप है। नेत्र विशाल बने हुए हैं। तुम्हारे अधरों पर अमृत बरसानेवाली मुरली विराजमान है। छाती पर वैजयंती

माला फैली हुई है। कमर पर करधनी के छोटे-छोटे घुंघरू शोभित हैं। पैरों में नूपूर मधुर ध्वनि कर रहे हैं। इस प्रकार के अनुपम सौंदर्यवाले मीरा के प्रभु गोपाल भक्तों पर वात्सल्य बरसाते हैं और संतों को सुख देते हैं।

(3)

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुंकुट, मेरो पति सोई।
छाँड़ि दई कुल कानि, कहा करि है कोई।
संतन ढिग बैठि-बैठि, लोक लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बात फैल गयी, होनी होय सो होई।
भगत देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरिधर, तारो अब मोहीं।।

मीराबाई भगवान कृष्ण को अपना पति मानती है और उससे संसार - सागर से उद्धार करने की प्रार्थना करती है।

मेरे लिए गिरिधर गोपाल को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। जिसके सिरपर मोर के पंखों का बना मुकुट है वही मेरा पति है। मैंने कुल-मर्यादा पूर्णतः छोड़ दी है, कोई मेरा क्या करेगा? (मुझे किसी का भय नहीं है) मैंने लगातार संतों के साथ बैठकर लोकलज्जा छोड़ दी है। आँसुओं के पानी से सींचकर प्रेम की लता को बड़ा किया है। मेरा कुल-गौरव और लोकलज्जा छोड़ देना, गिरिधर गोपाल को पति के रूप में वरण करना ये सारी बातें सब गह फैल गयी हैं। जो होना है सो हो गया। अब तो मैं भक्ति को देखर प्रसन्न होती हूँ और जगत के रवैये को देखकर दुःखी होती हूँ। हे प्रियतम गिरिधर! मैं तेरी दासी हूँ। मुझे संसार-सागर के पार पहूँचाओ।

इस पद में हमें मीराबाई के व्यक्तिगत जीवन की झलक मिलती है। कहा जाता है कि मीराबाई के परिवारवालों को उसका संतों से मिलना-जुलना, सब के सामने गाना, नाचना आदि बातें पसंद न थीं, इसके लिए उन्होंने मीराबाई पर अनेक प्रतिबंधों को तोड़ दिया और भगवान की खोज में घर-बार छोड़कर बाहर निकल पड़ी। 'मेरो पति सोई' शब्दों से मीरा की एकांतिक भक्तिभावना प्रकट होती है। लोक के प्रति लापरवाही और प्रियतम कृष्ण के प्रति समर्पण भाव इस पद में व्यक्त होता है।

(4)

माई री मैं तो गोविन्द लियो मोल।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े, लियो री बजता ढोल।

कोई कहै मुँहघों कोई कहै सुँहघों, लियो री तराजू तोल।

कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलिक मोल।

याही कूँ सब लोग जानत हैं, लियो री आँखी खोल।

मीरा कूँ प्रभु दरसन दीज्यौ, पूरब जनम कौ कोल।।

री माँ! अंत में मैंने गोविन्द को मोल लिया है। अर्थात वश में कर लिया है. कोई कहते हैं कि वे छिपे-छिपे (गुप्त रूप से) मिलते हैं तो कोई कहते हैं कि वे प्रकट रुप से ही मिलते हैं, मैंने तो उन्हें ढोलबजाते हुए मोल लिया है। कोई कहते हैं कि वे महँगे में मिलते है तो कोई कहते हैं कि वे सस्ते में मिलते हैं। लेकिन मैंने उनहें तराजू में तोल कर मोल लिया है। कोई कहते हैं कि वे काले हैं ओर कोई कहते हैं कि गोरे हैं। जो भी हों, मैने तो अमूल्य मूल्य में (जिसका मूल्य आँका नहीं जा सकता उतने मूल्य में) ले लिया है। इसी को सब लोग जानते हैं कि मैंने उन्हें आँखें खोलकर अर्थात अच्छी तरह परख कर ले लिया है। मीरा को प्रभु ने दर्शन दिये हैं। ऐसा उन्होंने पूर्व जन्म के वचन के कारण दिया है।

भक्त मीराबाई को प्रभु श्रीकृष्ण ने दर्शन दिये। इसी अनंद में वे यह पद गा रही हैं। इस पद में मीरा ने जिस मूल्य का जिक्र बार-बार किया वह भक्ति है। अनन्य भाव की भक्ति रूपी मुल्य से भगवान को प्राप्त किया जा सकता है। दुनिया के अन्य नाप, तोल, भाव वगैरह वहाँ काम नहीं करते। अनन्य भक्ति-भावना भक्त को पूर्व-जन्म के पुण्य से मिलती है। उसी मुल्य से भगवान मिलता है।अन्यथा नहीं।

(5)

पग घुँघरू बाँध नाची रे।

मैं तो अपने नारायण की, आपहि हो गयी दासी रे।

लोग कहै मीरा भई बाबरी, न्यात कहै कुलनासी रे।

विष का प्याला राणाजी भोज्या, पीवत मीरा हाँसी रे।

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।।

इष्ट देव के दर्शन से आनंद विभोर होकर मीरा जो नाच उठी उसी से संबंधित पद है यह। पैरों में घुँघरू बांधकर मैं नाच उठी। मैं तो अपने आप ही नारायण की दासी बन गयी। मुझे लोग पगली कहते हैं और जातिवाले सभी कुल की मर्यादा नष्ट करनेवाली कहते हैं। राणा ने विष का प्याला भेजा तो मैंने उसे हँसते हुए पी लिया। मीरा के प्रभु गिरिधर (कृष्ण) बड़े चतुर हैं। वे अविनासी मुझे सरलता से मिल गये हैं।

कहा जाता है कि मीराबाई चित्तौड़ के राणा की पत्नी थी। मीराबाई का खुले आम भक्तों तथा संतों से मिलना, उनके साथ बैठकर गाना और उनके सामने तन्मय होकर नाचना यह सब परिवारवाले पसंद नहीं करते थे। समझाने पर भी न माना तो राणाने चरणोदक कहकर विषका प्याला भेजा। मीरा जान गयी कि वह विष है। फिर भी उसने हँसते हुए उसे पी लिया, लेकिन भगवान की कृपा से उस पर विष का कोई प्रभाव न हुआ। वह बच गयी। इसी घटना का उल्लेख इस पद में किया गया है।

7. बिहारीलाल

जन्म: सन् 1595 **मृत्यु: सन् 1663**

रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर के पास बसुआ गोविंदपुर नामक गाँ में हुआ था। उनका बाल्यकाल बुन्देलखण्ड और युवाकाल मधुरा में व्यतीत हुआ। अपना अंतिम समय उन्होंने जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के आश्रय में बिताया।

बिहारी अपने समय के असाधारण कवि थे। उन्होंने अपने पहले के प्रायः सब शृंगारिक काव्यों का गंभीर अध्ययन किया था। पहले की सारी परंपराओं से अवगत होने के कारण उनकी उक्तियों में विदग्धता की मात्र अधिक है। अपनी उक्तियों को अधिक परिमार्जित, वक्र तथा व्यंग्यात्मक बनाने का प्रयास उन्होंने किया है। इसी कारण उनकी 'सतसई' में सहज भाव की अपेक्षा वक्रतायुक्त मादकता अधिक है।

बिहारी एक जागरूक कलाकार थे। उन्होंने अर्थ पर ठीक विचार करके ही शब्दों को उपयुक्त स्थान पर रखा है। इसके अतिरिक्त काव्य के उपयुक्त छंद, सर, अलंकार, लय और झंकार का निवेश कर उन्होंने काव्यगत सहज सौंदर्य को अधिक मादक बनाया है।

बिहारी का एकमात्र ग्रंथ 'सतसई' उपलब्ध है। उसमें सात सौ दोहे हैं जिनपर संस्कृत के शृंगार-ग्रंथ 'अमरूशतक' आदि ग्रंथों की विशेष छाप है। रीतिकाल के ग्रन्थों में केवल यही इतना प्रसिद्ध है कि गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के सिवाय और किसी ग्रंथ पर इतनी अधिक टीकाएँ नहीं लिखी गयीं। अनेक कवियों ने उनके मुक्तक दोहों के आधार पर सवैये, छप्पय तथा कुण्डलियाँ आदि की रचना की है।

बिहारी-विहार

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरी होइ।

जा तन की झाई परै, स्याम हरित-दुति होइ।।1।।

यह दोहा बिहारी सतसई का प्रथम दोहा है। इसके द्वारा कवि मंगलचरण करते हैं।

वे ही राधा नागरी मेरे सांसारिक दुःखों को या जन्म-मरण के दुःखों को दूर करें जिनके शरीर की छाया पड़ते ही श्रीकृष्ण भी (जो स्वयं आनंदमूर्ति हैं।) आनंदित हो जाते हैं। इस दोहे में कवि राधिका को कृष्ण से भी बढ़कर आनंददायिनी शक्ति मानकर निज दुःख हरण की प्रार्थना करते हैं। यक्ति से अर्थ का समर्थन करने के कारण इसमे काव्लिंग नामक अलंकार है।

कब को टेरतु ह्वे, होत न स्याम सहाइ।

तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जगनायक जग बाइ।।2।।

कितना पुकारे पर भी भगवान उद्धार नहीं कर रहा है। इस पर खीजकर कवि कहते हैं----

मैं कब से दीन होकर पुकार रहा हूँ, और हे श्याम! तुम सहायता नहीं करते। हे जगत के गुरु! है दुनिया के मालिक! क्या तुमको भी संसार की हवा लग गयी? भाव है, क्या तुम भी दुनिया के नेताओं के समान बन गये? वादा करके भी सहायता नहीं करते। लोकोक्ति और ग्म्योत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।

मो संपति जदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार।। 3 ।।

चाहे कोई करोड़ों की संपत्ति संग्रह करे, चाहे दस करोडों की। मेरी संपत्ति तो श्रीकृष्ण ही हैं, जो सदा सबकी विपत्ति का नाश किया करते हैं। कितनी भी संपत्ति संग्रह करें, वह विपत्ति से बचा नहीं सकती। अतः विपत्ति-विनाशक श्रीकृष्ण ही सच्ची संपत्ति हैं। भक्ति के द्वारा उनका अनुग्रह प्राप्त करना चाहिए। हेतु अलंगार है।

जपमाला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।

मन काँचे नाचे वृथा, साँचे राँचे राम।। 4 ।।

इस देहे में कवि बिहारीलाल बाह्याडंबर की निंदा करते हैं।

जप करने की माला, छापा और तिलक इत्यादि से एक भी काम न चलेगा। मन के कच्चे होने से ये सब नाच व्यर्थ हैं। राम तो सच्चे से अनुरक्त होते हैं। भाव यह है, उपरी दिखाऊ बेष से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता, सच्चा अनुराग हो तो ईश्वर शीघ्र ही प्राप्त होता है। अनुप्राप्त शब्दालंकार और परिसंख्या अरंथलंकार।

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।

अब अलि रही गुलाब में, अपत कँटीली डार।। 5 ।।

किसी गत संपत्तिवाले पुरुष या गतयौवना स्त्री पर अन्योक्ति की जा रही है।

हे भौरे! तुमने उन दिनों जे फूल देखे थे वह बहार (वैभव का समय या यौवन का समय) तो बीत चुका। अब तो गुलाब में केवल पत्र रहित कँटीली डाल ही रह गयी है। गत सपत्तिवाले पुरुष के पक्ष में भौंरा याचक है। उस से कहा जा रहा है कि उससे कुछ माँगना व्यर्थ है। उसके पास देने के लिए कुछ भी नहीं है। गत यौवना के पक्ष में भौंरा सौंदर्य प्रेमी पुरुष है। उससे कहा जाता है कि उसका सारा सौंदर्य समाप्त हो चुका है। अन्योक्ति अलंकार है।

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल।। 6 ।।

श्रीकृष्ण की सुंदर वैष-भूषा का वर्णन करते हैं कवी बिहारीजी।

सिर पर मुकुट धारण किये हुए, कमर में काछनी बाँधे, हाथ में मुरली पकड़े और हृदय पर बनमाला धारण किये आनंदक्रीडा करनेवाले भगवान श्रीकृष्ण का रूप हमेशा मेरे मन में निवास करे। स्वभावोक्ति अलंकार है।

बढ़त - बढ़त संपति-सलिलु, मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत-घटत सुन फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ।। 7 ।।

संपत्ति की वृद्धि तथा संपत्ति के विनाश के समय मन के स्वभाव का अंतर इस दोहे में बताया गया है।

संपत्ति रूपी जल के बढ़ते-बढञते मन रूपी कमल की नाल भी बढ़ती जाती है। परंतु उसी संपत्ति रूपी पानी के घटते समय वह हृदय-कमल-नाल छोटी होती नहीं, वल्कि पूर्णतः सूख जाती है। कहा जाता है कि सरोवर में ज्यों पानी बढ़ता है त्यों त्यों कमल-नाल बढ़ती जाती है और कमल-पुष्प पानी में डूबता नहीं। लेकिन जब सरोवर का पानी कम होने लगता है तब कमल-नाल धीरे-धीरे छोटी नहीं होती, बल्कि एक दम समूल शूखकर नष्ट होती है। वही स्थिति संपत्तिशाली पुरुष की भी होती है। संपत्ति के नष्ट होने से वह एक दम दुःख के बोझ से दब जाता है। रूपक अलंकार।

भजन कह्यौ तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्जौ गंवार।। 8 ।।

'भजन' शब्द के 'भजन करना' और 'भागना' ये दो अर्थ हैं। इन अर्थों के द्वारा चमत्कार पैदा करते हैं कविवर बिहारीलाल।

जिसका भजन करने को कहा था उससे तो भागा, उसका भजन एकबार भी नहीं किया और जिससे भागने को कहा था उसी से अनुरक्त हुआ। इससे जान पड़ता है कि तू गँवार है। जिसका भजन करने कहा गया वह है ईश्वर, जिससे भागने के लिए कहा गया, वह है संसार। लेकिन मनुष्य ईश्वर से अपने करतुतों के द्वारा दूर भागता है और संसार से चिपटा रहता है। यही उसकी मूर्खता है। यमक अलंकार।

अति अगाधु अति औथरौ, नदी कूप सर बाइ।

सो ताको सागरू जहाँ, जाकी प्यास बुझाइ।। 9 ।।

संसार में अनेक अथाह और उथले नदी, कुआँ, सरोवर और बावड़ियाँ हैं, परन्तु जिसकी जहाँ से प्यास बुझती है वही उसके लिए समुद्र है। भाव यह है कि मनुष्य उसीका आदर करता है जिससे उसका स्वार्थ बनता है, जिससे स्वार्थ नहीं बनता उसकी उपेक्षा कर देता है, चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो। अन्योक्ति अलंकार।

दिन दस आदरु पाइकै, करि लै आप बखानु।

जौ लगि काग! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु।। 10 ।।

हे कौआ! थोड़े दिन का आदर पाकर तू अपनी बड़ाई कर ले। जब तक श्राद्धपक्ष है तभ तक तेरा सम्मान है। जब लोग पितरों का क्षाद्ध करते हैं तब कौए को बुला-बुला कर अन्न खिलाते हैं। उसी प्रकार राजा वगैरह बड़े लोग किसी कार्यवश नीच व्यक्ति का भी आदर करते हैं। नीच व्यक्ति इसे अपना बड़प्पन मानकर आत्मप्रशंसा करने लगता है तो कोई कौए के बहाने कहता है कि 'अरे' तेरा यह सम्मान काम पूरा होने तक ही होगा। उसके बाद पूर्ववत् तेरी उपेक्षा होगी। अब गर्व मत कर। अन्योक्ति अलंकार।

इक भीजे चहल परै, बूड़ै बहै हजार।

कितो न औगुन जग करै, नै बै चढ़ती बार।। 11 ।।

इस दोहे में लोगों पर युवावस्था के दुष्प्रभाव का वर्णन किया गया है। वय (उम्र) रूपी नदी के चढ़ते समय न जाने जगत के लोग कितने अवगुण करते हैं? कोई तो इस अवस्था के प्रभाव से भीग जाते हैं। अर्थात विषय रसमें आसक्त होते हैं। कोई दल-दल में फँस जाते हैं। अर्थात विष्य सुखों को छोड़कर दूसरी ओर जा नहीं सकते। हजारों लोग सिर से पैरों तक विषय सुख में निमग्न हो जाते हैं तो हजारों लोग बह जाते हैं, अर्थात लोक-परलोक सबसे दूर हो जाते हैं। काकुवक्रोक्ति और दीपक अलंकार हैं।

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।

जगत तपोवन सौ कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ।। 12 ।।

कहा जाता है कि एक बार एक चित्रकार ग्रीष्म ऋतु का चित्र बनाकर महाराज जयसिंह के दरबार में लाया। उस चित्र में यह दिखलाया गया था कि ग्रीष्म की कड़ी धूप में हाँफता हुआ सर्प कहीं छाया न देखकर मोर की छाया में जा बैठा, गर्मी से व्याकुल मृग बाघ की माँद में जा बैठा था। गर्मी के मारे कोई किसी को कुछ नहीं करता था। इस चित्र को देखकर दरवारियों ने कुछ नहीं समझा। महाराज ने इस दोहे का पूर्वार्द्ध कहकर दरवारियों से प्रश्न किया। उत्तर में बिहारी ने उत्तगर्द्ध कहकर चित्र का रहस्य बता दिया। भावार्थ इस प्रकार है----

(प्रश्न) किस कारण से इस चित्र में सर्प और मयूर, मृग और बाध एकत्र दिखाये गये हैं? (उत्तर) कठोर तापयुक्त ग्रीष्मऋतु ने संसार को तपोवन-सा बना दिया है। लपोवन में सहज शत्रु भी मिल्जुल कर रहते हैं। कोई किसी को नहीं सताता। तपस्वियों के प्रभाव के कारण ऐसा होता है।

इस दोहे के पूर्वाद्ध में प्रश्न और उत्तर दोनों मिलते हैं। जैसे प्रश्नः कह लाने किस लिये सर्प मोर, मृग और बाघ एकत्र दिखाये गये हैं? (उत्तर) कहलाने उ गरमी से व्याकुल सर्प और मोर, मृग और बाघ एकसाथ दिखाये गये हैं।

पूर्वर्द्ध में चित्रोतर और पूरे दोहे में काव्यलिंग अलंकार हैं।

लोपे कोपे इंद्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल।। 13।।

इस देहे के दो अर्थ कहे गये हैं। पहला अर्थ इस प्रकार है----

श्रीकृष्ण ने (पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, केशी आदि की तो बात ही क्या?) पूजा बंद किये जाने पर जिस कृद्ध इन्द्र ने गोकुल में अकाल ही प्रलय उत्पन्न करना चाहा, उस इन्द्र के गर्व तक गोवर्धन पर्वत को उठाकर समाप्त किया और इस प्रकार गायों, गोपियों और गोपालों की रक्षा की। इस अर्थ में श्रीकृष्ण की दया और बीरता प्रकट होती हैं।

दूसरे अर्थ के अनुसार राधा की सखी नायक कृष्ण से कहती है - वह नायिका राधा पूजा बंद किये जाने पर इन्दर की तरह समय से पहले ही (आकल) प्रलय करना चाहती है। अर्थात रो रो कर अपने आंसुओं से संसार को डुबो देना चाहती है। हे कृष्ण (गिरिधारी) उस समय तुमने गोवर्धन पर्वत उठाकर गो, गोपी और गोपालों की रक्षा की थी। उसी प्रकार नायिका को आश्वासन देकर सबकी रक्षा कीजिए। वृत्यनुप्रास शब्दालंकार, उपमा (पूर्वर्द्ध में), अप्रस्तुत प्रशंसा अर्थालंकार।

या अनुरागी चित्त की , गति समुझै नहीं कोइ।

ज्यौं-ज्यौं बूड़ै श्याम रंग, त्यौं-त्यौं उज्जलु होइ।। 14।।

बिहारी के इस दोहे के दो अरेथ शांत और श्रृंगार के होते हैं। शांत रस का अर्थ इस प्रकार है----

इस प्रेमी चित की दशा कोई समझता नहीं है। यह ज्यों-ज्यों कृष्ण के काले रंग डूबता है अर्थात उनके श्याम रूप का ध्यान करता है त्यों-त्यों निरमल होता है। अर्थात तापत्रय रहित होता है। काले रंग में डूबने से काला बनना चाहिए। लेकिन उज्जवल (निर्मल) होता है।

श्रृंगार का अर्थ इस प्रकार है-----

नायिका राधा अपनी सखी से कहती है। हे सखी! इस मेरे अनुरागी - प्रेमपूर्ण चित्त की दशा कोई समझता नहीं। ज्यों-ज्यों यह चित्त कृष्ण के प्रेम में लीन होता है, त्यों त्यों (व्याकुल न होकर) आत्यधिक प्रेममग्र होता जाता है।

विरोधाभास और श्लेष अलंगार।

तंत्री-नाद कवित्त-रस, सरस राग रति-रंग।

अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग।। 15 ।।

वीणा आदि बाद्यों की मधुर ध्वनी, कविता का आनंद, रसमय संगीत और प्रेम रस में जो सर्वांग डूबे नहीं वे डूब गये और जो सर्वांग डूब गये वे पार कर गये। भाव यह है कि वीषाध्वनि आदि में जो तल्लीन नहीं होते (अनबूडे) उनको आनंद नहीं मिलता। जो तल्लीन होते हैं (बूडे) वे भवसागर को पार कर जाते हैं। पूरा आनंद प्राप्त करते हैं। विरोधा भास अर्थालंकार।

चटक ने छाँडतु घटत हूँ, सज्जन नेह गंभीरु।

फीकौ परै न बरु फटै, रंग्यो चोल रंग चीरु।। 16 ।।

सज्जनों का गंभीर स्त्रेह घटते हुए भी अपना चटकीलापन नहीं छोड़ता, जैसे मँजीठ के रंग में रंगा हुआ कपड़ा फट चाहे जाय, पर रंग में फीका नहीं पड़ता। भाव यह है कि सज्जनों का प्रेम या स्त्रेह स्थाई होता है. समय अने पर वह अपना रंग दिखाता है। प्रतिवस्तूपमा अलंकार।

~ ~ ~ ~ ~

Unit 2 Modern Poem

1. कैकेयी का पश्चात्ताप

(श्री मैथिलीशरण गुप्त)

(अ) कवि-परिचय :

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म चिरगाँव (जिला झांसी) में सन् 1886 में हुआ था। आपके पिता रामचरण गुप्त प्रभु राम के अनन्य भक्त थे। भक्ति और कविता के संस्कार उन्हें अपने पिता से ही मिले। घर के सात्विक वातावरण में उनका पालन पोषण हुआ। आरंभ में गुप्तजी ने ब्रजभाषा में कविताएँ लिखीं, बाद में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से खड़ीबोली को अपना लिया। उनकी कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। गुप्त जी संस्कृत और हिंदी के विद्वान् तो थे ही, उन्होंने बँगला और मराठी भाषाओं में भी दक्षता प्राप्त की।

मैथिलीशरण गुप्त जी की कविताओं में देशभक्ति का स्वर प्रधान है। भारत की संस्कृति के प्रति गौरव, इतिहास के प्रति अनुराग और मानवता के प्रति अटूट आस्था की अनुगूँज आपके काव्य में स्पष्ट सुनाई पड़ती है। ईश्वर-भक्ति, देशप्रेम, स्वाभिमान, मानव-मूल्य, विश्व-बंधुत्व की झलक इनके काव्य में सहज ही देखी जा सकती है। प्रकृति और प्रेम के सुंदर बिंब भी आपकी कविताओं में मिलते हैं। पर गुप्तजी मूलतः राष्ट्रवादी और मानवतावादी कवि के रूप में ही स्थापित रहे। 'भारत-भारती' उनकी अमर कृति है, जिसकी रचना 1912 ई. में हुई। इसमें गुप्तजी ने अतीत, वर्त्तमान और भविष्यत् खंडों में भारत के सांस्कृतिक गौरव, परतंत्र देश की दुर्दशा और राष्ट्र के नव अभ्युदय पर विचार किया है। राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत यह काव्य, पुस्तक बहुत ही लोकप्रिय हुई और इससे असंख्य युवकों को प्रेरणा मिली। इसके मुखपृष्ठ पर अंकित पंक्तियों को आज भी लोग दुहराते हैं :--

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी?

आओ विचारों आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

संपूर्ण राष्ट्र के गौरव को निरंतर मुखरित करते रहने के कारण वे 'राष्ट्रकवि' के रूप में विख्यात हो गये। सन् 1952 में गुप्त जी राज्यसभा के सदस्य के रूप में मनोनीत हुए। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण अलंकरण से सम्मानित किया। अठत्तर वर्ष की आयु में सन् 1964 में उनका स्वर्गवास हुआ।

रचनाएँ :

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने 40 मौलिक काव्यकृतियाँ और 6 अनूदित पुस्तकें हिंदी-जगत् को प्रदान की हैं। उनके प्रमुख ग्रंथ हैं--

महाकाव्य--साकेत, जय भारत।

खंडकाव्य--रंग में भंग, जयद्रथवध, पंचवटी, नहुष, शकुंतला, गुरुकुल, यशोधरा, काबा और कर्बला, विष्णुप्रिया आदि।

मुक्तक काव्य--भारत-भारती, स्वदेश संगीत, कुणाल गीत, अंजलि और अर्ध्य आदि।

अनूदित--फ्लासी का युद्ध, मेघनाद वध उमर खैयाम की रुबाइयाँ आदि।

आधुनिक हिंदी-साहित्य में 'साकेत' महाकाव्य का विशिष्ट स्थान है। रामकथा को आधार बनाकर गुप्तजी ने इसकी रचना की। नारी के प्रति उदात्त भावना रखनेवाले कविवर गुप्तजी ने इस काव्य में कैकेयी के चरित्र को भव्य रूप में प्रस्तुत किया है। चित्रकूट प्रसंग में कैकेयी के हृदय-परिवर्तन और उसके सहज पश्चात्ताप को दिखाकर कवि उसके कलंक को धो डालते हैं। उर्मिला को 'साकेत' की नायिका का स्थान देकर गुप्तजी नारी के गौरव को स्थापित करते हैं। ऊर्मिला का विरह वर्णन भी कवि का मौलिक एवं मार्मिक आख्यान है।

काव्यगत विशेषताएँ--

1. पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों का गरिमामय चित्रण।
2. सांस्कृतिक गोरव तथा नव जागरण का स्वर
3. देशभक्ति की भावना की प्रधानता

4. नारी पात्रों के प्रति उदार दृष्टिकोण

5. मानव-मूल्यों की स्थापना

6. गाँधीवादी विचारों का समर्थन

7. प्रकृति चित्रण में परंपरा और नवीनता का समन्वय

8. परिमार्जित भाषा का प्रयोग

9. वर्णनात्मक और संवादात्मक शैली का निर्वाह

10. विविध छंदों और अलंकारों की योजना।

(आ) कविता का सारांश :--

'कैकेयी का पश्चात्ताप' कविता मैथिलीशरण गुप्त जी के महाकाव्य 'साकेत' के अष्टम सर्ग से ली गई है। भरत अपने भाई शत्रुघ्न और माताओं के साथ चित्रकूट में भ्राता राम से मिलते हैं। रात्रि में पर्णकुटी के सामने सब इकट्ठे बैठते हैं, तब भरत अपनी मर्मव्यथा को राम के सामने प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि स्वयं उनकी माता ने उन्हें अमयश का भागी बना दिया। भाई राम वन को चले आये, पिता स्वर्ग सिधार गये, और उनके पास रह गई केवल अपकीर्ति। राम की आँखों में आँसू छलक आते हैं और वे भरत को गले लगा कर कहते हैं कि ''हे भरत! तुम्हारी भावनाओं को जब माता ही नहीं जान पायी तो उसे कोई अन्य कैसे जान सकता है?''

राम के इस कथन को सुनते ही कैकेयी जो अब तक शांत बैठी थी, अकस्मात् बोल पड़ती है--राम! तुम्हारा कहना सही है। मैं जननी होकर भी पुत्र के हृदय को जान नहीं पायी। अपराधिनी मैं ही हूँ और अब मैं ही तुमसे कह रही हूँ कि घर लौट चलो। मैं तुमसे सौगंध खाकर कहती हूँ कि सारा दोष मेरा ही है। राम माता कैकेयी को शांत होने का अनुरोध करते हैं पर वह अपने मनोभावों को प्रकट करती जाती है। पहाड़ जैसा अपराध किया है उसने तो क्या राई जितना पश्चात्ताप भी नहीं करेगी? कैकेयी राम से कहती जाती है कि दोष मंथरा का भी नहीं है। मेरा मन ही कमजोर हो गया था। वह अपने मन को कोसती है। वह दुःख प्रकट करती है कि स्वयं बेटे ने उससे मुँह फेर लिया है। अत्यंत व्यग्र होकर वह कहती है कि तीनों लोक उसकी निंदा करें,

उस पर थूकें तो भी वह सह लेगी, पर पुत्र भरत को खोकर नहीं। संसार में सब कहते हैं कि पुत्र कुपुत्र हो सकता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती। मैं आज कुमाता हो गई हूँ। मैंने स्वार्थ के वशीभूत होकर भरत के उदात्त मन को नहीं जाना। आज की स्थिति मेरे स्वार्थ की ही परिणति है। धिक्कर है मुझे। भावी जन्मों भी मेरी आत्मा इस धिक्कार का अनुभव करेगी।'' कैकेयी के पश्चात्ताप से भरे हुए उन करुण वचनों को सुनकर उपस्थित सभी जन कहने लगी-जिसने भरत जैसे महान् पुत्र को जन्म दिया, वह माता कैकेयी धन्य है। राम भी माता कैकेयी के सच्चे हृदय को पहिचान कर धन्य-धन्य कह उठे। समवेत स्वर उभरने लगे--''सौ बार धन्य वह एक लाल की भाई।''

इस कविता में गुप्तजी ने कैकेयी का हृदय-परिवर्तन दिखाकर उसके चरित्र को उज्ज्वलता प्रदान की है। यह साकेत में कवि की मौलिक उद्‌भावना है। पश्चात्ताप की अग्नि में तपकर कैकेयी का कुंदन हृदय निखर उठता है। सच्चे हृदय से किया गया पश्चात्ताप अपराध या पाप के कलंक को भी धो डालता है, यह संदेश भी पाठकों को मिलता है।

(इ) व्याख्या :

(1) सबने रानी की ओर ..... गोमुखी गंगा।

प्रसंग--ये पंक्तियाँ **'कैकेयी का पश्चात्ताप'** शीर्षक कविता से ली गई हैं। मैथिली-शरण गुप्त ने अपने महाकाव्य साकेत के अष्टम सर्ग में राम-भरत मिलन का वर्णन किया है। उसी प्रसंग में ये पंक्तियाँ आयी हैं।

व्याख्या--कैकेयी कहती है--राम। तुम सत्य कह रहे हो कि मैंने ही भरत के हृदय को नहीं पहिचाना। दोष मेरा ही है। अब मैं ही कह रही हूँ कि तुम अयोध्या लौट चलो।' शांत बैठी कैकेयी के इन दृढ़ वचनों को सुनकर सब चौंक पड़े। उन्होंने रानी कैकेयी की ओर देखा। वैधव्य के कारण वह उन्हें हिम से ढँके हुए कांति विहीन चंद्रमा की भाँति दीख पड़ी। वह ऊपर से अविचल थी, पर उसके मन में अनेक प्रकार की विचार-तरंगें उठ रही थीं। सिंहिनी के समान प्रबल स्वभाव वाली कैकेयी उन्हें गोमुखी गंगा की तरह शांत प्रतीत हुई।

विशेष--(1) कैकेयी का मार्मिक बिंबांकन हुआ है। (2) अनुप्रास और उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग सुंदर हैं।

2. मनु की चिन्ता

(जयशंकर प्रसाद)

(अ) कवि-परिचय :-

जयशंकर प्रसाद की जन्म सन् 1889 ई में काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य-परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम देवी प्रसाद था। इनके दादा तंबाकू के प्रसिद्ध व्यापारी थे और 'सुँघनी साहु' के नाम से जाने जाते थे। इनके पिता काव्य-रसिक थे और कवियों एवं विद्वानों का आदर-सत्कार करते थे। परिवार के ऐसे वातावरण में कवि का बचपन बाल और उसमें काव्य के संस्कार जाग्रत हो गये। प्रसाद जी की आरंभिक कविताएँ ब्रजभाषा में हैं, बाद में उन्होंने खड़ीबोली को अपना लिया। घर में ही उन्होंने संस्कृत, हिंदी, उर्दू और अँग्रेज़ी का अध्ययन किया।

हिंदी में छायावाद के चार स्तंभ माने जाते हैं--प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी। उनमें जयशंकर प्रसाद अग्रगण्य हैं। छायावादी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं--प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-चित्रण, रहस्यात्मकता, मानवीयता, राष्ट्रीयता आदि। प्रसाद जी के काव्य में छायावाद के सारे तत्व विद्यमान हैं। वे केवल छायावाद के ही नहीं, आधुनिक हिंदी के श्रेष्ठ महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका महाकाव्य 'कामायनी' भारतीय साहित्य का गौरव-ग्रंथ है। कथानक, चरित्र, उद्देश्य, भाव और शैली की दृष्टि से यह एक उदात्त काव्य है। इसमें श्रद्धा और मनु के माध्यम से मानव-संस्कृति के विकास की कहानी कही गई है।

जयशंकर प्रसाद केवल कवि ही नहीं थे, वे उच्च कोटि के नाटककार और कथाकार भी थे। भारतीय संस्कृति और इतिहास के प्रति गौरव के भाव को वे अपने साहित्य में व्यक्त करते हैं। प्राचीनता के मोह के साथ-साथ प्रसाद जी के काव्य में नवीनता के प्रति आग्रह भी है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे, जिन्होंने अपने श्रेष्ठ काव्यों, नाटकों, कहानियों और निबंधों से साहित्य की सेवा की।

सन् 1937 ई. में अड़तालीस वर्ष की अवस्था में उनका स्वर्गवास हुआ।

रचनाएँ :--

जयशंकर प्रसाद जी ने विपुल साहित्य का निर्माण किया। उनकी उल्लेखनीय प्रसिद्ध कृतियाँ इस प्रकार हैं--

महाकाव्य--कामायनी।

काव्यकृतियाँ--चित्राधार, कानन-कुसुम, झरना, आँसू, लहर आदि।

नाटक--प्रायश्चित, राज्यश्री, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, आदि।

एकांकी--एक घूँट।

कहानी-संग्रह--छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप आदि।

उपन्यास--कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)।

निबंध--काव्य कला तथा अन्य निबंध।

काव्यगत विशेषताएँ--

1. ऐतिहासिक आख्यानों का काव्यांकन
2. प्रकृति की आकर्षक बिंब-योजना
3. प्रेम का उदात्त चित्रण
4. राष्ट्रीयता का स्वर
5. रहस्यात्मकता
6. मानवतावादी संदेश
7. उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आलंकारों का प्रयोग।

(आ) कविता का सारांश :-

'मनु की चिंता' शीर्षक कविता जयशंकर प्रसाद के प्रबंध काव्य 'कामायनी' के प्रथम सर्ग (चिंता) का आरंभिक अंश है। पूर्व प्रसंग के अनुसार समस्त देव-सृष्टि प्रलय के सर्वनाशी जल-प्लावन डूब जाती है। एक

मात्र मनु किसी प्रकार नौका में सवार होकर बच निकलते हैं। उनकी नौका बहती हुई जिस स्थान पर आकर सकती है, वह हिमालय की उच्चतम चोटी है। चारो ओर पानी से घिरे हुए मनु उस चोटी पर बैठे-बैठे बीती घटनाओं के बारे में चिंतन करते हैं। वे अपने भविष्य के बारे में अत्यंत चिंतित हो जाते हैं। मनु की इसी चिंता को इस कविता में दर्शाया गया है।

हिमालय पर्वत के सर्वोच्च शिखर की एक शिला पर मनु बैठे हैं। वे अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस भयंकर बाढ़ को देख रहे हैं, जिसमें उनकी संपूर्ण देव-सृष्टि डूब गई थी। ऊपर शिखर पर बर्फ जभी हुई है और नीचे सर्वत्र पानी ही पानी। मनु एक युवा पुरुष है, जिनके अंग-अंग से तेज झलकता हैं, परंतु उनके मुखमंडल पर चिंता की छाया है। धीरे-धीरे जलस्तर कम होने लगता है और भूमि का कुछ भाग दिखने लगता है। मनु अपने भविष्य की चिंता से इतने ग्रस्त हो जाते हैं कि चिंता के बारे में ही सोचने लग जाते हैं।

मनु मन ही मन कहते हैं कि जिस चिंता से वे ग्रस्त हुए हैं, वह संसार रूपी जंगल में छिपी रहनेवाली सर्पिणी के समान है। वह ज्वालामुखी के विस्फोट से भूमि में उत्पन्न होने वाली प्रथम कंपन के समान हृदयों को कम्पित करनेवाली उनमत्तता है। अभाव के कारण ही उसका जन्म होता है। मनुष्य उसकी पकड़ से जल्दी नहीं छूटता और आशा-निराशा के बीच भटकता रहता है। यह चिंता ही है जो मनुष्यों को रोगों का शिकार बना देती है। चिंता ही आधि अर्थात् मानसिक रोग उत्पन्न करती है। वह पुच्छल तारे की तरह उदित होकर जीवन के भावी अभंगल की सूचना देती है। चिंता खेती को नष्ट करनेवाला ओलों की बरसात के समान होती है, जो जीवन में हर्षोल्लास को बर्बाद कर देती है। चिंता उस पाप के समान है, जो कोई करना नहीं चाहता। वह अनेक रूपों और नामों से जीवन में आती है और अनिष्ट व दुःख करती है। मनु इससे बचना चाहते हैं। यथा--

बुद्धि, मनीषा, अति, आशा, चिंता

तेरे हैं कितने नाम।

अरी पाप है तू, जा, चल जा

यहां नहीं कुछ तेरा काम।।

इस प्रकार सोचते-सोचते मनु अपने अतीत पर दृष्टि डालते हैं। उन्हें लगता है कि देव-सृष्टि के विनाश का कारण देवों का अपरिमित भोग-विलास है। वे अमरता के अहंकार में भूल गये कि प्रकृति उनसे भी अधिक शक्तिशालिनी है। वे हार गये परंतु प्रकृति अपराजित ही रही। उनका सारा वैभव, भोग-विलास और अभिमान प्रलय की बाढ़ में विलीन हो गया।

इस प्रकार मनु अपनी चिंता को प्रकट करते हैं और पश्चात्ताप के अश्रु बहाते हुए सुखद भविष्य की आशा में तल्लीन हो जाते हैं।

(इ) व्याख्या :-

(i) नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन;
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।

प्रसंग--यह अवतरण **'मनु की चिंता'** शीर्षक कविता से लिया गया है। जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' के प्रथम सर्ग (चिंता) के आरंभ में यह प्रसंग आया है। महाप्रलय के जल-प्लावन में समस्त देव-सृष्टि नष्ट हो जाती है। एकमात्र मनु बच जाते हैं। वे हिमालय पर्वत की उच्चतम चोटी की एक शिला पर बैठे हैं। वे सजल नेत्रों से अपने चारों ओर फैले हुए जल-प्रवाह को देख रहे हैं।

चिंताग्रस्त मनु देखते हैं कि शिखर के नीचे चारों ओर पानी ही पानी है तथा ऊपर पर्वत की चोटी पूरी तरह बर्फ़ से ढँकी है। उन्हें सर्वत्र जल ही दृष्टिगोचर होता है, नीचे तरल पानी के रूप में और ऊपर जमी हुई ठोस बर्फ़ के रूप में। कवि कहते हैं कि दोनों ही रूपों में जल-तत्त्व ही विद्यमान है। प्रवहमान पानी जल का चेतन रूप है एवं जमी हुई बर्फ जल का जड़ रूप। मूल तत्त्व एक ही रहता है, चाहे उसे हम जड़ कहें या चेतन।

विशेष--(1) आध्यात्मिक दृष्टि से कवि प्रसाद जी यहाँ अभेदवाद का प्रतिपादन करते प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार परम सत्ता एक ही है, जो विभिन्न रूपों में विद्यमान है।

(2) विज्ञान भी पानी और बर्फ में एक ही तत्त्व मानता है।

(3) 'सज्जन' और 'चेतन' में अनुप्रास (अत्यानुप्रास) अलंकार है।

3. संध्या सुंदरी

(सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला')

(अ) कवि-परिचय :

कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सन् 1897 की बसंत पंचमी के दिन महिबादल (बंगाल) के मेदिनीपुत्र जिले में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. रामसहाय त्रिपाठी था। ये मूलतः उत्तर प्रदेश के गढ़कोला के रहनेवाले थे, परंतु नौकरी के कारण बंगाल में आकर बस गये थे। निराला जी जब तीन बरस के हुए तब उनकी माताजी का स्वर्गवास हो गया था। निराला जीने नौवीं कक्षा तक ही स्कूल की पढ़ाई की। बाद में उन्होंने संस्कृत, हिंदी, अंग्रेज़ी भी सीखी। बंगला भाषा तो वे जानते ही थे।

निराला जी ने अपने जीवन में बहुत कष्ट देखे। वे निरंतर संघर्ष करते रहे। साहस और स्वाभिमान उनमें कूट-कूट कर भरा था। साहित्य-लेखन ही उनकी आजीविका का साधन था। उन्होंने समन्वय, मतवाला, सुधा नामक पत्रिकाओं का संपादन भी किया। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। काव्य के अलावा उन्होंने कहानियाँ और उपन्यास भी लिखे। उनके ग्रंथों की संख्या 40 से अधिक है। सन् 1961 में इलाहाबाद में उनका स्वर्गवास हुआ।

छायावाद के चार स्तंभ कवियों में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की गणना की जाती है। छायावादी और प्रगतिवादी युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ उनके साहित्य में पायी जाती है। उन्होंने काव्य में प्रकृति और प्रेम के मनोरम बिंब देकर उसे रमणीय बनाया है। पूंजीपतियों का विरोध, शोपितों और गरीबों के प्रति सहानुभूति तथा नारियों के प्रति उदार दृष्टि के अनेक चित्र उनकी कविताओं में मिलते हैं। आत्मा और परमात्मा के अभिन्न संबंध को भी वे अपनी 'तुम और मैं' जैसी कविता में मुखरित करते हैं। यथा--

तुम तुंग हिमालय-श्रृंग

और मैं चंचल गति सुर-सरिता।

निराला के संपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व को चित्रित करते हुए विश्वंभर मानव लिखते हैं--''वे एक साथ छायावादी, प्रयोगवादी, राष्ट्रवादी मानवतावादी और ब्रह्मवादी भी हैं। वे व्यक्तिवादी भी हैं और समष्टिवादी भी, यथार्थवादी भी हैं और आदर्शवादी भी, निराशावादी भी हैं और आनंदवादी भी।''

काव्य के क्षेत्र में उन्होंने परंपरा से हटकर मुक्त छंद का भी प्रयोग किया। वे क्रांतिकारी कवि थे। उन्होंने कविताको छंदों के अनुशासन से मुक्त किया। जूही की कली, संध्या सुंदरी, भिक्षुक, विधवा, वह तोड़ती पत्थर आदि प्रसिद्ध कविताएँ उन्होंने छंदमुक्त शैली में ही लिखीं। जैसे--

दिवसावसान का समय,

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या सुंदरी परी-सी

धीरे धीरे धीरे।

रचनाएँ :--

मूलतः कवि होते हुए भी निराला जी ने अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन किया। उनके कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथ इस प्रकार हैं--

काव्य--अनामिका, गीतिका, परिमल, बेला, अर्चना तुलसीदास आदि।

कहानी--चतुरी चमार, सखी आदि।

उपन्यास--अप्सरा, अलका, निरुपमा आदि।

जीवनी--राणा प्रताप, प्रह्लाद, भीम।

अनुवाद--श्री रामकृष्ण वचनामृत, विवेकानंद के भाषण आदि।

काव्यगत विशेषताएँ :-

1. प्रकृति एवं प्रेम का मनोरम चित्रांकन

2. भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के प्रति आस्था

3. दार्शनिकता और आध्यात्मिकता

4. पूंजीपतियों के शोषण का विरोध

5. शोषितों और गरीबों के प्रति सहानुभूति

6. छंदमुक्त कविता का प्रवर्त्तन

7. भावानुकूल भाषा का प्रयोग

8. गीतात्मकता

(आ) कविता का सारांश :-

'संध्या सुंदरी' कविता निराला जी के प्रकृति-चित्रण का अत्यंत मनोरम उदाहरण है। उस कविता में कवि सायंकाल का सुंदर बिंब प्रस्तुत करते हैं। वे संध्या का मानवीकरण करके उसके आगमन की मधुर कल्पना करते है।

दिन बीत चुका है और संध्या सुंदरी आकाश से धीरे-धीरे उतरकर भूमि पर आ रही है। ऐसा लगता है मानो स्वर्ग की परी ही उतर रही है। संध्या सुंदरी का अंधकार रूपी अंचल स्थिर है। उसके अधर मधुर हैं, पर उन पर मुसकान नहीं है। आकाश में एक नक्षत्र चमक रहा है। यह साधारण नक्षत्र नहीं, संध्या सुंदरी के काले घुँघराले केशों में गुँधा हुआ तारा है, जो अपनी चमक (मुस्कराहट) से प्रिय संध्या सुंदरी का अभिषेक कर रहा है। कोमलांगिनी संध्या ने अपनी सखी निरवता (खामोशी) के कंधे पर बाँह डालती है। धीरे-धीरे छाया की तरह वह आकाश मार्ग से उतरकर भूमि पर आ रही है।

संध्या सुंदरी आसमान से उतरकर संसार के समस्त दिनभर के थके हुए प्राणियों को प्रेम के साथ मदिरा पिलाने लगती है। सब उसकी गोद में सो जाते हैं और मीठे-मीठे सपनों में खो जाते हैं। अर्धरात्रि की शांति में सब लीन हो जाते हैं। ऐसे शांत और मधुर वातावरण में कवि का हृदय अनुराग से भर उठता है। उसके विरहाकुल कंठ से तब स्वतः ही विहाग का राग फूट पड़ता है।

(इ) व्याख्या :-

अलसता की-सी लता,

किंतु कोमलता की वह कली,

सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,

छॉह सी अम्बर-पथ से चली।

प्रसंग-- यह अवतरण 'संध्या सुंदरी' कविता से लिया गया है। इस कविता के रचनाकार हैं सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला। इसमें कवि कल्पना करते हूँ कि संध्या-सुंदरी एक परी के समान आकाश से भूमि पर उतरती है। इन पंक्तियों में उसके आगमन का एक सुंदर चित्र खींचा गया है।

व्याख्या--सायंकाल के समय घुँघलापन छाया है। ऐसे में संध्या सुंदरी अलसता की लता के समान दिखाई पड़ती है। वह कुसुम-कली के समान अत्यंत कोमलांगी है। सहारे के लिए उसने अपनी बाँह सखी नीरवता के कंधे पर डालती है। वह धीरे-दीरे छाया के समान आकाश-मार्ग से पृथ्वी की ओर चल पड़ी है।

विशेष :-- (1) संध्या का मानवीकरण एक सुंदरी के रूप में किया गया है।

(2) नीरवता (खामोशी) भी मानवीकृत सखी के रूप में उपस्थित हुई है।

(3) अनुप्रास, उपमा और मानवीकरण अलंकारों का सुंदर प्रयोग है।

(4) सायंकाल की सुंदर बिंब-रचना की गई है।

4. मौन निमंत्रण

(सूमित्रानन्दन पंत)

(अ) कवि-परिचय :-

कविवर सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई सन् 1900 ई. में अलमोड़ा जिले के कौसानी नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. गंगादत्त पंत था। जन्म के दिन ही इनकी माता सरस्वती देवी चल बसी। इनके पिता और परिवार के अन्य लोगों ने इनका पालन-पोषण किया। कौसानी गाँव हिमालय की सुंदर घाटी में स्थित था, जिसके रमणीय वातावरण में इनका बचपन बीता। इनके हृदय में प्रकृति-प्रेम पल्लवित हुआ। आरंभिक शिक्षा इन्होंने कॉसानी और अल्मोड़ा में प्राप्त की। सन् 1921 में पंतजी ने महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आंदोलन से प्रभावित होकर कालेज की पढ़ाई छोड़ दी। पंत जी ने 1955-1957 में आकाशवाणी में चीफ़ प्रोड़्यूसर और हिंदी परामर्शदाता के रूप में भी काम किया था। पंतजी को सन् 1950 में ज्ञानपीठ पुरस्कार उनके काव्य-संग्रह 'चिदंबरा' पर मिला। उन्होंने 'लोकायतन' नामक एक चिंतन-प्रधान प्रबंधकाव्य की रचना भी की। सन् 1970 में पंतजी का स्वर्गवास हुआ।

पंतजी सुकुमार भावनाओं के कवि माने जाते थे। उनकी कोमल-कांत-पदावली से हिंदी-जगत् मुग्ध था। उनके काव्यों में प्रकृति का अत्यंत रमणीय चित्रण मिलता है। निम्नलिखित पंक्तियों से उनके अनन्य प्रकृति-प्रेम की झलक मिलती है।

छोड़ द्रुमों की मृद छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन?

पंतजी छायावादी कवि थे। उनकी सभी आरंभिक कृतियों में छायावादी प्रवृत्तियां मिलती हैं। प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-चित्रण, रहस्यात्मकता और मानवीयता से परिपूर्ण उनके काव्य-संग्रह हिंदी साहित्य की निधि हैं। उनके काव्य का विकास अनेक चरणों में हुआ है जैसे छायावादी, प्रगतिवादी, अध्यात्मवादी एवं मानवतावादी। सुमित्रानंदन पंत पर गाँधी, मार्क्स और अरविंद के विचारों का प्रभाव पड़ा था जो उनके काव्य में क्रमशः परिलक्षित होता है।

रचनाएँ--पंतजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनकार थे। उन्होंने हिंदी संसार को अनेक सरस, प्रेरणाप्रद और चिंतनपूर्ण ग्रंथ दिये है। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार है--

काव्य संग्रह--उच्छवास, ग्रंधि, वीणा, पल्लव, गुंजन युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, चिदंबरा आदि।

प्रबंधकाव्य--लोकायतन

कहानी संग्रह--पाँच कहानियाँ

उपन्यास--हार

काव्यगत विशेषताएँ--

1. प्रकृति का रमणीय चित्रण
2. श्रृंगार व प्रेम के कलात्मक बिंब
3. गीतात्मकता
4. प्रगतिवादी प्रवृत्तियों का प्रतिपादन
5. गाँधीवाद का समर्पन
6. आध्यात्मिक एवं दार्शनिकता
7. मानवतावादी संदेश
8. काव्य में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग

(आ) कविता का सारांश :-

कविवर सुमित्रानन्दन पंत की 'मौन निमंत्रण' कविता छायावादी काव्य की एक प्रतिनिधि रचना है। इसमें (आकर्षण और विस्मय से समन्वित) कवि का प्रकृति-चित्रण देखते ही जनता है। प्रकृति में होनेवाले विविध कार्य व्यापार जैसे चाँदनी का छिटकना, तारों का चमकना, फूलों का खिलना, लहरों का उछलना आदि-आदि कवि को मुग्ध कर देते हैं और अपनी क्रीड़ाओं से जुड़ने के लिए उसे आमंत्रित करते प्रतीत होते हैं। प्रकृति के भिन्न-भिन्न कार्यकलापों के माध्यम से जो कौतूहल पैदा कर रही है, वह परम सत्ता कौन है, यह जानने की जिज्ञासा कवि के मनमें उठती है।

चांदनी रात में जब सारा संसार मीठे स्वप्नों से भरी नींद में सो जाता है, तब कवि को लगता है कि टिमटिमाते नक्षत्रों से कोई उसे भी मौन निमंत्रण दे रहा है। आकाश में गरजते और बरसते हुए बादलों के बीच चमकनेवाली बिजली के मिस भी कोई उसे संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। कौन है जो वसंत में सर्वत्र फूलों के खिल ने पर सुगंध फैलाकर उसे (कवि को) संदेश भेजता है? प्रचंड पवन जब समुद्र को मंथकर फेन से भरी तरंगों को फैलाता है, तब वे तरंगें कवि को हाथ उठाकर बुलाती प्रतीत होती हैं। जब रात्रि के बाद भोर आकर सारे विश्व को सुनहरे प्रकाश से भर देती है और पक्षियों का कलरव दिशाओं में व्याप्त हो जाता है, तब ने जाने कौन चुपके से आकर पलकें खोलकर कवि को जगा देता है? रात्रि के अंधकार में जुगनुओं की रोशनी से कौन रास्ता दिखा जाता है। वह कौन है जो फूलों पर ओस-बिंदु सा दुलक कर कवि की दृष्टि को बरबस खींच लेता है? दिन-भर के श्रम से थके-माँदे कवि को स्वप्न लोक की सैर कराने कौन ले जाता है? कवि कहते हैं कि मुझे अबोध समझकर जो मार्ग दिखाता है और जीवन को संगीतमय बना देता है, वह मेरे सुख-दुख का साथी कौन है, मैं नहीं जानता।

इस प्रकार इस कविता में पंतजी ने प्रकृति के अनेक सुंदर बिंबों को जिज्ञासात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रकृति के कार्यकलापों का संचालन करनेवाली परम सत्ता को जानने की उनके मन में उत्सुकता पैदा हो जाती है।

(इ) व्याख्या :-

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर,
विहग कुल की कल-कंठ हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर,
न जाने अलस पलक-दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन।

प्रसंग :-- सुमित्रानंदन पंत की प्रसिद्ध छायावादी कविता 'मौन निमंत्रण' से ये पंक्तियाँ ली गई हैं। इसमें भोर (प्रातः) की वेला का अत्यंत मनोरम बिंब प्रस्तुत करते हुए कवि विस्मय प्रकट करते हैं कि कौन चुपके से आकर उन्हें भी जगा दिया है!

व्याख्या :-- रात्रि के विदा होते-होते जब उषा देवी (भोर) पृथ्वी पर आती है तो सूर्य का स्वर्णिम प्रकाश सर्वत्र बिखेर देती है। उसके आगमन से जन-जन आनंद का अनुभव करने लगता है। सारी प्रकृति शोभायमान हो जाती है और फूलों फी सुगंध से भूमि महकने लगती है। सारा संसार ऐसे सुखद वातावरण में मान हो जाता है। पक्षियों का मधुर कूजन उभरता है जिसकी तरंगे ऊँचे आसमान तक पहुँच जाती हैं। ऐसी सुरम्य वेला में कोई चुपके-से आकर मेरी अलसाई आँखों की पलकें खोल देता है और मैं जाग उठता हूँ। कवि जानना चाहते हैं कि आखिर वह अज्ञात मित्र कौन है?

विशेष :-- (1) भोर (उषा) का मानवीकरण एक देवी के रूप में किया गया है।

(2) प्रातः की वेला का आकर्षक बिंब प्रस्तुत हुआ है।

(3) अनुप्रास, मानवीकरण और अलंकारों का प्रयोग द्रष्टव्य है।

5. यात्रा और यात्री

(हरिवंशराय बच्चन)

श्री हरिवंशराय बच्चन का जन्म इलाहाबाद के एक प्रतिष्ठित परिवार में 27 नवंबर 1907 ई. हुआ। इनके पिता का नाम श्री प्रताप नारायण और माता का नाम सरस्वती देवी था। दोनों परम धर्मनिष्ठ और विद्याप्रेमी थे। हरिवंश राय ने अपनी सारी शिक्षा स्कूल से विश्वविद्यालय तक की, इलाहाबाद में ही प्राप्त की। उन्होंने पत्रकारिता से अपने कर्ममय जीवन की शुरुआत की। पहले वे पायोनियर नामक पत्र के संपादक बने। अंग्रेज़ी प्राध्यापक के रूप में सन् 1941 में वे प्रयोग विश्वविद्यालय से जुड़े। सन् 1954 में बच्चन जी ने इंगलैंड के केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की। अपनी पहली पत्नी श्यामादेवी के रोगग्रस्त

होकर गुजरने के बाद उन्होंने श्रीमती तेजी बच्चन के साथ दूसरा विवाह किया। दूसरी पत्नी ने अपने प्रेम और विश्वास से बच्चनजी के साहित्यिक व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित किया।

बच्चन जी हिंदी के हालावादी कवि के रूप में बहुत लोकप्रिय हुए। उमर खय्याम की रुबाइयों का उन्होंने हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत किया। उससे प्रभावित होकर हिंदी में 'मधुशाला' नामक मौलिक काव्य ग्रंथ की रचना की। यह काव्यकृति इतनी सरस थी कि हिंदी जगत् उस पर मुग्ध हो गया। इसके मुक्तको (रुबाइयों) की लोकप्रियता आज भी बनी हुई है। जैसे--

भावुकता-अंगूरलता से
खींच कल्पना की हाला,
कवि बनकर है साकी आया
भरकर कविता का प्याला।
कभी न कण-भर खाली होगा
लाख पिएँ दो लाख पिएँ,
पाठकगण हैं पीने वाले
पुस्तक मेरी मधुशाला।

बच्चन जी छायावादी युग के प्रभावशाली गीतकार के रूप में उभरे। वे मानव योजनाओं को मुखरित करनेवाले कवि थे। उन्होंने प्रकृति से भी अधिक प्रेम को महत्व दिया। प्रणय के बहुरंगी गीतों से उन्होंने साहित्य का श्रृंगार किया। उन्होंने विरह-गीत भी रचे और मिठास गीत भी। 'निशा निमंत्रण' और 'आकुल अंतर' के कवि ने ही 'मिलन-धामिनी' और 'प्रणय पत्रिका' जैसे काव्य-संग्रह दिये जिसके शब्द-शब्द से भावुकता टपकती है। केवल प्रणय-संवेदना ही नहीं, उनके काव्य में प्रगतिवादी, राष्ट्रवादी और मानवतावादी चेतना भी परिलक्षित होती हैं।

रचनाएँ-- बच्चन जी की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं :--

काव्य-ग्रंथ-- मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा-निमंत्रण, आकुल अंतर, सतरंगिनी, सूत की माला, मिलन-यामिनी, प्रणये-पत्रिका, आरती और अंगारे, दो चट्टानें आदि।

आत्मकथा-- क्या भूलूँ क्या याद करूँ।

अनुवाद--उमर खय्याम की मधुशाला, जनगीता, चौसठ रूसी कविताएँ।

काव्यगत विशेषताएँ--

(1) प्रणय-संवेदना की मार्मिक अभिव्यंजना

(2) हालावादी काव्य की सर्जना

(3) गीति-काव्य का विकास

(4) देशप्रेम और गाँधीवादी विचारों का प्रतिपादन

(5) मानवतावादी भावना की अभिव्यक्ति

(6) व्यंग्यात्मकता

(7) प्रसाद गुण-संपन्न भाषा का प्रयोग

(आ) कविता का सारांश :-

'यात्रा और यात्री' कविता में कविवर हरिवंश राय बच्चन प्रगतिशीलता की प्रवृत्ति को रेखांकित करते हैं। उनके अनुसार जीवन एक यात्रा है और मनुष्य को अंतिम साँस तक निर्भीक, संघर्षशील एवं कर्मठ बने रहकर इसे पूरा करना है।

कवि कहते हैं कि है मनुष्य! तू एक मुसाफ़िर यात्री है। तुझे अंतिम साँस तक चलते रहना है क्योंकि तेरा जीवन एक यात्रा है और यह यात्रा तुझे पूरी करनी ही है। गतिशीला ही सृष्टि का धर्म है। आकाश में तारे भ्रमण करते हैं और आकाश स्वयं महा शून्य में घूमता-घुमाता प्रतीत होता है। इस भूमि को देखो जिस पर हम खड़े हैं, यह कहाँ अचल और स्थिर है, यह भी तो गतिमान् है। इसका कण-कण गतिशील है, एक स्थान पर टिका नहीं रहता। इस प्रकार चारों और प्रकृति की गतिशील शक्तियों से घिरा मनुष्य कैसे एक ठौर पर ठहर सकता है? चलना ही उसका धर्म है।

मनुष्य का मार्ग सदैव समतल-सरल नहीं होता। मखमली घास भी होती है तो कंकड पत्थर और गड्ढे भी होते हैं। कहीं परीक्षा की घड़ी आती है तो कहीं प्रलोभन मिलते हैं। मनुष्य में शक्ति और कमजोरी दोनों होती है और उसे अवसर के अनुसार उट जाना या ढल जाना चाहिए। मार्ग में काँटे तो होंगे ही, पर उन्हें भी दलकर आगे बढ़ना चाहिए। सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों का प्रकाश न भी मिले या हाथ के दीपक को ही हवा का झोंका बुझादे, तब भी मनुष्य को, अपने भीतर जल रही आग की रोशनी से, रास्ता देख लेना चाहिए।

कवि कहते हैं कि संघर्षशील मानव अपने मार्ग के कष्टों और दुःखों से घबराता नहीं, उन्हें सहन करके आगे बढ़ता है। यह उसका पुरुषार्थ है, पराक्रम है। वह आशा का दामन नहीं छोड़ता, चाहे लोग उसे निर्लज्ज ही क्यों न कहें। दुःख की स्मृतियाँ सत्य हैं और भावी सुख का स्वप्न देखना असत्य। पर यदि ऐसे असत्य को साकार करना है, तो सत्य को छलना या उसकी उपेक्षा करना अनुचित नहीं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह निरंतर चलता रहे और सफलता पाने के लिए आखिरी खाँस तक संघर्ष करता रहे। यही उसका मानवीय कर्त्तव्य है, धर्म है।

(इ) व्याख्या :-

ये यहाँ पर गर्त, पैरों
को जमाना ही पड़ा था,
पत्थरों से पाँव के
छाले छिलाना ही पड़ा था,
घास मखमल-सी जहाँ थी
मन गया था लोट सहसा,
थी घनी छाया जहाँ पर
तन जुड़ाना ही पड़ा था।
पग परीक्षा पग प्रलोभन
जोर-कमजोरी भरा तू,
इस तरफ उटना उधर

ढलना पड़ेगा ही, मुसाफिर!

साँस चलती है तुझे

चलना पड़ेगा ही, मुसाफिर!

प्रसंग :-- उपर्युक्त पंक्तियाँ कविवर हरिवंशराय बच्चन की कविता--'यात्रा और यात्री' से ली गई हैं। जीवन गतिशीलता का नाम है। चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, सम या विषम, सुखद या दुःखद, सबको पान करके आगे बढ़ना ही मनुष्य का धर्म है। यही संदेश देते हैं बच्चन जी इस कविता में।

व्याख्या-- कवि कहते हैं कि हे मनुष्य! तेरे मार्ग में अनेक गड्ढे भी थे, जिन्हें सँभलकर पाँव रखते हुए तूने पार किया था। चलते-चलते तेरे चरणों के छाले कंकड़-पत्थरों से छिलकर तुझे पीड़ा पहुँचाते थे। पर तू चलता ही गया। जहाँ पर तुझे मखमली घास मिली, तेरा मन वहाँ लोट भी गया था। जहाँ भी तुझे छाया दिखायी दी, तू ने वहाँ रुक कर शरीर को आराम भी दिया। दुःख और सुख पहुँचानेवाली दोनों प्रकार की स्थितियों को तूने पार किया। जीवन की यात्रा में कदम-कदम पर परीक्षाएँ हैं और प्रलोभन भी हैं। तुझमें हिम्मत और ताकत है तो मन की कमजोरी भी है। पर तुझे रुकना नहीं है। एक ओर डटकर सामना करना है तो दूसरी ओर आगे भी बढ़ना है। जब तक अंतिम साँस है, तब तक तुझे जीवन-यात्रा में चलते ही जाना है।

विशेष :-- (1) यह बच्चन जी की एक सशक्त गीत-रचना है। (2) इसमें जीवन की द्वंद्वात्मक स्थितियों का चित्रण है। (3) इन काव्य-पंक्तियों में कवि की प्रगतिवादी चेतना का स्वर निहित है।

6. किसको नमन करूँ मैं?

(रामधारीसिंह 'दिनकर')

(अ) कवि-परिचय :-

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' का जन्म 23 सितंबर 1908 को सिमरिया गाँव (जिला बेगूसराय, बिहार) में हुआ था। इनके पिता का नाम रविसिंह था। इनकी आरंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई। मोकामाघाट के हाई स्कूल से मेट्रिक किया, जहाँ हिंदी में सर्वाधिक अंक पाने पर उन्हें 'भूदेव स्वर्ण पदक मिला। स्कूल के दिनों से ही दिनकर जी कविता करने लगे थे। बाईस वर्ष की अवस्था में 1930 ई. में युवा कवि ने 'प्रणभंग' नामक

कविता की रचना की, जिसका उल्लेख आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में किया है। दिनकर जी ने मुजफ़्फरपुर कालेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया। कुछ समय तक वे भागलपुर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर रहे। उन्होंने भारत सरकार की हिंदी सलाहकार समिति के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। वे राज्य सभा के सदस्य भी रहे। सन् 1959 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित किया। देश का सर्वोच्च साहित्यिक ज्ञानपीठ पुरस्कार दिनकर जी को सन् 1973 में उनके 'उर्वशी' काव्य पर मिला था।

दिनकरजी को दक्षिण भारत से बहुत लगाव था। वे अकसर मद्रास आया करते थे और अपने कवितापाठ से साहित्यिक समुदाय को आनंदित एवं प्रेरित कर देते थे। उनका स्वर्गवास 24 अप्रैल 1974 को मद्रास (चेन्नई) में हुआ। पटना के बाँसछाट पर 25 अप्रैल को उनका अंतिम संस्कार किया गया।

कवि दिनकरजी का बहिरंग व्यक्तित्व बहुत आकर्षक और प्रभावशाली था। ऊँचा डीलडौल, गौर वर्ण, प्रशस्त ललाट, शुभ्र धोती-कुर्ते का भारतीय वेश और गंभीर ओजभरी वाणी, सब कुछ देखनेवालों पर अमिट छाप छोड़ देते थे। देशभक्ति उनकी रग-रग में भरी थी। हिंदी के राष्ट्रवादी और प्रगतिवादी कवियों में उनका सम्माननीय स्थान है। देश को क्रांतिकारी, साहसी, बलिदान प्रिय युवकों की आवश्यकता है, इसीलिए उन्होंने 'हिमालय' से आग्रह किया--

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर फिरा हमें गांडीव-गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।

युद्ध और शांति की समस्या पर दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' की रचना की तो प्रेम और काम को आधार बनाकर 'उर्वशी' काव्य लिखा। इतिहास और संस्कृति में उनकी गहरी आस्था थी, जिसके फलस्वरूप उन्होंने 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक एक बृहद् ग्रंथ भी लिखा। इस ग्रंथ की भूमिका स्वयं पं. जवाहरलाल नेहरू ने लिखी थी।

रचनाएँ :-

श्री रामधारीसिंह दिनकर ने पद्य और गद्य में उच्च कोटि के ग्रंथ हिंदी भारती को समर्पित किये हैं। उनके कुछ उल्लेखनीय ग्रंथ इस प्रकार हैं--

काव्य--रेणुका, हुंकार, रसबंती, सामधेनी, बापू, नीलकुसुम, परशुराम की प्रतीक्षा, हारे को हरिनाम आदि।

खंडकाव्य-- प्रणभंग, कुरुक्षेत्र और रशिम रथी।

नाट्यगीति--उर्वशी

गद्य--संस्कृति के चार अध्याय, मेरी यात्राएँ, काव्य की भूमिका आदि।

काव्यगत विशेषताएँ :--

1. राष्ट्रीयता की भावधारा से ओतप्रोत काव्य का सृजन।
2. काव्य में प्रगतिवादी चेतना और क्रांति का स्वर।
3. सामाजिक वैषम्य, अन्याय और शोषण का विरोध।
4. युद्ध और शांति की समस्या पर गहन चिंतन और काव्य में अभिव्यक्ति। (कुरुक्षेत्र)
5. प्रेम और काम तत्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। (उर्वशी)
6. मानवतावादी भावों की प्रतिपादन।
7. सशक्त प्रवाहमयी ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग।
8. छंदीबद्ध और छंदमुक्त, दोनों प्रकार की काव्य रचनाएँ।

(आ) कविता का सारांश :--

'किसको नमन करूँ मैं?' कविता के रचनाकार हैं हिंदी के राष्ट्रीय कवि और युग-चारण श्री रामधारीसिंह दिनकर। यह कविता उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक उत्तम रचना है। इसमें उन्होंने भारत का भव्य चित्र खींचकर कहा है कि 'अपने गुणों, आदर्शों और मूल्यों के कारण वह समस्त संसार का सम्मान्य और वंदनीय देश है।' पूरी कविता भारत के वास्तविक स्वरूप से परिचय कराती है।

कवि दिनकर कहते हैं कि एक भारत हमें त्रिभुजाकार भूभाग के रूप में दिखाई देता है। वह तीन समुद्रों से घिरा है। उसमें अनेक पर्वत हैं, घने जंगल है। क्या यह विशाल भूखंड ही नमन करने योग्य है। कवि भारत को संबोधित करके पूछते हैं कि मेरे भारत! तू ही बता, मैं किसे प्रणाम करूँ? तेरे बाह्य रूप (देह) को नमन करूँ या तेरे आंतरिक रूप (आत्मा) को नमन करूँ? फिर वे स्वयं उत्तर देते हैं कि भारत का असली रूप तो उसकी आत्मा है, उसकी संस्कृति है, उसकी मानवता है।

भारत की भव्यता को चित्रित करते हुए दिनकर जी कहते हैं कि भारत ज्ञान का पुंज है। उसे सृष्टि के समस्त रहस्यों का पता है और वह मनुष्य की आकाश में, विचरण करने की दृढ़ कल्पना का प्रतीक है। वह केवल पत्थर या पानी से युक्त भूखंड नहीं है, वह जड़ता में निहित चेतना है। भारत मानव-समुदाय की आध्यात्मिक साधना का लक्ष्य है। उसमें ईश्वरत्व है।

भारत 'वसुधैव कुटुम्बकम' का आदर्श है। जहाँ एकता और समानता है तथा जहां प्रेम और विश्वास है, वहाँ भारत है। भारत वहाँ नहीं है जहाँ भय और त्रास है, फूट और स्वार्थ है। भारत स्थान का नहीं, गुणों का वाचक है। संसार में जहाँ भी प्रेम और एकता है, वहाँ भारत ही विद्यमान है। समस्त विश्व भारत को नमन करता है।

भारत वह देश है जो सबको जोड़ता है। विभिन्न समुदायों के बीच सेतु बनता है। विश्व में प्रेम, ऐक्य और शांति का स्वर गुँजानेवाला देश भारत ही है। यहाँ के नागरिक धर्म के मार्ग पर चलते हैं और सत्य न्याय की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग कर देते हैं। मनुष्यता के ललाट पर शोभित चंदन की तरह पावन इस देश को कवि नमन करता है।

(ई) व्याख्या :--

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुणविशेष नर का है, एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है, जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है, देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है।

निखिल विश्व को, जन्मभूमि-वंदन को नमन करूँ मैं

किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?

प्रसंग-- यह अवतरण 'किसको नमन करूँ मैं?' शीर्षक कविता से लिया गया है। इस कविता के रचनाकार हैं कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर'। इसमें कवि भारत को सर्वगुणसंपन्न, विश्ववंदित देश के रूप में चित्रित करते हुए नमन (प्रणाम) करते हैं।

व्याख्या-- भारत किसी भूखंड का नाम नहीं है, वह मनुष्य मात्र के विशिष्ट गुणों का परिचायक नाम है। भारत केवल एक देश के शील का ही नहीं, संसार भर के सच्चरित्र का नाम है। संसार के हर उस देश में जहाँ लोगों में पूरी एकता है और जहाँ प्रेम का स्वर गूँजता है, वहाँ भारत ही तो विद्यमान रहता है, जीवित और प्रदीप्त भारत। समस्त विश्व जिसे अपनी जन्मभूमि मानकर वंदना करता है, वह मेरे लिए चिर प्रणम्य है। इसीलिए कवि कहते हैं कि है भारत! मैं तुझे नमन करता हूँ।

विशेष :-- (1) राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत है दिनकर जी का यह गीत।

(2) कवि भारत को उदात्त गुणों का प्रतीक मानते हैं।

(3) भाषा सरल ओजमयी है।

(4) अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग किया गया है।

7. सत्य तो बहुत मिले

(श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय')

कविवर अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय है। इनका जन्म सन् 1911 में देवरिय जिले के कसया नामक स्थान में हुआ। इनके पिता हीरानंद पुरातत्व विभाग में अधिकारी थे, जिनका स्थान-स्थान पर ट्रांसफर होता रहता था। इसीलिए इनकी शिक्षा अनेक स्थानों पर हुई। बी.एससी. करने के बाद इन्होंने अंग्रेज़ी एम.ए. में प्रवेश लिया। परंतु क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़ने के कारण पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी। पत्रकारिता में रुचि थी, अतः सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, दिनमान और नवभारत टाइम्स जैसे पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे आकाशवाणी से भी कुछ समय जुड़े रहे।

अज्ञेय जी ने प्रयोगवाद का प्रवर्त्तन किया। सन् 1943 ई. में उन्होंने सात कविताओं का संकलन-संपादन 'तार-सप्तक' नाम से प्रकाशित किया। बाद में 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' संकलन भी निकाले। 'तार सप्तक' ने आधुनिक हिंदी काव्य को नया आयाम दिया। इन संकलनों के अतिरिक्त कवि ने अपनी मुक्तक कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित किये जैसे भग्नदूत, चिंता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर आदि। अज्ञेय अपनी कविता-यात्रा में हृदय ओर मस्तिष्क को साथ लकर चलते हैं। उनके काव्य में संवेदना और बौद्धिकता दोनों है। कभी-कभी उनके व्यंग्य हृदय को छूते भी हैं।

अज्ञेय जी उच्च कोटि के कथाकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कई कहानियाँ और उपन्यास हिंदी जगत को दिये हैं। उन्होंने विपथगा, परंपरा, अमर वल्लरी जैसे कहानी बंग्रह और शेखर-एक जीवनी, नदी के दीप, अपने-अपने अजनबी जैसे उपन्यास भी लिखे!

अज्ञेय जी को उनके काव्य संग्रह 'कितनी नावों में कितनी बार' पर सर्वोच्च ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् 1987 ई. में अज्ञेय जी का स्वर्गवास हुआ। उनकी व्यंग्यपूर्ण कविता की एक बानगी देखें-- ''साँप/तुम सभ्य तो नहीं/नगर में बसना/भी तुम्हें नहीं आया/एक बात पूँछूँ--(उत्तर दोगे?)/तब कैसे सीखा डसना विष कहाँ पाया?''

रचनाएँ :-- अज्ञेय जी की कुछ उल्लेखनीय महत्त्वपूर्ण कृतियाँ इस प्रकार हैं--

मौलिक काव्य संग्रह :-- भग्रदूत, चिंता, हत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बाखरा अहेरी, आँगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार आदि।

सणदित काव्य :-- तार सप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक।

कहानी-संग्रह--तिपथगा, परंपरा, अनर वल्लरी आदि।

उपन्यास--शेखर एक जीवनी, नदी के हीप, अपने-अपने अजनबी।

काव्यगत विशेषताएँ :-

(1) भावों की अभिव्यक्ति की प्रयोगात्मक शैली

(2) व्यक्तिपरक कविताओं का सृजन

(3) काव्य में यथार्थवाद की झलक

(4) बौद्धिकता का प्रभाव

(5) रूढ़ियों का विरोध

(6) काव्य में नये उपमान और प्रतीकों का प्रयोग

(आ) कविता का सारांश :-

'सत्य तो बहुत मिले' कविता के रचनाकार हैं कविवर अज्ञेय। इस कविता में वे सत्य की खोज करते हैं तो उन्हें सत्य का अनुभव अनेक रूपों में होता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक की जीवन यात्रा में कवि अनेक व्यक्तियों, घटनाओं, परंपराओं से रू-ब-रू होते हैं और सत्य को बहुरूपों में देखते हैं।

कवि कहते हैं कि मेरे मन में सत्य को देखने की उत्सुकता पैदा हुई। मैं सत्य की खोज में निकल पड़ा। इस खोज में मैंने अनेक सत्य (यथार्थ) व्यक्तियों के रूप में देखे। कुछ नये तो कुछ पुराने चेहरे। कुछ अपने और कुछ पराये। कुछ अकड़नेवाले मिले तो कुछ शांत-विनत मिले।

अलग-अलग स्वभाव के लोग भी मिले, जैसे लुभानेवाले, डरानेवाले, सही परिचय देने वाले और भ्रम में डालनेवाले। सत्य मुझे परंपराओं के रूप में भी दिखे--कुछ स्वस्थ, कुछ ध्वस्त, कुछ झड़े और सड़े हुए सत्य। कुछ धुँधले और कुछ उजले सत्य भी नज़र आये। पर मुझे संतोष नहीं हुआ और मैं सत्य की खोज करता रहा।

अज्ञेय जी आगे कहते हैं कि हे सत्य! तुम आकाश की तरह अनंत, गुफा की तरह गहन, मोम की तरह कोमल और पत्थर की तरह कठोर हो। तुम किसी देवता से नहीं निकले। जन्म से तुम मेरे साथ हो। तुम मेरे आँसू के साथ गले हो, मेरे रक्त के साथ पले हो, मेरे अनुभवों के ताप से तपते रहे हो और मेरे जीवन की प्रतिक्षण उभरती चिता की आग में जलते रहे हो। तुम्हारी भस्म (सत्य) को फिर मैंने अपनी भभूत में पाया। मैंने उसे अंग लगाकर अपना लिया। सत्य की खोज करते-करते मैंने वह सत्य पा लिया, जो जीवन का अभिन्न अंग है।

इस प्रकार अज्ञेय जी इस कविता में सत्य के विविध रूपों का चित्रण करते हुए वास्तविक सत्य तक पहुँचते हैं।

(इ) व्याख्या :-

खोज में जब
निकल ही आया
सत्य तो बहुत ही मिले।
कुछ नये कुछ पुराने मिले
कुछ अपने कुछ बिराने मिले
कुछ दिखाने कुछ बहाने मिले
कुछ अकड़ू कुछ मुँह चुराने मिले
कुछ घुटे-मँजे सफ़ेद पोश मिले
कुछ दईमाने कुछ खाना बरोश मिले।

प्रसंग :-- उपर्युक्त पंक्तियाँ अज्ञेय की कविता 'सत्य तो बहुत मिले' में ली गई हैं। इसमें कवि सत्य को खोजने का प्रयास करते हैं। सत्य की खोज में वे सत्य के विविध रूपों से अवगत होते हैं। बहिर्जगत में कवि जिनसे मिलते हैं, वे सब अपने-अपने स्वरूप में उन्हें सत्य ही जान पड़ते हैं प्रत्येक मिलन और प्रत्येक अनुभव उन्हें सत्य का ही आभास देता प्रतीत होता है।

व्याख्या -- अज्ञेय जी कहते हैं कि जब मैं सत्य की खोज में निकला तो मेरी मुलाकात अनेकों से हुई। सब मुझे सत्य (यथार्थ) के पुतले ही नज़र आये। उनमें से कुछ नये थे, कुछ पुराने। कुछ अपने थे, कुछ पराये। कुछ दिखावा करते हुए मिले तो कुछ किसी बहाने मिले। कुछ अकड़ने वाले मिले तो कुछ झेंपू, नजर न मिलानेवाले भी मिले। कुछ खेत वस्त्रधारी चुस्त और शिष्ट व्यक्ति मिले तो कुछ भाग्य के मारे भटकनेवाले भी मिले। मैंने अपने इर्द-गिर्द ऐसे कई लोगों को देखा और उनके वास्तविक चेहरों को पहचाना।

विशेष :-- (1) कविवर अज्ञेय इन पंक्तियों के द्वारा समाज के कई चेहरों को बेरकार कहते हैं और उनकी यथार्थ प्रकृति से हमें अवगत कराते हैं।

8. आधुनिक व्यक्तित्व

(श्री अ. सुमतीन्द्र)

(अ) कवि-परिचय :

श्री अ. सुमतीन्द्र का जन्म सन् 1931 ई. में तिरुनेलवेली (तमिलनाडु) के कुदंगिणी नामक गाँव में हुआ। इनकी मातृभाषा तमिल थी। इनकी आरंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई थी। इन्होंने तमिल भाषा के अतिरिक्त संस्कृत और हिंदी का भी अध्ययन मेरठ, हापुड और बरेली के गुरुकुलों में रहकर किया। हिंदी के अलावा इन्होंने अंग्रेज़ी में भी एम.ए. किया। इन्होंने लगभग 20 वर्षों तक दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (तिरुच्ची) के माध्यम से हिंदी की सेवा की। सन् 1951 में सुमतीन्द्र जी मदुरै के स्थानीय मधुरै कालेज में हिंदी के प्राध्यापक बन गये, जहाँ अवकाश प्राप्ति तक कार्य करते रहे।

काव्य के माध्यम से हिंदी की सेवा करनेवाले दक्षिण के विद्वानों में सुमतीन्द्र जी अग्रगण्य हैं। प्रकृति-प्रेम और देशभक्ति उनके काव्य के प्रधान विषय थे। मनुष्य का प्रकृति के साथ जो रागात्मक संबंध होता है। उसे समतीन्द्रजी बड़ी कुशलता के साथ चित्रित करते हैं। उन्होंने प्रकृति के कई आकर्षक बिंब अपने काव्य में प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत अनेक मुक्तक कविताओं का सृजन किया। राष्ट्र के उन्नायकों के प्रति अपनी श्रद्धा को उन्होंने काव्य में अभिव्यक्त किया है।

सुमतीन्द्र जी की भाषा संस्कृत निष्ठ होते हुए भी सरल है। प्रकृति चित्रण में वे अलंकारमयी भाषा-शैली का प्रयोग करते हैं।

रचनाएँ :--

कवि सुमतीन्द्र के उल्लेखनीय ग्रंथ इस प्रकार हैं।

काव्य-संग्रह -- ' एक पल की याद में' और 'नील गगन की घाटी में'।

काव्यगत विशेषताएँ :-

(1) प्रकृति के मनोरम बिंबों का चित्रण।

(2) देशप्रेम की अभिव्यक्ति।

(3) राष्ट्रीय महापुरुषों के प्रति श्रद्धा का भाव।

(4) आलंकारिक भाषा का प्रयोग।

(5) नये प्रतीकों और उपमानों की योजना।

(आ) कविता का सारांश :-

'आधुनिक व्यक्तित्व' सुमतीन्द्रजी की एक प्रयोगवादी रचना है। इस कविता में आधुनिक मानव की प्रकृति का, यथार्थ चित्रण किया गया है। आज के मनुष्य का स्वभाव, उसकी जीवन-शैली और उसके आचार-विचार अपने पूर्वजों से बिलकुल अलग हैं। कवि उत्तम पुरुष शैली में आधुनिक व्यक्ति का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है। कवि सुमतीन्द्र जी आधुनिक व्यक्तित्व के मिश्रित रूप को देखते हैं।

कवि के अनुसार आज का मानव पुराने का वंशज होते हुए भी पूर्वजों से गुण-स्वभाव में भिन्न है। उस पर आधुनिकता हावी हो गई है। पूर्वजों की सरलता और सादगी उसके जीवन से दूर हैं, उनका स्थान छल-कपट और आडंबर ने ले लिया है। पुराने लोगों की एकरूपता अब नहीं रही। अंदर कुछ और बाहर कुछ, उनके चरित्र की खूबी बन चुकी है। भोले-भाले पूर्वज मन से उजले थे। वे अपने समाज में परस्पर प्रेम से रहते हुए जीवन यापन किया करते थे। जीवन के प्रति उनमें गहरी आस्था थी। न कोई निराशा, न कोई आक्रोश।

कवि कहते हैं कि अब वैसी स्थिति कहाँ? आधुनिक मानव के जीवन में न सरलता है, न पवित्रता। संप्रदायों में बँटा हुआ आज का आदमी मूल धर्म से कट गया है। वह भाषा के नाम पर लड़ पड़ता है और जाति के नाम पर आग्रही बनकर अड़ जाता है। वह अनेक कुंडाओं से ग्रस्त हो चुका है। वह अच्छे-बुरे गुणदोषों का पुतला बन गया है। उसके मिले जुले व्यक्तित्व में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों हैं, पाप-पुण्य दोनों के अंश है। कवि कहते हैं कि आज के आदमी का व्यक्तित्व कई कतरनों से बने मेजपोश के समान है।

(इ) व्याख्या :--

न गोरा हूँ, न काला हूँ, न उजला हूँ

न पापी हूँ, न पुण्यात्मा।

मैं जगह-जगह से जुड़ा

सीधी तिरछी कतरनों से बना

मेजपोश हूँ।

प्रसंग :-- यह अवतरण सुमतीन्द्र जो की कविता 'आधुनिक व्यक्तित्व' से लिया गया है। इस कविता में कवि न आधुनिक आदमी का खाका खींचा है।

कवि स्वयं को आधुनिक मानव का प्रतीक मानते हुए कहते हैं कि मेरा व्यक्तित्व एकरूप नहीं है। मैं पूर्ण रूप से न गोरा हूँ न काला। मुझ में मन की उज्ज्वलता भी नहीं है। मैं पूर्ण रूप से पापी नहीं हूँ, तो पुण्यात्मा भी नहीं हूँ। तन कुछ गोरा है, पर मन तो पूरी तरह काला है। पुण्य कम तो पाप अधिक दोनों के अंश मुझमें विद्यमान हैं। मेरा व्यक्तित्व सीधे-तिरछे कपड़ों के टुकड़ों (कतरनों) को जोड़कर बनाये हुए मेजपोश की तरह ही है, जो अखंड होकर भी खंडित ही है।

विशेष :-- (1) कविता में आधुनिक व्यक्तित्व की तुलना नये उपमान मेजपोश से की गई है। यह प्रयोगवादी कविता की विशेषता है।

(2) 'न' की कई बार आवृत्ति होने से अनुप्राप्त अलंकार की छटा दिखाई पड़ती है।

(3) भाषा सरल और बोधगम्य है।

~ ~ ~ ~ ~

Unit -3

History of ancient Hindi literature

हिन्दी साहित्य का इतिहास

विषय प्रवेश :

हिंदी भाषा का आरंभ 1000 ई. के आसपास हुआ माना जाता है। कोई भाषा अस्तित्व रहती तो काफ़ी पहले से है, परंतु जब साहत्य में उसका प्रयोग होने लगता है, तभी से उसका प्रामाणिक जन्म हुआ मानाजाता है। इसीसाधारण नियम के अनुसार हिन्दी का रूप साधारण बोलचाल की भाषा का रहा होगा। धीरे-धीरे जन कवियों ने उसका प्रयोग साहित्य में करना आरंभ कर दिया होगा। आलोचकों का अनुमान है कि हिंदी संभवतः सन् 778 ई. से पहलेसे बोली जाती रही होगी। परंतु यह निश्चित है कि नवीं और दसवीं शताब्दी तक आते-आते हिन्दी जनता की बोलचाल की इतनी प्रमुख भाषा बन चुकी थी कि तत्कालीन धर्म-प्रचारकों को अपने धर्म का प्रचार करने के लिए इसीका सहारा लेना पड़ा। जैन साहित्य में और अपभ्रंश की रचनाओं में जहाँ-तहाँ हिन्दी झलकने लगी थी।

1000 ई. तक अपभ्रंश - साहित्य में हिन्दी के शब्दों का इतना अधिक प्रयोग होने लगा था कि आचार्य हेमचंद्र को अपने ग्रंथ ''सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन'' में उन शब्दों का संग्रह करना पड़ा। राहुल सांकुत्यायन और चंद्रधर शर्मा ''गुलेरी'' ने इस काल की भाषा को इसी कारण ''पुरानी हिन्दी'' कहा है। इस तरह प्रमाणित हो जाता है कि 1000 ई. तक साहित्य में हिन्दी का प्रयोग होने लगा था, इसलिये हिन्दी भाषा का विकास 1000 ई. से ही मानना चाहिए।

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के 1000 वर्षों के इतिहास को चार कालों में विर्भाजित किया है --

1.	आदिकाल (वीरगाथा काल)	संबत्	1050 से 1375 तक
2.	पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)	संबत्	1375 से 1700 तक
3.	उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)	संबत्	1700 से 1900 तक
4.	आधुनिक काल (गद्य काल)	संबत्	1900 से आज तक

संबत् ईसाई से 57 साल पहले आरंभ होता है। आदिकाल ईसाई के अनुसार 993 ई. में आरंभ होता है। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का उपर्युक्त काल विभाजन इस आधार पर किया है कि जिस काल में जिस विषय की रचनाएँ अधिक हुई हैं, उसी प्रवृत्ति विशेष के आधार पर उस काल का वही नाम रख दिया है। वीरगाथा काल में वीर रसात्मक काव्यों की प्रबलता रही, इसलिए वह वीरगाथा काल कहा गया।

भक्तिकाल पहले दो भागों में बाँटा गया है -- निगुर्णमार्गी और सगुण मार्गी। फिर इन दोनों के दो-दो भेद किये गये हैं। निर्गुणमार्गी शाखा के दो भेद हैं - ज्ञानाश्रयी शाखा जिसके प्रतिनिधि कबीर थे और प्रेमाश्रयी शाखा जिसके प्रतिनिधि जायसी थे। सगुर्ण मार्गी शाखा के दो भेद हैं, राम भक्ति शाखा, जिसके प्रतिनिधि तुलसी थे और कृष्ण भक्ति शाखा, जिसके नेता सूर थे।

आधुनिक काल को भी विवेचन की सुविधा के लिए दो भागों में बाँट दिया गया है -- पद्य खंड और गद्य खंड। इनमें गद्यसाहित्य और पद्य साहित्य का अलग अलग विवेचन किया गया है।

1. आदिकाल (वीरगाथा काल)

(संबत् 1050 से 1375 तक)

2. भक्तिकाल (सं 1375 से 1700 तक)

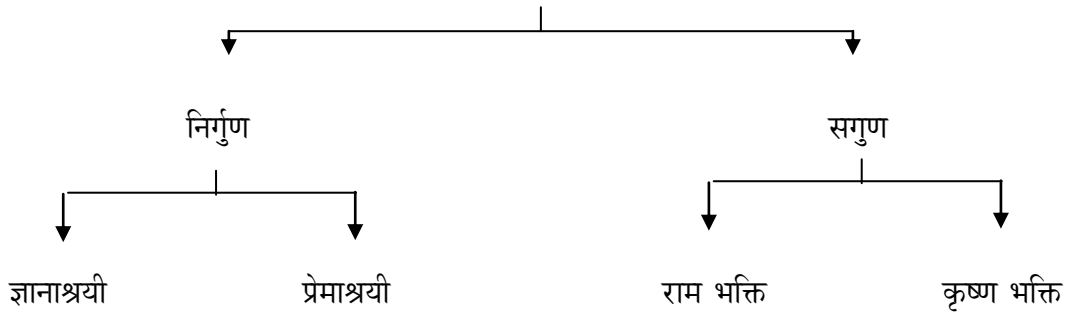

3. रीतिकाल (सं. 1700 से 1900 तक)

4. आधुनिक काल (सं 1900 से आजतक)

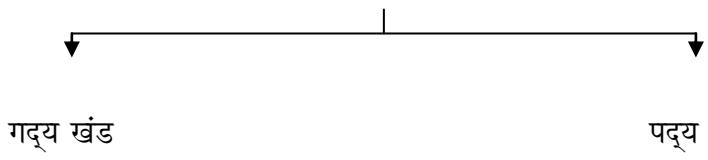

1. वीरगाथा काल

(संवत् 1050 से 1375 तक)

वीर गाथा काल में दो प्रकार की साहित्यिक पुस्तकें मिलती हैं -- अपभ्रंश भाषा की और देश भाषा की। देश-भाषा की पुस्तकें निम्नलिखित हैं -- 1. खुमान रासो, 2. बीसलदेव रासो, 3. पृथ्वीराज रासो, 4. जयचंद्र प्रकाश, 5. हम्मीर रासो, 6. आल्हा खंड, 7. विजयपाल रासो, 8. विद्यापति की कीर्तिलता, 9. कीर्तिपताका, 10. पदावली आदि।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उपर्युक्त पुस्तकों को ही आधार मानकर वीरगाथा काल का विवेचन किया है।

आदिकाल भारत के इतिहास का वह काल था, जब उत्तर भारत पर लगातार विदेशी मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे। इन आक्रमणों का जोर पश्चिमी भारत को ही सहना पड़ रहा था। भारत के अंतिम सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद केंद्रीय शक्ति नष्ट हो गयी थी। छोटे-छोटे राज्यों में परस्पर युद्ध होते थे। कालांतर मेंविदेशी आक्रमणों के कारण, आपसी युद्धों के कारण इस भाग में एक अराजक स्थिति उत्पन्न कर दी थी ऐसे वातावरण में कवियों का ध्यान अन्य प्रकार की रचनाओं से हटकर वीर रस प्रधान गाधाओं की ओर गया। उस काल के कवि स्वयं युद्ध में भाग लेते थे। युद्ध के प्रत्यक्ष साक्षी थे। इसलिए उनकी रचनाओं में युद्ध का सजीव वर्णन रहता था। इस काल के कवि कोरे कवि न थे। उन्होंने एक हाथ में लेखनी और दूसरे में तलवार पकड़कर अपने आश्रय दाताओं के साथ युद्धों में सक्रिय भाग लिया था। ''पृथ्वीराज रासो'' के रचियता चंदबदाई और आल्ह खंड के कवि जगनिक ऐसे ही कवि-योद्ध थे। वीरगाथा काल में दो प्रकार की रचनाएँ हुई थी -- वीर गीतों की, और प्रबंध काव्यों की। वीर गीतों की श्रेणी में बीसलदेव रासो, आल्हाखंड आदि ग्रंथ आते हैं। प्रबंध काव्यों में खुमान रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद्र प्रकाश आदि की गणना की जाती है। भाषा की दृष्टि से आदिकाल में चार भाषाओं की रचनाएँ मिलती हैं -- अपभ्रंश, डिंगल, मैथिली और खडीबोली। सिद्धयों, जैन आचार्यों, योगियों आदि के ग्रंथों की भाषा अपभ्रंश है, नाथ पंथियों की भाषा में राजस्थानी, पंजाबी, अपभ्रंश तथा खड़ी बोली का मिश्रण है। विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका नामक पुस्तकें अपभ्रंश में लिखी गई थी, परंतु उन्होंने अपनी पदावली की रचना मैथिली में की थी। रासो ग्रंथों की भाषा प्रधानतया डिंगल है। अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में रचनाएँ लिखी थीं। इसमें वर्तमान खड़ीबोली के प्रारंभिक रूप के दर्शन होते हैं।

आदिकाल के नामकरण की समस्याएँ :

आचार्य शुक्ल ने यह तो स्वीकार किया है कि ''यद्यपि न कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही इनका नामकरण किया गया है, फिर भी यह न समझना चाहिए कि किसी काल में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थीं''। स्वयं शुक्ल जी के अनुसार मश्र बन्धुओं ने आदि काल के भीतर लगभग बारह पुस्तकों की नामावली दी है जिसमें ''जैनधर्म के तत्त्व निरूपण परक ग्रंथ ही अधिकांश है'' कहकर उन्हें साहित्य की कोटि से बहिष्कृत कर दिया है और कुछ को योग परक एवं नोटिस मात्र कहकर छोड़ दिया गया है। सिद्धान्ततः उन्होंने यही घोषणा की, कि ''इस प्रकार प्रत्येक काल का एक निर्दिष्ट सामान्य लक्षण बताया जा सकता है। अर्थात् एक विशिष्ट प्रवृत्ति की प्रचुरता से उस काल का नामकरण किया गया है।''

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी द्वारा किये गये इस नामकरण पर आपत्ति प्रकट की है। उनका कथन है ''इधर हाल की खोजों से पता चलता है कि जिन बारह पुस्तकों के आधार पर शुक्ल जी ने इस कालकी प्रवृत्तियों का विवेचन किया था उनमें कई तो पीछे की रचनाएँ है और... उनका मूल रूप क्या था? ऐसा कह कर और धर जैन-अपभ्रंश-चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह केवल धार्मिक सम्प्रदाय की है-- यह कहकर अलग कर देने योग्य नहीं है। वह केवल जैन-धर्मग्रंथ होने के कारण ही काव्य-क्षेत्र से बाहर है--यह कहकर यदि हम उन्हें साहित्य-समा से बाहर निकालने लगेंगे तो हमें आदि काव्य से भी हाथ धोना पड़ेगा; तुलसी, सूर के ग्रंथों से भी अलग होना पड़ेगा।'' द्विवेदी जी का यह कथन निश्चय प्रबल और तर्क-संगत है।

कुछ विद्वान आदिकाल की परम्परा को आठवीं शती तक ले जाते हैं। इसका आधार पुष्प नामक एक कवि का उल्लेख है जिसका रचनाकाल सं. 750 माना जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसी आधार पर हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक काल को सं. 750 से सं. 1375 तक मानकर इसे दो भागों में विभाजित कर दिया है-- संधिकाल और चारणकाल। संधिकाल के मूल में तत्कालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का सम्मिश्रण है। चारण काल का अभिप्राय है राजदरबार के चारणों द्वारा लिखित ग्रंथों का काल।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भाषा के आधार पर प्रारंभिक काल को ''अपभ्रंश-काल'' से अभिहित किया है। साहित्य के किसी काल-विशेष को भाषा के नाम पर नहं, प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों पर होना ही युक्तिसंगत माना जाता है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी अपभ्रंश और हिन्दी दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस काल को ''बीजवपन'' (ब्मङ्ङङ्ङ ब्मदृध्त्दढ़) काल के नाम से अभिहित किया है। परन्तु यह नाम भी वैज्ञानिक दृष्टिगत नहीं होता; क्योंकि साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह काल पर्याप्त समृद्ध है।

डॉ. हजडारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रस्तुत काल को ''आदिकाल'' ही माना है क्योंकि ''आदिकाल'' नाम भावात्मक न होकर अभावात्मक है। इसके अतिरिक्त यह नाम सत्कालीन उपलब्ध साहित्यिक प्रवृतति की ओर पाठक को आकृष्ट करने में भी असमर्थ है। अतएव यह नाम भी नितांत तर्क-संगत और वैज्ञानिक नहीं है।

राहुल सांकृत्यायन ने इस काल को ''सिद्ध-सामान्य युग'' माना है। ''सिद्ध'' से तत्कालीन धार्मिक साहित्य की प्रधानता व्यंजित है और ''सामन्त'' शब्द से राजनैतिक स्थिति की ओर संकेत है।

विगत वर्षों में हिन्दी साहित्य के इस प्रथम काल से सम्बद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण सामग्री प्रभूत मात्रा में प्रकाश में आयी है। अतः ऐसी स्थिति में इस काल को किसी विशेष प्रवृत्ति मात्र के द्योतक नाम की सीमा में आबद्ध कर देने की अपेक्षा एक सामान्य और अपेक्षाकृत व्यापक नाम-आदिकाल-से अभिहित करना ही उचित जान पड़ता है।

आदिकालीन भारत का समग्र परिवेश :

हिन्दी साहित्य का प्रथम काल ''आदि-काल'' माना जाता है। िस काल से सम्बन्धित जो भी साहित्य उपलब्ध है उसमें उस समय की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक अवस्था का ज्ञान होता है। इस काल में जहाँ एक ओर जैन, नाथ और सिद्ध साहित्य का निर्माण हुआ, वहाँ दूसरी ओर राजस्थान में चरित काव्य भी लिखे गये, जो कि अपने आश्रयदाताओं की कीर्ति-कथा पथा वीरता के गुणगान से भरपूर है। परन्तु नका अपना साहित्यिक महत्व है।

+ÉÊnùEòÉ±ÉÒxÉ ºÉÉÊ½þiªÉ EòÒ ®úÉVÉxÉèÊiÉEò {ÉÞ¹`ö¦ÉÚÊ¨É :

आदिकालीन भारत में सामंतवादी व्यवस्था थी। राजा सर्वशक्तिमान और निरकुंश हुआ था। राजनीति का प्रभाव प्रजा पर सर्वोपरि था। आदिकालीन राजनीति दो मुख्य कारणों से बहुत ही अव्यवस्थित और कमज़ोर थी। इस काल की राजनीतिक अव्यवस्था का मुख्य कारण विदेशी आक्रमण रहे। इस समय पूरा उत्तर भारत मुसलमान आक्रमणकारियों के कारण बुरी तरह आतंकित था। सम्राट हर्षवर्धन (सन् 606 से 643) के देहांत के बाद उत्तर भारत में राजनैतिक संगठन खतरे में पड़ गया था। इस केन्द्रीय शक्ति की कमज़ोरी से विदेशी मुसलमान आक्रमणकारियों ने फायदा उठाया। ये अफगनिस्तान मार्ग से भारत में प्रवेश कर गये। उस

समय के इतिहास से स्पष्ट होता है कि मुसलमानों ने सर्वप्रथम 710 से 11 स् में मुहम्मद बन ख़ासिम के नेतृत्व में सिंध पर आक्रमण किया। उस समय सिंध का राजा दाहिर ने बड़े साहस के साथ उनका सामना किया। पर्तु वे हार गये। इस पराजय का एक कारण जाटों का असहयोग भी था। जाटों ने आपसी वैमनस्य के कारण राजा दाहिर की सहायता ही नहीं बल्कि मुसलमान आक्रमणकारियों की भी सहायता की। इसी प्रकार सिंध के बौद्धों ने भी अपने राजा का साथ नहीं दिया। गृह कलह और आपसी स्वार्थ के लिए विदेशियों का साथ देना उस समय की राजनैतिक अव्यवस्था का दूसरा मुख्य कारण माना जा सकता है। फिर 739 ई. में उस समय के अरब राजा ने एक और बार भारत के सिंध, गुजरात, मारवाड़, उज्जैन आदि प्रदेशों पर दावा बोल दिया। चालुक्य सेनापति ने उन्हें मुँहतोडड जवाब दिया। इस रूप में लगभग 9वीं सदी ई. तक मुसलमान आक्रमणकारी मात्र सिंध तक ही प्रवेश कर पाये थे।

10वीं और 11वीं सदी ई. में उत्तर भारत में कोई बडडा राजनैतिक संगठन नहीं देखा जाता है। तबतक पूरा उत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया था। और तो और, न छोटे-छोटे राज्यों के बीच स्नेह और सद्भाव की जगह द्वेष और वैमनस्य ही अधिक रहा। 10वीं सदी में गजनवी मुहम्मद ने अपे साम्राज्य का विस्तार करना शुरू किया। उसने पंचाब और कांगड़ा को जीत लिया। बाद में मथुरा और कन्नौज पर कब्जा किया। यहाँ अपा बल मज़बूत करके सौराष्ट्र पर दावा बोल कर सोमनाथ मंदिर से अपार धनराशि लूटी। आगे मालवा के भोज और लोदि के कर्ण ने मुसलमान आक्रमणकारियों का हटकर विरोध किया। उन्होंने कुरुक्षेत्र और कांगडडा को शत्रुओं के हाथों से मुक्त कराया।

विदेशी आक्रमणकारियों के साथ यह संघर्ष, आगे भी जारी रहा। 11वीं और 12वीं सदी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में गाहड़वालों के शक्तिशाली राज्य थे। स् 1150 में अज़मेर के बीसलदेव चौहान ने तोमरों से दि्लली और झांसी लेकर हिमालय तक अपा राज्य फैला लिया और पंजाब से तुर्कों को भगा दिया। जगनी के बाद महत्वपूर्ण मुसलमान आक्रमण गोरी के नेतृत्व में हुआ। गोरी के आक्रमण का लक्ष्य था-- साम्राज्य विस्तार, धनप्राप्ति, एवं इस्लाम का प्रकार-प्रसार करना। गोरी और पृथ्वीराज चौहान के बीच में दो भीषण युद्ध हुए तराइन प्रथम युद्ध सन् 1191 में तथा तराइन का द्वितीय युद्ध 1192 ई. में। षडयंत्र के कारण तराइन के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज परास्त हो गया और उत्तर भारत में एक शक्तिशाली राज्य का पतन हो गया। गोरी के बाद भी भारत पर विदेशी आक्रमण होते रहे। गोरी के बाद कुतुबुद्धीन ऐषक (सन् 1206) ने दिल्ली पर कब्जा किया और शासन की स्थापना की। यह लगभग सन् 1290 तक चलता रहा। फिर लगभग सन् 1290 से सन् 1320 तक दिल्ली का शासन खिल्जी वंश के शासकों के हाथों में रहा। फिर खिल्जी वंश के पतन के बाद गयासुद्धीन ने तुगलक शासन की स्थापना की। यह सतत देशीय राजाओं की

पराजय और पतन विदेशी आक्रमणकारियों की वीरता के कारण नहीं बल्कि देशीय राजों का गृह-कलह, आपसी द्वेषपूर्ण भेदभाव, कुटिल राजनीति और संकुचित राष्ट्रीयता आदि के कारण ही हुआ। यदि भारतीय राजा सम्मिलित होकर विदेशियों का सामना करते तो विदेशियों की पराजय निश्चित थी। प्रजा में इतनी राजनैतिक चेतना नहीं थी कि इन सब के बारे में वे सोच-विचार कर सके।

आदिकालीन साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि :

सामाजिक जीवन, सामाजिक शांति और सामाजिक अशांति बहुत कुछ शासन और उसकी व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। सामंतवादी व्यवस्था में राजा और उसका शासन ही सर्वोपरी होता है। राजा के शासन के द्वारा ही पूरा समाज शासित होता है। इसलिए सामाजिक सुख-दुख शासन सापेक्ष ही होते हैं। आदिकाल राजनैतिक दृष्टि से बहुत अव्यवस्था का युग रहा। यद्ध के बादल हमेशा मंडराने के कारण शासन भी युद्धोन्मुख ही होता था। युद्धों का तथा शासन की अव्यवस्था का आदिकालीन समाज पर गहरा प्रभाव था। राजकोष का अधिकांश धन यद्धों में खर्च होता था। सामाजिक विकास के लिए पर्याप्त धन नहीं बचता था। इसलिए समाज धीरे-धीरे आर्थिक रूप से पंगु हो रहा था। वैदिक धर्म की भवक्षेप के रूप में समाज में वर्णाश्रम धर्म का बोलबाला था। इस वर्णाश्रम धर्म के पारभाव से जातिवाद महामारी की तरह समाज में फैल गया था। समाज के वभिन्न वर्गों के बीच स्नेह-सद्भावपूर्ण संबंध नहीं थे। छुआछूत की समस्या समाज को विघटित व खंडित कर रही थी। जाति-पांति के नियम भी कड़े होते थे। उच्च जाति शासन से आवश्यक समर्थन और साधन जुटाकर सुख भोग करते थे। निम्न जाति के लोग कर्मफल सिद्धांत को मानते हुए अपने भाग्य को कोसते थे। ये निरंतर श्रम करते हुए भी उच्च जाति के लोगों की दया पर जीते थे।

शासन के साथ सीधा संबंध रखनेवाले उच्च-जाति के लोग वीरता, आत्म बलिदान और भोग-विलास के पर्याय बन गये थे। महलों में रहनेवाली राजपूत नारियाँ जौहर मनाना या आत्मत्याग करना अपा गौरव मानती थी। समाज में नारी की दशा भी अच्छी नहीं थी। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण सभी अधिकार और स्वेच्छा पुरुष केन्द्रित ही थे। नारी की बुरी हाल थी। नारी का मात्र भोग्या रूप ही बच गया था। वह खरीद-फरोख्त तथा अपहरण करने की वस्तु मानी जाती थी। समाज में शिक्षा की व्यवस्था भी ठीक नहीं था। समाज का उच्च वर्ग ही शिक्षा प्राप्त कर सकता था। निम्न जातियों तथा स्त्रियों को शिक्षा से दूर रखा जाता था। सती-प्रथा विश्यालोलुपता आदि सामाजिक विकृतियाँ समाज को खंडित कर रही थीं। विदेशियों के आक्रमण तथा उनका लूट-मार से समाज की आर्थिक स्थिति छिन्न-भिन्न हो गयी थी। जीविका के साधनों के अभाव में

गरीबी बढ़ती जा रही थी। युद्धों से व्यस्त रहने के कारण राजा लोह गरीबी को दूर करने के उपाय लागू करने में असमर्थ थे। ऊपर से सूखा और महामारी जैसे महासंकटों ने समाज की बची-कुची शक्ति को तोड़ दिया था।

आदिकालीन धार्मिक उथल-पुथल ने भी समाज पर बुरा प्रभाव ही डाला। वैदिक धर्म के विरोध में उद्‌भुत जैन और बोद्ध धर्म में भि विनाशकारी परिवर्तन शुरू हो गये थे। आदि शंकराचार्य के द्वारा प्रतिपादित अद्वैत से बौद्धधर्म को काफ़ी नुकसान पहुँचा। बौद्ध धर्म अपी अहंसा से हटकर जंत्र, मंत्र, तंत्र की सिद्धियों की ओर ुन्मुख हो गया था। बौद्धधर्म में महायान, वज्रयान, सहजयान और मंत्रयान नाम से शाखाएँ विकसित हो गयी थीं। सैद्धांतिक पक्ष के खोखलेपन से इनमें व्यावहारिक पक्ष बल पकड़ता गया। अलौकिक शक्तियों व सिद्धियों के लिए गुप्त मंत्रों का जाप, आचारविहीन गुप्त क्रियाओं - विशेषकर निम्नवर्ग की स्त्रियों से भोग आदि बढ़ते गये। नैतिक स्तर गिर कर धर्म में अनैतिकता बढ़ती गयी। जैन धर्म में भी वामाचार पद्धति का प्रचार हुआ। बौद्ध और जैन धर्म के इस व्यावहारिक पक्ष का प्रभाव विशेषकर समाज की निम्न जातियों पर अधिक रहा। बीच-बीच में धर्म के क्षेत्र में बढडनेवाली इस अनैतिकता बढ़ती गयी। जैन धर्म में भी वामाचार पद्धति का प्रचार हुआ। बौद्ध और जैन धर्म के इस व्यावहारिक पक्ष का प्रभाव विशेषकर समाज की निम्न जातियों पर अधिक रहा। बीच-बीच में धर्म के क्षेत्र में बढ़नेवाली इस अनैतिकता को रोकने नाथ योगियों के द्वारा प्रयास किए गए। धार्मिक क्षेत्र में हुए इन परिवर्तनों के कारण सामाजिक जीवन भी दूषित होता गया। स्पष्ट है कि आदिकालीन समाज पतनोन्मुखी राजनैतिक परिस्थितियों, धार्मिक क्षेत्र के परिवर्तनों के कारण अधिक असंगठित, रूढ़िवादी, अंधविश्वास और विलासी होकर जनजीवन को दूषित कर रहा था।

धार्मिक पृष्ठभूमि :

ईसा की सातवीं शताब्दी से भारत के धार्मिक परिवेश में आमूलचूल परिवर्तन होने लगे। इसके पूर्व जो शान्ति एवं सामंजस्यपूर्ण वातावरण स्थापित होने लगा था, उसके स्थान पर धार्मिक विद्वेष और भेदभाव उभरने लगे। बौद्ध धर्म ह्रासोनेमुख था और वैष्णव धर्म भी अपनी प्रतिष्ठा खोने लगा। जैन एवं शैव मत का सम्मान बढ़ने लगा। राजपूत राजा अहिंसा पर विश्वास नहीं करते थे, वे शैव धर्म से अधिक प्रभावित होने लगे। मध्यदेश के गाहड़वार राजा स्मार्त थे तथा मालवा के राजा वैदिक धर्म के अनुयायी थे। गंगा और नर्मदा के मध्यदेश में कलचुरि वंश शैव मत-प्रछारक था। कालक्रमेण स्मार्त मतावलम्बी जनता भी शैव धर्म को अपनाने लगी. वास्तव में सम्पूर्ण उत्तर भारत में शैव धर्म बौद्ध एवं स्मार्त प्रभाव के कारण एक नया रूप धारण करने लगा। इसीसे नाथ संप्रदाय भी उभरा। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''हिमालय के पाद-देश में प्रचलित नाथ-पूजा बौद्ध धर्म को प्रभावित करके वज्रयान शाखा के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी थी।''

क्षात्रधर्मी वीर राजपूतों के कारण सर्वत्र ब्राह्मण दर्म की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। परन्तु यह भी सत्य है कि बौद्ध धर्म युगानुकूल अपना रूप परिवर्तित कर अपना प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने लगा था। उनकी महायान शाखा के मन्त्र-तन्त्र एवं ध्यान-धारणा से निम्नवर्गीय जनता बहुत प्रभावित थी। हिन्दू साधु एवं बौद्ध भिक्षु साधारण जनता में समान रूप से साम्मानित होते थे। परन्तु साथ ही विभिन्न मत-सम्प्रदायों के कारण जनता दिग्भ्रमित थी और धार्मिक पटाटोप एवं भ्रष्टाचार से त्रस्त भी थी।

इस अशान्तिपूर्ण वातावरण में मुसलमानी आक्रमणों के द्वारा देश में एक नया धर्म--इस्लाम का प्रवेश हुआ, जिससे राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक उथल-पुथल के साथ-साथ धार्मिक क्षेत्र में भी असमंजस की स्थिति घर कर गई। जनता को सही मार्ग दिखानेवाले धार्मिक नेता का अभाव था। आदि शंकराचार्य के रुप में दक्षिण से एक आशा-ज्योति उत्तर की ओर बढ़ी थी, परन्तु साधारण जन-जीवन पर पन्द्रवहीं शताब्दी के अन्त से पूर्व उसका प्रभाव अधिक न था। अतः तत्कालीन जनता में तीव्र असन्तोष एवं नैराश्य छाया हुआ था।

आदिकालीन साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :

भारत पहले से संस्कृति-समृद्ध देश रहा है। असीम प्राकृतिक संपदा से भारत सभी क्षेतों में काफ़ी विकसित रहा है। भातीय सभ्यता और संस्कृति इतनी विकसित थी कि भारत इसलिए विदेशी आक्रमणों के लिए आकर्षण केन्द्र बना रहा। हर्षवर्धन के शासन-काल तक भारतीय संस्कृति अपने चरम शिखर तक पहुंच गयी थी। साहित्य, संगीत, चित्रकला, युद्धकला, मुर्तिकला, कारीगरी, कृषी, खआन-पान-पहनने की वस्तुएँ आदि के क्षेत्र में भारत ने अद्वितीय विकास किया था। हर्षवर्धन जैसे प्रतापी राजा ने समृद्ध संस्कृति के धरोहर भारत को एक राष्ट्र बना दिया था। उस समय भारतीय संस्कृति की नियंत्रक शक्ति धर्म थी। सभी ललित कलाएँ तथा उपयोगी कलाएँ धर्म से ही प्रभावित तथा नियंत्रित रहीं। कांची, बेलोर, तंजोर, अजंता, एल्लौरा, सूर्य मंदिर, भुवनेश्वर, खजुराहो, सोमनाथ मंदिर आदि भारतीय स्थापत्य कला के उदाहरण ही नहीं बल्कि धार्मिक उन्नति के गढ़ भी हैं। इतनी सुदृढ़ संस्कृति को देखकर विदेशी आक्रमणकारी तक मुग्ध हुए थे। अरब इतिहासकार अलबरुनी तथा महमूद गजनवी आश्चर्यचकित हुए थे।

भारत की इस संस्कृति-भव्यता ने विदेशियों को स्पर्धावान और ईर्ष्यालु बना दिया। नयी युद्ध कला से अनुप्राणित विदेशी आक्रमणकारी अपने साथ अपनी संस्कृति को भी साथ लाये थे। इसलिए विवेच्य काल दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की आपस में टकराहट का काल रहा। इस टकराहट में उदारता की मानसिकता कम और शंका व संदेह की मानसिकता ज्यादा थी। परिणामतः शासक के बदलने से एक ओर भारतीय संस्कृति को अविकसित सिद्ध करने के प्रयास शुरू हुए। जगह-जगह भारतीय संस्कृति के भव्य चिह्नों तक को मिटाने

के प्रयास किए गए। दूसरी ओर भारतीय संस्कृति मुस्लिम संस्कृति के गहरे रंग में रंगने लगी थी। पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने मनोरंजन, विवाह-संबंध, उत्सव-त्योहार जैसे संस्कृति के मूल आधार आगत संस्कृति के अनुरूप बदलने लगे थे। चित्रकला, संगीत कला, मूर्तिकला आदि ललित कलाएँ भी बदलने लगी थीं। भारतीय संगीत में सारंगी, तबला तथा अलगोजा जैसे विदेशी वाद्यों का समावेश होने लगा था। तत्कालीन हिन्दू राजा अपे दरबारों को मुसलमान बादशाहों के दरबारों के अनुकरण पर सजाना गौरवपूर्ण समझते थे। ललित कलाओं के क्षेत्र के इस परिवर्तन ने भारतीय संस्कृति को बड़ा धक्का पहुँचाया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के आदिकाल में उच्च उत्कर्ष प्राप्त भारतीय संस्कृति में नवागत मुसलमान संस्कृति के सहवास से ह्रासोन्मुख एवं मिश्रित रूप उभर रहे थे। आदिकालीन हिन्दी साहित्य भारत में हुए इन सांस्कृतिक परिवर्तनों को अपने समग्र रूप में प्रतिबिंबित करता है।

साहित्यिक पृष्ठभूमि :

इस युग के साहित्य में त्रिवेणी की भाँति तीन धाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं, प्रथम संस्कृत साहित्य की, द्वितीय प्राकृत एवं अपभ्रंश की तथा तृतीय हिन्दी भाषा में लिखे गए साहित्य की थी।संस्कृत साहित्य एवं कवियों को राजाश्रय प्राप्त था, प्राकृत एवं अपभ्रंश धर्म की भाषा थी तथा ''हिन्दी'' जनता की चित्तवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करती थी।

नवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक कन्नौज एवं कश्मीर संस्कृत भाषा एवं साहित्य के गढ़ रहे। आनन्दवर्द्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, भोजदेव, मम्मट, राजशेखर, विश्वनाथ, भवभूति, श्रीहर्ष, जयदेव, शंकर, कुमारिल भट्ट, भास्कर, रामानुज आदि अनेक आचार्य, कवि, नाटककार ेवं गद्य लेखक संस्कृत की श्रीवृद्धि में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहे। संस्कृत के अतिरिक्त इस युग में प्राकृत एवं अपभ्रंश में भी अद्‌भुत साहित्य सृजन हुआ। जैनाचार्यों ने पौराणिक गाधाओं को लेकर अपने धर्म के अनुसार उन्हें नवीन शैली में प्रस्तुत किया। इन्होंने प्राकृत एवं अपभ्रेंश के साथ पुरानी हिन्दी का भी प्रयोग किया। सिद्धों ने अपभ्रंश के साथ लोक भाषा हिन्दी का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया। इस प्रकार तत्कालीन साहित्य राजा, धर्म एवं लोक्--इन तीन धाराओं में विभक्त हो चुका था और इसी के अनुरूप भाषाएँ भी निश्चित हो चुकी थीं। संस्कृत के साहित्यकारों की दृष्टि युगीन परिस्थितियों की ओर अधिक न थी। काव्य और शास्त्र ने तर्क-विनोद एवं चमत्कार-प्रदर्शन में ही वे अपनी प्रतिभा की इति मानते थे। प्राकृत एवं अपभ्रंश के कवि लेखकों ने धर्म-प्रचार के लिए भाषा एवं साहित्य को एक माध्यम के रूप में स्वीकार किया था। साहित्य का उत्कर्ष उनका लक्ष्य नहीं था। लोक भाषा साहित्य में ही युगीन परिस्थितियों का सच्चा रूप परिलक्षित था।

2. भक्तिकाल

(सं 1375 से 1700 तक)

किसी भी काल के साहित्य का निर्माण तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप ही होता है। भक्ति काल के आरंभ में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी थी जिनसे प्रभावित होकर कविता की धारा बदल गई। जब देश में मुसलमानों का शासन जम गया, जनता पर मुसलमानों द्वारा अत्याचार प्रारंभ हुए। कविता ने राज दरबारों से हटकर कुटियों में रहने वाले साधु-संतों का आश्रय ग्रहण किया, जो भगवान के चिंतन में निमग्न रहते थे। परिणाम यह हुआ कि कविता में आश्रयदाता राजाओं के गुणगान के स्थान पर भगवान का गुणगान होने लगा। इस तरह भारतीय आध्यात्मिक कविता की धारा फिर उभर कर आई। उस समय दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति ने बड़ा जोर पकडड़ा था। भक्ति-भावना दक्षिण से उत्तर भारत आयी। जिसका मूल कारण रामानुजाचार्य, रामभक्ति के प्रवर्तक, जो आलवाह-भक्तों की परंपरा में हुए थे। उत्तर भारत में पुराणों का आधार लेकर भक्ति-भावना फैल रही थी, जिसमें विष्णु के अवतारों पर विश्वास किया जाता था। सगुण भक्ति के मूल में अवतार की कल्पना प्रमुख थी, क्योंकि भगवान के साकार रूप में जनता अपने रक्षक का प्रतिरूप देखती थी। परंतु दूसरी ओर निर्गुण, निराकार ईश्वर की वंदना करनेवाली और एक भक्ति की धारा बहने लगी। भक्तिकाल का विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

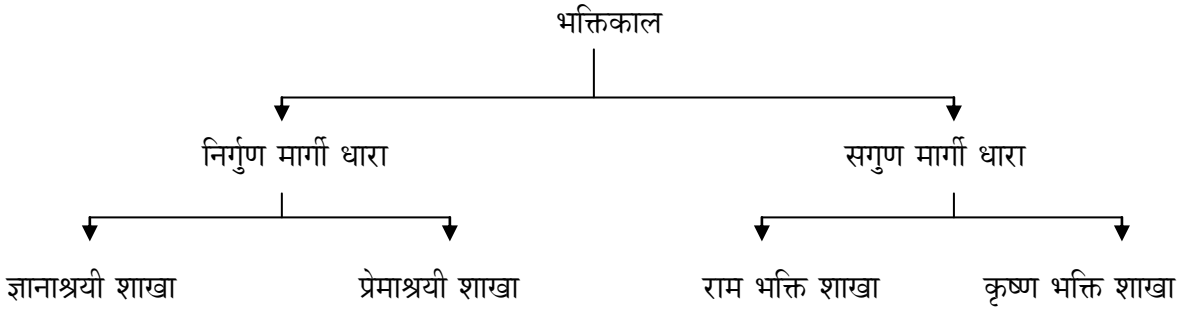

उपर्युक्त विभिन्न धाराओं में परस्पर काफ़ी अंतर है। फिर भी इस संपूर्ण भक्ति काल में कुछ ऐसी समान भावनाएँ और विशेषताएँ मिलती हैं, जनके कारण इस संपूर्ण युग को भक्ति-काल कहा गया है।

1. नाम की महत्ता -- जप, कीर्तन, भजन आदि के रूप में भगवान का गुण कीर्तन संतों, सूफियों, और सगुण भक्तों में समान रूप में पाया जाता है। कृष्ण-भक्तों और सूफियों में कीर्तन का महत्व अधिक है। तुलसी भी राम-नाम को राम से बड़ा मानते हैं, क्योंकि नाम से निर्गुण और सगुण दोनों का समन्वय हो जाता है।

2. गुरु की महिमा -- कबीर गुरु को भगवान से भी अधिक महत्व देते हैं। जायसी ने भी गुरु को महत्व दिया है। तुलसी ने गुरु की महिमा को स्वीकार किया है। सूर ने भी अपने गुरु को अत्यंत श्रद्धा और भक्ति के साथ स्मरण किया है।

3. भक्ति भावना का प्राधान्य : चारों शाखाओं में भक्ति भावना का प्राधान्य रहा।

4. अहंकार का त्याग : अहंकार का त्याग, भक्ति का प्रथम लक्षण है। हृदय में अहंकार रहते तो भक्ति असंभव है। भक्त चाहे किसी भी वाद का मानने वाला क्यों न हो, अहंकार का त्याग उसके लिए पहली शर्त है।

5. आडंबर का खंडन : सभी भक्त कवि सादे, सरल और त्यागमय जीवन में विश्वास करते थे। सांसारिक बाह्याडंबर उनके लिए सर्वथा त्याज्य था। वे संसार के माया-मोह से मुक्त थे।

भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएँ

कवित्व की दृष्टि से भक्तिकाल हिन्दी-कावंय का स्वर्ण युग माना जाता है। हिन्दी के चार बड़े कवि इसी युग में हुए - कबीर, जायसी, सूर और तुलसी. भक्ति की पुनीत धारा इस युग में प्रवाहित हुई ब्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं में काव्य-रचना हुई। भक्तिकाल की प्रमुख धारएँः निर्गुण उपासना को लेकर निर्गुणोपासना धारा प्रचलित हुई, जिसकी दो उपधाराएँ सामने आयीं -- (1) ज्ञानमार्गीय धारा - जिसके प्रतिनिधि कवि कबीरदास माने गए हैं। (2) प्रेममारिगीय धारा - जिसके प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं।

सगुण उपासना की प्रमुखधारा सगुणोपासना धारा कहलायी, जिसकी दो प्रमुख धाराएँ सामने आयीं-- (1) राम भक्ति शाखा - जिसके सिरमौर महाकवि गोस्वामी तुलसी हैं, (2) कृष्ण भक्ति शाखा - जिसका प्रतिनिधित्व सूरदास करते हैं।

यद्यपि भाव, विचार और दर्शन की दृष्टि से ही नहीं कवित्व की दृष्टि से भी इन काव्यधाराओं में पर्याप्त वैषम्य है, फिर भी इन काव्यधाराओं में पर्याप्त वैषम्य है, फिर भी कुछ ऐसी निम्न सामान्य विशेषताएँ हैं जो इस काल के काव्य में देखी जा सकती हैंः

(1) एकात्मक अद्वैतवाद -- जीव और ब्रह्म एक है, जो माया के कारण ही पृथक् दिखाई पडता है। माया महा ठगिनी है; पर जब ईश की कृपा हो जाती है तो माया से जीव को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। भक्त और संत दोनों ही कवियों ने "जीव-ब्रह्म-ऐक्य'' तथा माया द्वारा उत्पन्न ''भेद'' पर पर्याप्त मात्रा में लिखा है। कबीर के अनुसार --

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी

फूटा कुम्भ, जल जलहि समाना, यह तथ कहै गियानी।।

तुलसी भी जीव को, इसी प्रकार ब्रह्म का अंश मानते हैं जो मायावश भ्रम में पडकर निज स्वरूप को भूल गया है--

जिय जब तें हरि ते बिलगान्यों। तब ते देह गेह निज जान्यों।

मायाबस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारून दुख पायो।।

ज्ञान की महिमा :- प्रायः यह मान लिया जाता है कि भक्त-कवि केवल भक्ति को ही प्रधानता देते थे और उनके सम्मुख ज्ञान का उतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं था। सिद्धान्ततः इस प्रकार की धारणा भले ही ठीक लगती हो, किन्तु भक्त कवियों की रचनाओं में ज्ञान की महिमा का प्रतिपादन भी कम नहीं हुआ है--

यथा--

''उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव-रजनी के।।''

प्रेममार्गी होते हुए भी, सूफी कवियों ने ज्ञान की महिमा का स्थान-स्थान पर बखान किया है--

जैसे--

जेई पावा तेइ आपहि चीन्हें। - जायसी।

कबीर तो ज्ञानमार्गी थे ही, और यह भी स्पष्ट है कि वे वैराग्य से भी अधिक, ज्ञान को महत्व देते थे-- यथा

कबीर जाग्या चाहिए क्या गृह क्या वैराग।

(3) माया :-- माया के दो रूप हैं -- बन्धनकारक और मुक्ति में सहायक। कबीर ने माया के पहले रूप का वर्णन विस्तार के साथ किया है। यथा--

रमैया की दुल्हन ने लूटा बाजार।

तुलसी भी इसी प्रकार की धारणा व्यक्त करते हैं--

कबीर तो ज्ञानमार्गी थे ही, और यह भी स्पष्ट है कि वे वैराग्य से भी अधिक, ज्ञन को महत्व देते थे--

यथा--

कबीर जाग्या चाहिए क्या गृह क्या वैराग।

(3) माया :-- माया के दो रूप हैं -- बन्धनकारक और मुक्ति में सहायक। कबीर ने माया के पहले रूप का वर्णन विस्तार के साथ किया है। यथा--

रमैया की दुल्हन ने लूटा बाजार।

तुलसी भी इसी प्रकार की धारणा व्यक्त करते हैं --

माधव असि तुम्हारी यह माया।

यथा--

करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया।।

(4) नाम महिमा :-- तुलसी ने राम नाम को राम से भी बडा माना है।

यथा--

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटिखल कुमति सुधारी।।

सूर ने भी स्थान-स्थान पर नाम की महिमा स्वीकर की है।

जैसे --

है हरि नाम को आधार।

कबीर ने भी नाम की महत्ता स्वीकार की है। जैसेः

कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।

आदि अंत सब सांधिया, दूजा देखों काल।।

जायसी ने भी रत्नसेन को नामस्मरण करते हुए दिखाया है। जैसेः

आसन लेई रहा होई तपा। पदमावती पदमावती जपा।।

(5) गुरु महिमा -- चाहे वह ज्ञानमार्ग हो या प्रेममार्ग अथवा शुद्ध सगुण भक्ति का क्षेत्र, गुरु की महिमा का महत्तव सभी में स्वीकार किया गया है। कबीर तो गुरु को गोविंद से भी बड़ा मानते हैं। जैसे--

गुरु-गोविन्द दोऊ खडे काके लाग्यौ पाय।

बलिहारी गुरु आपणो, गोविन्द दियो बताय।।

प्रेम मार्ग में भी गुरु ही मार्गदर्शक हैं। जैसे--

गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा।

बिना गुरु जगत को निरगुन पावा।। - जायसी

तुलसी ने गुरु-वन्दना की है तो सूर ने भी यह कहा है :-

प्रातःसमय श्रीवल्लभ सुत को उठत ही रसना लीजै नाम।

आनंदकारी मंगलकारी, अशुभहरण जन पूरण काम।।

(6) भक्ति तत्व :- ज्ञानोपासक होते भी कबीरदास ने भक्ति-भाव को काफी महत्व दिया है।

जैसे --

माधौ अब करिहौ दाया।

काम क्रौध अहंकार व्यापै, ना छूटै माया।।

सगुण भक्त तो भक्ति को ही अपना सर्वस्व मानते थे। अतः भक्तिकालीन साहित्य में भक्ति-भाव की प्रधानता पायी है।

(7) स्वांतः सुखाय रचनाएँ :- भक्तिकाल की सभी शाखा - प्रशाखओं के कवियों ने राजाश्रय से मुक्ति पाकर अपनी स्वांतः सुखाय रचना करने की घोषणा की है। उनकी मानवतावादी भावना एवं निस्वार्थ प्रेमबावना के कारण उनके काव्य स्वाभाविकतः 'बहुजन हिताय' सिद्ध हुए। मस्तमौला कबीर ने तत्कालीन शाखाओं के धर्म की उन्मुक्त कण्ठ से बुराई की। जायसी ने भी मसनवी शैली में ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप मेंबादशाह की, ग्रंथ के प्रारंभ में, बन्दना तो की है, किन्तु प्रधानता ईश्वर की भक्ति-भावना को ही प्रदान की है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस के प्रारंभ में ''स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा'' लिखकर अपने को राजा(य से मुक्त कर लिया है। इसी प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने भी ''सन्तन कहा सीकरी सौं काम'' कहकर अपने कवि-स्वातंत्र्य का ज्ञापन किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकालीन कवि पूर्ववर्ती वीरगाथा कालीन कवियों और समसामयिक तथा परवर्ती रीतिकालीन कवियों की भाँति राज्याश्रित न थे; वे अपने मनोराज्य में विचरण करनेवाले स्वतंत्र चेता थे।

(8) सत्संग की महिमा :- सभी भक्त कवियों ने सत्संग की महत्ता स्वीकार की है। तुलसी ने नवधा भक्ति के प्रकरण में ''प्रथम गति संतन कर संगा'' में सत्संग को प्रथम श्रेणी की भक्ति माना है। कबीर ने भी ''कबिरा संगत साधु की हरै और की व्याधि'' में सत्संग को महत्व दिया है। सूर ने भी अपने मन से कहा है -

-''छाँडि और इस प्रकार अपरोक्ष में सत्संग पर ही बल दिया।मन हरि विमुखन कौ संग'' और इस प्रकार अपरोक्ष में सत्संग पर ही बल दिया।

(9) स्वातुभूत ज्ञान की महत्ता :- भक्त कवियों ने शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा स्वानुभूत ज्ञान को अधिक महत्व दिया। कबीर इसलिए कहते हैं -- ''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।'' तुलसी ने भी ''नाना निगमागम'' का अध्ययन करे के बाद ''मति मंजुल'' का प्रयोग कर अपने द्वारा अनुभूत ज्ञान को ही अभिव्यक्त किया है। सूर ने भी कृष्ण-भक्त गोपियों के स्वर में निजी अनुभव को ही प्रधानता दी है।

(10) अहंकार का परित्याग :- भक्त कवि अहंकार को ईश्वर प्राप्ति में बाधक मानते हैं और अत्यंत विनयशील होने बल देते हैं। कबीर का तो स्पष्ट कथन है कि जब तक हृदय में अंहकार विद्यमान है, परमात्मा मानव-मंदिर में कदम मार ही नहीं सकता। तुलसी अंहरारी पंडित और मूर्ख में कोई भेद ही नहीं समझते।

(11) श्रृंगार तथा शांत रस की प्रधानता :- ईश्वर प्राप्ति के लिए संसार से मोह का क्याग करने के संदर्भ में शांत तथा ईश्वर से प्रेम करने के संदर्भ में श्रृंगार रस का परिपाक हुआ है। उक्त दोनों रसों की प्रधानता रही है तथा अन्य सर गौण रूप से आये हैं।

(12) प्रबन्ध और मुक्तक काव्य की रचना :- भक्तिकाल में दोनों ही प्रकार की काव्य-रचना हुई है-- प्रबन्ध और मुक्तक। तुलसी ने रामचरितमानस और जायसी ने पद्मावत जैसे प्रबन्ध काव्य की इसी युग में रचा की है। सूर और कबीर ने मुक्तक काव्य-सृजन किया है।

(13) ब्रज तथा अवधि भाषाओं में काव्य रचना :- भक्ति-कालीन साहित्य की ब्रज तथा अवधि भाषाओं में रचना हुई है। पद्मावत तथा रामचरितमानस अवधी में हैं तो समस्त कृष्ण भक्ति काव्य ब्रजभाषा में है। कबीर ने यद्यपि सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया है, फिर भी उसमें प्रधानता तो ब्रजभाषा की ही है।

(14) छुन्दों तथा अलंकारों का विविध-मुखी प्रयोग :- भक्ति युगीन साहित्य में छंदों तथा अलंकारों का विविध-मुखी प्रयोग द्रष्टव्य है। इस साहित्य के प्रमुख छंद हैं-- दोहा, चौपाई, कुण्डलिया, पद आदि अलंकारों का अत्यंत विशद प्रयोग है। अधिकांश अलंकार सादृश्यमूलक हैं; सबका अनायास प्रयोग है।

- - - - - - -

निर्गुण भक्तिधारा की विशेषकाएँ

संत काव्यधारा को आचार्य शुक्ल ने ''निर्गुण ज्ञानाश्रयी धारा'' की संज्ञा दी है, जबकि डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ''निर्गुण भक्ति साहित्य'' और डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे ''संत काव्य परम्परा'' का नाम दिया है। इस काव्य धारा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:-

1. **निर्गुण की उपासना:-** इन संतों ने आध्यत्मिक पक्ष में अथवा सैद्धांतिक पक्ष में निर्गुण ब्रह्म को ही माना है, परंतु उपासना के क्षेत्र में अथवा व्यावहारिक क्षेत्र में इन्होंने निर्गुण ब्रह्म में गुणों का आरोप किया है। ईश्वर के ऐसे स्वरूप की कल्पना के कारण इन्होंने बहुदेववाद और अवतारवाद का खण्डन किया है और यही कहा है कि शून्य, निरंजन, अगम्य और सर्वव्यापक मानवमात्र के लिए उपास्य है। उनका निर्गुण ब्रह्म इस प्रकार का है :-

   जाके मुख माथा नहीं, नहीं न रूप कुरूप।
   पुहुप बास ते पातरा, ऐसा अनंत अनुप।।

2. **संत कवि :-** इस शाखा के समस्त कवि संत थे जो वर्ण-व्यवस्था के अनुसार निम्न वर्ण के थे। कबीर जुलाहै और रैदास चमार थे, नामदेव दरजी थे और दादू धुनिया।

3. **हिन्दू-मुस्लिम एकता :-** हिन्दू-मुस्लिम एकता के हेतु प्रयत्नशील - हिन्दू मुस्लिम ऐक्य स्थापना के उद्देश्य से ही संत काव्यधारा का उदय हुआ था। हिन्दुओं के अद्वैतवाद और मुसलमानों के ऐकेश्वरवाद को एक ही बताकर इन कवियों ने साथ-साथ रहनेवाले हिन्दू और मुसलमानों को मिलजुलकर रहने का मंजुल संदेश दिया था। इनकी वाणी में राम-रहीम की एकता का लोक-मंगलकारी प्रतिपादन है।

4. **निर्गुणवाद का प्रचार :-** इन संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया। इनका निर्गुण ब्रह्म अजन्मा है जिसकी गति जानी नहीं जा सकती, "गूँगे के गुड'' की भाँति केवल उसकी अनुभूति की जा सकती है। यद्यपि आध्यात्म पक्ष में इन्होंने ईश्वर के निराकार रूप को ही मान्यता प्रदान की, किंतु उपासना के क्षेत्र में इन्हें अपने निर्गुण में भी गुणों का आरोप करना पडा।

5. **जाति-पाँति एवं संप्रदायिकता का विरोध :-** संत काव्य धारा के संत कवियों ने ''जाति-पाँति पूछे नहीं कोई हरि को भजै सो हरि का होई'' के अनुसार जाति-पांति का सशक्त विरोध किया। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार उच्च समझे जानेवाले वर्ग की इन्होंने तीव्र भर्त्सना की। ब्राह्मण वर्ग को इन्होंने विशेष

रूप से आडे हाथों लिया। इन कवियों ने स्वयं दलित वर्ग के होने के कारण अभिजात वर्ग के प्रति अपना समूचा आक्रोश व्यक्त किया। छुआछूत तथा सांप्रदायिकता का सशक्त विरोध किया गया। इन्होंने बताया कि ईश्वर के दरबार में किसी भक्त की जाति-पाँति नहीं पूछी जाती। ईश्वर भक्ति का मार्ग सबके लिए समान रूप से खुला है।

6. **रूढिवाद एवं धार्मिक वितंडावाद का विरोध :-** संत-कवियों ने साम्राज्यवाद को रूढिवाद के लोह-पाश से मुक्त करने को अपना स्वर मुखर किया। इसी प्रकार धार्मिक वितंडावाद पर भी कशाघात किया। जप-तप, पूजा-पाठ, रोजा-नमाज, तीर्थ-यात्रा, हज और मूर्ति पूजा का विरोध हुआ। ''भोले भाव मिले रघुराई'' के सहज; सरल सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इन्होंने हिन्दु तथा मुसलमान दोनों के धार्मिक आडम्बरों की मुक्त कण्ठ से भर्त्सना की। इनकी वाणी में हमको समाज-सुधार का स्पष्ट का स्वर भी सुनाई देता है।

7. **गुरु की महिमा :-** संत कवियों ने गुरु को गोविंद से बढ़कर माना। इनका विश्वास रहा कि गुरु की कृपा बिना परमात्मा की प्राप्ति असंभव है। ''गुरु करै सो होय'' और ''गुरू रूठे नहीं ठौर'' के अनुसार अपनी वाणी में इन्होंने गुरु को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया। अंधकार में एकमात्र गुरु ही मार्गदर्शन कर ''कोटि जन्म के पंथ'' को पल में पार करा सकता है। सगुणोपासकों ने भी गुरु का महत्तव स्वीकार कियाहै, किंतु इन संत कवियों ने तो गुरु को साक्षात ईश्वर ही मान लिया है, जैसा कि कबीर की इस पंक्ति से स्पष्ट है--

कबिरा ते नर अन्ध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।

8. **हठयोग की प्रधानता:-** ये संत कवि नाथ पंथ के हठयोग से प्रभावित थे, जिससे इनके काव्य में हठयोग की प्रधानता रही। ङठयोग के आधार पर योगी प्राणायाम द्वारा मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलिनि को जगाते हैं जो जाग्रत अवस्था में षट्चक्रों को पार कर ब्रह्माण्ड में स्थित सहस्त्रदल कमल पर पहुँच जाती है। यहाँ चन्द्र-बिम्ब से निरंतर झरनेवाले अमृत का पान करती है और परम-दिव्य अनहद नाद का श्रवण कर ब्रह्मानंद का अनुभव करती है।

9. **सूफियों के प्रभाव से विरह की तीव्र वेदना:-** सूफियों के प्रभाव से जहाँ इनके काव्य में विरह की तीव्र वेदना व्यक्त हुई है, वहीं इनका सारा अक्खडपन एवं रुग्णता धुल गई है। वस्तुतः इनकी

प्रणयोक्तियों में ही इनका काव्य-पक्ष अपने यथार्थ रूप में निखरकर आया है। इन प्रणयोक्तियों में सूर का जैसा रस और मीरा की जैसी उत्कट विरह-भावना है :-

आइ न सकों तुज्झ पै, सकूँ न तुज्झ बुलाइ।
जियरा यों ही लेहुगे, विरह तपाइ - तपाइ।।

10. **रामानंद आदि वैष्णव भक्तों का प्रभाव :-** संत कवियों पर रामानंद आद् वैष्णव भक्तों का प्रभाव है। इसी कारण इन्होंने निर्गुणोपासक होते हुए भी भक्ति भावना ग्रहण की है। गुरु महत्ता आदि की सहज स्वीकृति में उक्त वैष्णव भक्त का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

11. **लोक-संग्राह की भावना:-** इस वर्ग के संत कवि समाज-सुधारक एवं लोकसंग्रही थे। इनकी साधना वैयक्तिक न होकर सामाजिक थी। इन्होंने समूचे समाज को लेकर ही आत्म-शुद्धि पर बल दिया था। समाज और राजनीति को इन्होंने खुली आँखों से देखा था। इसी कारण इनके काव्य में तत्कालीन समाज प्रतिबिम्बित है। इनकी वाणी का स्वर सर्वत्र लोककल्याण की भावना से युक्त है।

12. **भजन तथा नाम-स्मरण :-** संत कवियों ने शुद्ध मन से भजन तथा नाम-स्मरण पर बल दिया। मन ही मन प्रेम से ईश्वर के नाम का स्मरण ही इन्हें काम्य है। नाम-स्मरण में ओष्ठ भी नहीं हिलने चाहिए यथा--

सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदै माँहि छिपाई।
होठ-होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोई पाइ।।

13. **रहस्यवाद:-** प्रैमासक्ति और रहस्यमयता का प्रवृत्ति भई इन संत कवियों में विट्ठल संप्रदाय के प्रभाव से प्रवेश कर गई है। रहस्यवाद के क्षेत्र में प्रणयानुभूति के कारण इनका मृदुल एवं विशाल हृदय तरल हो उठा है। शंकर का अद्वैतवाद, सूफियों का प्रेमभाव, नाथों का ङठयोग और वेदान्तियों का ब्रह्मवाद सभी के सम्मिश्रण से इनके रहतस्यवाद की सृष्टि हुई है। शंकर के अद्वैतवाद से प्रभावित रहस्यवाद का एक उदाहरण है--

जल में कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल, जलहि समाना, यह तथ कह्यौ गियानी।।

14. **दार्शिनिकता:-** संत कवियों ने ब्रह्म, जीव और जगत का भी दार्शनिक विवेचन किया है। इन्होंने बताया है कि ब्रह्म और जीव का अभेद होते हुए भी अज्ञान अथवा माया के कारण उनमें भेद की

प्रतीति होती है। यदि माया का परदा उठा दिया जाय तो दोनों एक हो जाते हैं। इसलिए इन्होंने माया को ''महा ठगिनि हम जानी'' की बात कही है और सभी को उसके पाश में बद्ध बताकर सदैव उससे सावधान रहने की बात कहीं है।

15. **नारी के प्रति दृष्टिकोण :-** नारी को इन्होंने माया का प्रतीक बताया है। कनक और कामिनी दोनों को इन्होंने दुर्गम घाटियों की संज्ञा दी है। कबीर ने कहा है--

नारी की झाँई परत, अन्धा होते भुजगं।
कबिरा तिन की कौन गति नित नारी के संग।।

जहाँ नारी की इन्होंने इतनी निंदा की है वहाँ सती तथा पतिव्रता नारी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप।।

16. **माया से सावधान रहने की चेतावनी:-** इस वर्ग के कवियों ने माया से सतत् सावधान रहने की चेतावनी दी है। इनकी रमैया की दुलहिन इस माया ने तो सारा वाजार लूट लिया है। यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक इसके वश में है। भगवान से मिलने में सबसे बड़ी बाधा यह माया ही है। इस महा ठगिनी ने ''मधुर वाणी'' से सबको मोह लिया है और ''तिरगुन फाँस'' में सभी को फंसा रखा है। इस चेतावनी में भी इनकी लोक-संग्रह की भावना अंतर्निहित है।

17. **शांत तथा श्रृंगार रस की प्रधानता:-** ईश्वर भक्ति के कारण निर्वेद इनके काव्य का स्थाई भाव बन गया है, जिससे उसमें आद्यंत शांत रस का साम्राज्य है, किन्तु संयोग तथा विप्रलम्भ की प्रणयोक्तियों में जहाँ आत्मा तथा परमात्मा के मध्य प्रेम तत्व की व्यंजना हुई है, श्रृंगार के ऐसे शीतल छींटे पड़े हैं कि हृदय रससिक्त हो जाता है। अतः इनके काव्य का प्रमुख रस शांत और श्रृंगार आनुषंगिक रूप में विद्यमान हैं।

समाज-सुधारक एवं सन्त कवि कबीर

भक्तिकालीन ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि होने के नाते कबीर का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। हिन्दी के अन्य प्राचीन कवियों की भाँति कबीर का भी जीवनवृत्त असन्दिग्ध रूप से प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता है। अन्तस्साक्ष्य और 'कबीर-चरित्रबोध' के प्रमाण से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कबीर का

जन्म 1398 ई. में हुआ था। इनकी मृत्यु के विषय में भी अनिश्चितता है। 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास के अनुसार उनका देहावसान मगहर में 1492 ई.में हुआ। इस सम्बन्ध में एक जनश्रुति भी प्रचलित है:

''संवत पन्द्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पौन में पौन।।''

'भक्तमाल' से प्रमाण मिलता है कि कबीर रामानन्द के शिष्य थे। 'जाति जुलाहा नाम कबीरा' जैसी उक्तियों से स्पष्ट होता है कि जाति-व्यवस्था की कट्टरता पर कुठाराघात करनेवाले कबीर ने अपने को जुलाहा जाती का होना स्वीकार किया है। किंवदन्ती के अनुसार नीरू-नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने बालक के रुप में विद्यमान सत्पुरुष को अपने घर लाकर पालन-पोषण किया। इस प्रकार मुसलमान परिवार में पले बालक ने आगे चलकर धार्मिक आडम्बर, कट्टरता और धर्म के नाम पर होने वाले शोषण का ताव्र विरोध किया। जनश्रुति के अनसार कबीर की पत्नी का नाम लोई था। उनकी सन्तान के रूप में पुत्र कमाल और पुत्री कमाली का उल्लेख मिलता है। कबीर ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे अक्षर-ज्ञान से रहित थे।

''मसि कागद छुयौ नहीं, कलम गह्यौं नहिं हाथ।''

स्पष्ट है कि कबीर ने अपने किसी काव्य को लिपिबद्ध नहीं किया। उनके शिष्यों द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि उनकी एक-एक रचना की कई-कई प्रतियाँ उपलब्ध हैं और इनमें भाषा, शब्द-चयन में वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। कबीर पर किए गए शोध के आधार पर उनकी रचनाओं की संख्या तिरसठ मानी गई हैं। ये हैं-- अनुराग सागर, अमरमूल, अक्षर खण्ड की रमैनी, अग्रगीता, कबीर की बानी, कबीर की साखी, बीजक, शब्दावली, विवेकसागर आदि। परन्तु इन रचनाओं में कुछ की प्रामाणिकता के विष्य में विद्वानों में मतभेद है।

कवि के रूप में कबीर ने जो कुछ भी कहा वह अपे जीवनानुभवों के आधार पर कहा, इसलिए उनकी रचनाएँ मानव-जीवन के अत्यन्त निकट हैं। उनके जीवन और काव्य में भक्ति के साथ-साथ समाज-सुधार की प्रबल भावना भी निहित है। तत्कालीन समाज की शोचनीय अवस्था ने कबीर के भावुक हृदय को झकझोर कर रख दिया था। उन्होंने देखा कि साधारण जनता धर्म के मूलतत्व को भूलकर उसके बाह्याडम्बर एवं अन्धविश्वासों में ही फँस कर बहुत ही दयनीय जीवन व्यतीत कर रही है। इसलिए उनके काव्य में अनुभूति की सच्चाई एवं अभिव्यक्ति में स्पष्टवादिता है--

''मैं कहता हूँ आँखिन देखी, तू कहता कागज की लेखी।''

वे जन्म से विद्रोही व्यक्तित्व के थे। तत्कालीन समाज एवं धार्मिक वैषम्य ने उन्हें समाज-सुधारक व धर्म-सुधारक बना दिया था। काव्य-रचना एवं तद्वारा यश की प्राप्ति उनका लक्ष्य नहीं था। अपने विचारों को साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए कविता को एक साधन के रूप में स्वीकार किया था।

उस युग में हिन्दू एवं मुसलमानों में जो धार्मिक भेदभाव व्याप्त थे उन्होंने उनका खुलकर विरोध किया। हिन्दुओं के कर्मकाण्ड और श्राद्ध की निन्दा, मुसलमानों के हज, रोज़ा, समाज़ आदि की निरर्थकता का निरूपण करके उन्होंने जाति और धर्म के मिथ्या-बन्धनों से स्वतन्त्र होने की प्रेरणा दी है। कबीर ने अपने ब्रह्म के लिए राम, अल्लाह, हरि, हज़रत, गोविन्द आदि अनेक नाम प्रयुक्त करके, धर्म की सीमाओं का अतिक्रमण करके एकेश्वरवाद का समर्थन किया--

''दुइ जगदीश कहाँ ते आए, कहु कौने भरमाया।
अल्ला राम करीम केशव हरि हज़रत नाम धराया।।''

समन्वयवादी कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों में कोई मौलिकता नहीं है। इनपर विभिन्न मत-मातान्तरों का प्रभाव पड़ा है। ये बहुश्रुत थे, इसलिए औपचारिक शिक्षा न मिलने पर भी ज्ञान-धनी थे। गुरु रामानन्द के प्रभावस्वरूप इन्हें शंकराचार्य के अद्वैतवाद एवं उपनिषदों का ज्ञान मिला :

तेरा साई तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिरि-फिरि ढूँढ़ै घास।।

ब्रह्म, माया, जगत् आदि के सम्ब्ध में नकेविचार इस प्रकार हैं--

ब्रह्म :

कबीर अवतारवाद के विरोधी हैं। फिर भी उन्होंने राम को अपा आराध्य माना है, किन्तु वह राम दशरथनन्दन न होकर 'निर्गुण' है और ब्रह्म का पर्याय है। उन्होंने स्वयं कहा है-- ''मेरो राम दशरथ सुत नाहीं।'' उनका भगवान रूप, रंग रहित है। उनपर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है जिसके अनुसार 'अहं ब्रह्मास्मि' है। इस सिद्धान्त की झलक कबीर की वाणी में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है--

''लाली मेरे लाल की, जित देखौ तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गई लाल।।''

माया:

कबीर ने शंकर के मायावाद को भी स्वीकार किया है। इसके अनुसार ब्रह्म एवं जीव की एकता में माया बाधक बनती है, इस आवरण के हट जाने पर ही दोनों में एकत्व की स्थापना या अभेद की भावना सम्भव है--

जल में कुंभ कुंभ में जल बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तथ कहै गियानी।।

कबीर को ज्ञात है कि यही माया सांसारिक बन्धनों का एकमात्र कारण है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-- ये माया के पाँच पुत्र हैं और ये मनुष्य को अधःपतन की ओर ले जाने के लिए सतत सचेष्ट रहते हैं--

''इक डाइन मेरे मन बसे, नित उठि मेरे जिय को इसै।
या डाइन के लरिका पाँच रे, निसि दिन मोहिं नचावें नाच रे।।''

जगत् :

जगत् के विषय में कबीर सूफ़ीमत से भी प्रभावित हैं। सूफ़ीमत में ईश्वर, जीव और सृष्टि को अभिन्न (अद्वैत) माना गया है। सूफ़ियों की दृष्टि में संसार मिथ्या है, किन्तु उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद के समान जगत् के अस्तित्व से इनकार नहीं किया, वे केवल उसे सारहीन मानते हैं।

कबीर ईश्वर-प्राप्ति में प्रेम को ही एक प्रधान अंग स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि निराकार ईश्वर भी भक्त के प्रेम के कारण उसकी ओर बढ़ता, परन्तु प्रेम का यह मार्ग अत्यन्त कठिन है--

''प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट विकाय
राजा परजा जेहि रुचैं सीस देहि ले जाय।।''

कबीर रहस्यवादी कवि है। भारतीय रहस्यवाद की विशेषता यह है कि यह सर्वात्मवादी है। अर्थात् यह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखण्ड सम्बन्ध देखता है। जगत् के नाना रूप उसी ईश्वर के ही रूप हैं। यही भारतीय ब्रह्मवाद जब कवि-हृदय में विविध प्रतीक बनकर आता है, तब उसे रहस्यवाद कहते हैं। इस सर्वात्ममूलक रहस्यवाद में माधुर्य-भाव का भी उदय हुआ, जिसमें दार्शनिकों ने ईश्वर को पुरुष और समस्त जगत् को स्त्री रूप माना है। कबीर भी हरि की बहुरिया बनकर कहते हैं--

''हरि मेरो पिऊ मैं हरि की बहुरिया।''

उस परमात्मा रूपी प्रियतम के विरह में जीवात्मा रूपी विरहिणी तड़पती है--

यहु तन जालौं मसि करौं लिखौं राम का नांऊ।

लेखनि करौं करंक की लिखि लिखि राम पठांऊ।

अभिव्यक्ति के क्षेत्र में कबीर की शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। उन्होंने ज्ञान, भक्ति वैराग्य, हठयोग आदि दुरूह विषयों को बहुत ही सुबोध रूप में व्यक्त किया है। उनके हृदय में सच्चाई थी, बल था, इसलिए उनकी वाणी में स्वतः ही ओज आ गया था। उन्होंने छन्द, अलंकार आदि बाह्य उपकरणों की परवा नहीं की फिर भी उनकी रचनाओं में अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक रूप से इनका समावेश हो गया है। उनका भावपक्ष इतना प्रबल है कि उसके सामने कलापक्ष नगण्य है। कबीर में प्रतिभा एवं मौलिकता थी। वास्तव में काव्य-रचना इनका लक्ष्य या साध्य न होकर अपे महान सन्देश को साधारण जनता तक पहुँचाने का एक माध्यम या साधन मात्र था। इस प्रकार वे समाज-सुधारक और महान उपदेशक होने के साथ-साथ एक भावप्रवण कवि भी थे।

सूफ़ी काव्यधारा की विशेषताएँ

भारत में यवन साम्राज्य की स्थापना के बाद यह स्वाभाविक ही था कि हिन्दी एवं दोनों की संस्कृतियाँ एक दूसरे के संपर्क में आती हैं। दोनों के समन्वय के बिना जनजीवन शांतिपूर्वक नहीं चल सकता था। िसलिए ज्ञानमार्गीय कवियों ने राम-रहीम के एकता का प्रतिपादन कर हिन्दू-मुस्लिम एकता का सराहनीय प्रयास किया। इस धारा के संत कवियों की वाणी शुष्क एवं नीरस थी। इन्होंने खण्डन-मण्डन द्वारा अपेक्षित लोक-प्रियता प्राप्त न की। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों उनकी डांट-फटकार के पसंद न कर सके। ऐसी स्थिति में ऐसे मनीषियों की आवश्यकता थी जो मधुर वाणी में जन-जीवन को अपना संदेश देते और प्रेम से हृदय को जीतकर हिन्दू-मुसलमानों को धर्म-साहिष्णु बनाते। यह कार्य सूफ़ी काव्य-धारा के कवियों ने अपनी रस-सिक्त वाणी से किया। उन्होंने हिन्दू प्रेमगाथाओं पर आधारित काव्य-रचना से लोक जीवन के सामने स्पष्ट किया कि जीवन में प्रेम तत्व की प्रधानता है। प्रेम के माध्यम से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। वस्तुतः इन सूफ़ी कवियों ने ही हिन्दू-मुस्लिम एकता की दिशा में संत कवियों के अपूर्ण कार्य को पूरा किया।

सूफी मत का उदय एवं विकास :--

सूफी मत के उद्‌भव के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार ''सफ़'' शब्द से सूफ़ी शब्द की उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है--अग्रिम पंक्ति। कयामत के दिनों में जो लोग अग्रिम पंक्ति में रहे, वे सूफ़ी कहलाए। कुछ लोग मदीना स्थित मस्जिद के सामने सूफ्फा चबूतरे पर बैठनेवालों को सूफ़ी मानते हैं। कतिपय विद्वानों की धारणा है कि सूफ़ी शब्द ''जूफ़ा'' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है ''पवित्र

लोग''; अतः अपनी पवित्रता के लिए प्रसिद्ध लोग सूफ़ी कहलाए। अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि ''सूफ़ा'' शब्द जिसका अर्थ सफेद ऊन है, उससे सूफ़ी शब्द बना है, जो लोग मोटे ऊनी वस्त्र पहनकर शुद्ध आचरण से रहते थे, वे सूफ़ी कहलाए। कुछ विद्वानों के अनुसार सूफ़ी मत का उदय इस्लाम धर्म से हुआ, किंतु सूफ़ी मत का उदय इससे पूर्व ही हो चुका था। वस्तुतः सूफियों ने दक्षिण भारत में इसलाम धर्म का प्रचार करना प्रारंभ किया, किन्तु यवन शासकों ने जब तलवार के बल पर उक्त धर्म का प्रचार करना चाहा तो सूफ़ी संतों ने प्रेम के आधार पर हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया और हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों में समन्वय स्थापित किया।

ºÉÚ¡òÒ ¨ÉiÉ Eäò ÊºÉrùÉÆiÉ :--

सूफी संत एक मात्र ईश्वर में विश्वास करते हैं। यह जगत उसी का छाया भास है। आत्मा-परमात्मा में वे एक्य मानते हैं। उनका विश्वास है कि प्रेम के द्वारा ही ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। प्रेमोन्माद में भक्त को ईश्वर तक पहुँचने के लिए चार अवस्थाएँ--(1) शरीयत, (2) तरीकत, (3) मारिफत और (4) हकीकत -- पार करनी पड़ती हैं। शैतान आत्मा तथा परमात्मा के बीच में बाधक है। गुरु-कृपा से ही इस शैतान से बचा जा सकता है। शंकर के अद्वैतवाद में जो स्थान माया का है, सूफ़ी मत में वही स्थान शैदान का है। आत्मा और परमात्मा के मध्य यह शैतान बहुत बड़ा व्यवधान है। सूफ़ी मत में प्रेमतत्व की सर्वाधिक महत्ता है। इस प्रेमतत्व के आधार पर ही सूफ़ी काव्य में हिन्दू-गाथाओं से प्रेमकथाएँ ली गई हैं। सूफ़ी आत्मा को पति और परमात्मा को पत्नी मानते हैं। उनका भौतिक प्रेम अंत में अलौकिकता की ओर उन्मुख हो जाता है। लौकिक प्रेम की तीव्रता अंत में अलौकिक प्रेम में परिणत हो जाती है।

नामकरण :--

विद्वानों ने सूफी काव्य-धारा को अनेक नाम दिये हैं। प्रेमतत्व की प्रधानता के कारण आचार्य शुक्ल ने इसे ''प्रेमाश्रयी शाखा'' कहा है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ''प्रेम काव्य-धारा'' और डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने ''रोमांटिक कथा-काव्य-पर्परा'' के नाम से अभिहित किया है। किन्तु सूफड़ी मत के सिद्धांतों पर आधारित होने के कारण इसका नाम ''सूफडी-काव्य-धारा'' ही अधिक उपयुक्त है।

सूफ़ी काव्यधारा की विशेषताएँ :--

निर्गुण भक्ति शाखा में ''सूफ़ी काव्य-धारा'' का प्रमुख स्थान है। इस शाखा की कतिपय प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं--

(1) प्रेम-तत्त्व का प्राधान्य :-- इस काव्य-धारा में प्रेम-तत्त्व का विशेष रूप से निरूपण किया गया है। इसी कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे प्रेमाश्रयी शाखा नाम दिया है। इस धारा के कवियों ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। अत्मारूपी नायक परमात्मा रूपी नायिका को अनेक कठिनाइयों को पार करके प्राप्त करता है। उसका परमात्मा के प्रति असीम अनंत प्रेम है। यही प्रेम-तत्त्व इनके काव्य ग्रंथों का प्रमुख आधार है। अतः इनके काव्य में प्रेम-तत्त्व की तीव्र व्यंजना है।

(2) गुरु का महत्त्व :-- सूफ़ी सिद्धांत के अनुसार प्रेमी निरन्तर प्रेममय पर अग्रसर होकर परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है, किन्तु शैतान उसके मार्ग में बाधक होकर उसे पथ-भ्रष्ट करना चाहता है। उस समय गुरु ही मार्ग दर्शन करता है। बिना गुरु कृपा के प्रेम-पथ पर आरूढ़ नहीं रहा जा सकता। अतः सूफडी काव्य-धारा में गुरु का विशेष महत्त्व है।

(3) श्रृंगार रस की प्रधानता :-- वैसे तो सूफ़ी काव्य में वीर, शांत तथा वीभत्स आदि रसों का परिपाक हुआ है, किन्तु नायक नायिका के मिलन-प्रयास के संदर्भ में श्रृंगार की प्रधानता है। कहने को तो श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है, किन्तु प्रधानता वियोग श्रृंगार की है। आत्मा को परमात्मा का संयोग-सुख एक लम्बे विरह के बाद मिलता है। इस धारा के कवियों ने विरह-काव्य की तीव्र-व्यंजना की है। विरह-पीड़ा सहना सूफ़ी मत के अनुसार अनिवार्य है। पद्मावत् में नागमती का विरह वर्णन इसीलिए अधिक सजीव हो उठा है।

(4) रहस्यवाद :-- इस काव्य-धारा के कवि मूलतः रहस्यवादी हैं। इनमें भावात्मक रहस्यवाद के अत्यंत सरस एवं धार्मिक रूप का चित्रण हुआ है। किंतु कहीं-कहीं हठयोगियों के प्रभाव से साधनात्मक रहस्यवाद का आभास भी मिलता है। भावात्मक रहस्यवाद में विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम की वियोग-जन्म पीड़ा में इस प्रकार व्यथित है--

हाड भये सब किंगरी नसें भई सब तांति।
रोंम-रोंम सों धुनि उठैं, कहौं बिथा केहि भांति।।

और साधनात्मक रहस्यवाद का एक उदाहरण इस प्रकार है--

नव पौरी बाँकी, नव खण्डा, नवौ जो चढ़ै जाय बह्मण्डा।

(5) मण्डनात्मक प्रणाली का ग्रहण :-- सूफडी कवियों ने ज्ञानाश्रयी संत कवियों की भाँति किसी धर्म, जाति तथा संप्रदायों के विचारों का खण्डन नहीं किया। उन्होंने प्रेमतत्त्व के आधार पर हिन्दू-मुस्लिम

दोनों के लिए ईश्वर-प्राप्ति का पथ प्रशस्त किया। इसी कारण ये कवि उनकी अपेक्षा अधिक लोकप्रिय बन सके। इन्होंने अपनी काव्य-रचना में मण्डनात्मक प्रणाली ग्रहण की, जिसमें समन्वय का प्राधान्य था।

(6) सूफ़ी सिद्धांतों का प्रयोग :-- इस काव्य-धारा के कवियों के अपने काव्य में सूफी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। सूफ़ियों के अनुसार आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए शरीयत, तरीयत, मारिफत और हकीकत-चार अवस्थाओं को पार करना पड़ता है। प्रारंभ में उनका प्रेम लौकिक होता है। और अंत में अलौकिकता की ओर उन्मुख हो जाता है। सूफ़ी कवियों ने अपनी रचनाओं में उक्त सभी सिद्धांतों का प्रयोग किया है।

(7) नारी की प्रधानता :-- इस धारा के कवियों ने नारी को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। वह ईश्वर का प्रतीक तथा साधना का केन्द्र है। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने जहाँ नारी की निंदा तथा भर्त्सना की है, सूफ़ी काव्य-धारा के कवियों ने वही नारी को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया है।

(8) प्रकृति-चित्रण :-- सिफी कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति को भी महत्त्व प्रदान किया है। उनका ब्रह्म प्रकृति में भी प्रतिबिम्बित है। षड्ऋतु वर्णन तथा बारहमासा में इनका प्रकृति-चित्रण दृष्टव्य है। संदर्भ रूप में एक उदाहरण इस प्रकार है--

कातिक सरद चन्द्र उजियारी, जग शीतल हौं विरहै जारी।
चौदह कला चाँद परगासा, जनहु जरै सब धरनि अकासा।।

(9) हिन्दू-जीवन से प्रेमाख्यानों का ग्रहण :-- सूफ़ी कवियों ने अपने काव्य-ग्रंथों में हिन्दू-जीवन से सम्बद्ध प्रेमाख्यानों को स्थान दिया है और इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का पथ प्रशस्त किया है। उदाहरणार्थ पद्मावत् में जायसी ने चित्तौड के राजा रत्नसेन और सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमकथा चत्रित की है। अन्य प्रेमक्वाय भी इसी प्रकार के हैं।

(10) भारतीय लोक-संस्कृति का चित्रण :-- इनके काव्य का मूल आधार हिन्दु प्रेमगाथाएँ होने के कारण इसमें भारतीय लोक-संस्कृति के विविध-रूप साकार हो उठे हैं। इसमें हिन्दुओं के रीति-रिवाज और अन्धविश्वासों तक का चित्रण हुआ है। उन्होंने अपने काव्य में राम, कृष्ण और शिव आदि का भी उल्लेख किया है तथा शकुन-अपशकुनों को भी अवकाश मिला है।

(11) इतिहास और कल्पना का योग :-- इन कवियों ने अपने काव्य ग्रंथों में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय किया है। जिन प्रेमगाथाओं को अपने काव्य का विषय बनाया है, वे ऐतिहासिक होते हुए भी कल्पना से मांसल है। कल्पना ने उन्हें अधिक सरस एवं मर्मस्पर्शी बना दिया है। उन्होंने कल्पना के माध्यम से नवीन पात्र तथा घटनाओं की उद्भावना की है।

(12) ऊहात्मकता :-- सूफियों ने तीव्र विरह-वेदना की अभिव्यक्ति में ऊहात्मकता को भी प्रश्रय दिया है। विरहावस्था का एक ऊहात्मक चित्रण इस प्रकार है--

रक्त ढ़रा आंसू गरा, हाड़ भयो सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, आइ समेटहि पंख।।

(13) शैतान का उल्लेख :-- इन सूफ़ी कवियों ने शैतान को माया का प्रतीक माना है। शैतान आत्मा-परमात्मा के मिलन में सदैव बाधक रहा है। इस सम्बन्ध में डॉ. शिवकुमार शर्मा ने लिखा है--''सूफी प्रेम-काव्यों में शैतान को माया के समान साधक को साधना के मार्ग से भ्रष्ट करनेवाला माना गया है। एक साधक गुरु की कृपा से शैतान के पंजे से मुक्त हो सकता है। संत कवियों ने माया को हेच सिद्ध किया है, किन्तु सूफियों ने शैतान को त्याग ने योग्य नहीं माना है, क्योंकि शैतान के द्वारा उपस्थित व्यवधानों से साधक की अग्नि-परीक्षा होती है और उसके प्रेम में दृढ़ता और उज्वलता आती है।

(14) प्रब्धात्मकता :-- इस शाखा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसके कवियों ने प्रेमाख्यानों पर आधारित प्रबन्ध काव्यों की रचना की है। पद्मावत्, मृगावती, मधुमयी आदि इसके स्पष्ट उदाहरण है।

(15) अवधी भाषा का प्रयोग :-- सूफी कवियों के काव्य-ग्रंथों की प्रमुख भाषा अवधी है। उनके काव्य में अवधी भाषा की लोकोक्तियों तथा मुहावरों का भी प्रयोग है। कहीं-कहीं भोजपुरी तथा ब्रजभाषा का भी प्रयोग हुआ है, किन्दु प्रमुखता अवधी भाषा की ही है।

(16) अलंकार योजना :-- अलेकारों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है। िसके काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का अनायास ही प्रयोग हुआ है, जिससे काव्य-सौंदर्य में वृद्धि हुई है।

(17) छन्द विधान :-- इन कवियों ने अपनी काव्य-रचा में अधिकांशतः दोहा तथा चौपाई छंदों का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं सोरठा, बरवै और प्लवंग आदि छंदों का प्रयोग किया गया है।

(18) प्रतीकात्मकता :-- इन कवियों ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इसलिए इनके काव्य में प्रतीकों तथा संकेतात्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ नायक का नाम सुजल और नायिका के निवास-स्थान का नाम रूप नगर है। पूरे का पूरा पद्मावत प्रतीक-विधान है।

(19) मसनवी शैली का प्रयोग :-- सूफी कवियों ने अपने काव्य में मसनवी या फारसी शैली का प्रयोग किया है। काव्य के प्रारंभ में ईश्वर-वन्दना, मुहम्मद साहब की स्तुति तथा तत्कालीन बादशाह की प्रशंसा की गई है। आत्म परिचय भी दिया गया है।

प्रेममार्गीय शाखा के प्रतिनिधि कवि : जायसी

भक्तिकाल में निर्गुण धारा के अन्तर्गत जन प्रेममार्गी सूफी कवियों ने प्रेम कहानियों के रूप में अलौकिक सत्ता की ओर संकेत किया है, उनमें से जायसी प्रथम स्थान के अधिकारी ठहरते हैं। ''प्रेम की पीर'' की जैसी रम्याद्भुत अभिव्यक्ति इन्होंने अपने काव्यों के माध्यम से की है, वैसी अन्य प्रेममार्गीय कवि करने में असमर्थ रहे।

मालिक मुहम्मद जायसी जिला रायबरेली के अन्तर्गत 'जायस' नामक ग्राम के निवासी थे, तभी उन्हें केवल 'जायसी' नाम से भी पुकारा जाता है। इनके जन्म एवं जीवनवृत्त के विषय में कोई सर्वमान्य मत नहीं है। कहा जाता है कि इनकी बाल्यावस्था में ही माता-पिता की मृत्यु हो गई, जिससे इनका पालन-पोषण नाना के घर हुआ 17 वर्ष की आयु में चेचक ने इनके बायाँ कान एवं बाईं आँख को बेकार कर दिया था। बचपन से ही इनकी प्रवृत्ति ईश्वरोन्मुखी रही है। सूफी महात्मा शेख मोईउद्दीन इनके दीक्षागुरु थे। जायसी अमेठी के राजा रामसिंह के विशेष कृपाभाजन थे। रचनाएँ : कहा जाता है कि जायसी ने अनेक छोटे-बड़े काव्यों की रचना की है। इनकी लगभग बीस रचनाएँ मानी जाती हैं, परन्तु वे सभी आज उपलब्ध नहीं हैं। इनमें से तीन

काव्य प्रमुख हैं--पद्मावत, अखरावट और आखिरीकलाम। परन्तु जायसी की ख्याति का मूलाधार 'पद्मावत' ही है।

अवध प्रान्त सूफियों का गढ़ माना जाता है, उसी कारण से सूफ़ी कवियों ने इसी लोकभाषा का प्रयोग किया है। जायसी ने अवधी के साहित्यिक रूप को ग्रहण न करके लोकप्रचलित रूप को ग्रहण किया है।

''आखिरी कलाम'' रचना में मरने के बाद जीव की अवस्था, क़यामत, रोजे इन्साफ़ और स्वर्ग के आनन्द की झलक विशुद्ध इस्लाम धर्म के विधान के अनुकूल वर्णित की गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ के निर्माण तक जायसी सूफ़ी सिद्धान्तों से अभी पूर्णतः प्रभावित नहीं हो पाए थे।

'अखरावट' में वर्णमाला के कुछ अक्षरों को लेकर सूफ़ी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, जिसके अन्तर्गत ईश्वर, सृष्टि, जीव, संसार की क्षणभंगुरता, ईश्वरीय प्रेम आदि विषयों को सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया गया है। सूफी तत्त्वों का दिग्दर्शक यह ग्रन्थ सूफ़ी मतावलम्बियों की एक अक्षय निधि है।

'पद्मावत' शीर्षक प्रबन्ध काव्य ही जायसी की अखण्ड यश का आधारभूत ग्रन्थ है। इसकी रचना दोहा-चौपाई में की गई है। इसके प्रेम-कथानक में इतिहास एवं कल्पना का सुन्दर समन्वय मिलता है। कथा का पूर्वार्द्ध कल्पना की उपज है और उत्तरार्द्ध राजस्थान के इतिहास से ग्रहण किया गया है। यह प्रेमाख्यान परम्परा का प्रौढ़तम काव्य माना जाता है।

'पद्मावत' की रचना मसनवी शैली के आधार पर हुई है। मसनवियों का आरम्भ परमात्मा, मुहम्मद साहेब, ख़लीफ़ाओं (युग का शासक) और गुरु की वन्दना एवं स्तुति से होता है, यही क्रम 'पद्मावत' में भी अपनाया गया है। इसके उपरान्त कथा प्रारम्भ होती है। विचारों की दृष्टि से इसमें हिन्दू और मुस्लिम दोनों के विचार पाए जाते हैं। वेदान्त, नाथपन्थ एवं हठयोग के चलते हुए सिद्धान्तों का इसमें यत्र-तत्र उल्लेख मिल जाता है। कथानक हिन्दुओं का लिया गया है। किन्तु इतिहास से मेल न खाने वाले भाग भी इस काव्य में कम नहीं है। इसमें चितौड के राजा रत्नसेन एवं सिंहल की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम, विवाह एवं विवाहोत्तर जीवन का चत्रण मार्मिक रूप में हुआ है। काव्य के अन्त में युद्ध में रत्नसेन की मृत्यु हो जाती है तो उसकी पत्नियाँ पद्मावती एवं नागमती राजा के शव के साथ सती हो जाती हैं। इस प्रकार काव्य का अन्त विषादमय है।

यह ग्रन्थ घटनाप्रधान महाकाव्य है। इसे 58 खण्डों में विभाजित किया गया है। युद्धदि का भी प्रभावशाली वर्णन इसमें मिलता। प्रकृति-चित्रण में प्रसंगानुकूल मानव-मनोभावों के साथ तादात्म्य दर्शाया गया है। मानव-स्वभाव - चित्रण तो इसकी अपनी विशेषता है।

इस ग्रन्थ का काव्य-पक्ष भी अत्यन्त प्रबल है। यों तो श्रृंगार के दोनों पक्ष - संयोग एवं वियोग का सफल चित्रण प्रस्तुत काव्य में मिलता है, पर कवि की प्रतिभा का द्योतक इसका वियोग पक्ष है। इसका निरूपण जिस अन्तर्दृष्टि, गम्भीरता एवं सरसता से किया गया है, वह हिन्दी साहित्य की अनुपम-निधि है। विशेषतः हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में नागमती वियोग खण्ड का अद्वितीय स्थान है।

सर्वप्रथम 'पद्मावत' में वियोग-श्रृंगार के दर्शन वियोगी रत्नसेन के रूप में होते हैं। उसके विरह में ग्रह-नक्षत्र, पशु-पक्षी, वनस्पति एवं प्रकृति सभी कुछ रंग दिया गया है--

''नैनहिं चलत रक्त की धारा। कंथा भीजि भएउ रतनारा।
सूरज बूढ़ि उठा होइ ताता। और मजीठ टेसू बन राता।।

नागमती विरहाग्नि में दग्ध-हृदय के साथ वन-वनान्तर की ख़ाक छानती फिरती है। समस्त विश्व उसके आँसूओं से आर्द्र है, उसकी विरह-ज्वाला से भस्मीभूत हो रहा है। कौए और भौंरे काले इसलिए हैं कि नागमती के विरहज्वाला में जलने के कारण जो धुआँ उठा है, वह उन्हें लगा है--

पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुइ, ते हि क धुँवाँ हम्ह लाग।।

श्रृंगार रस के अतिरिक्त पद्मावत में अन्य रसों की भी आनुषंगिक रूप से अभिव्यंजना की गई है। भाषा शैली की दृष्टि से भी यह एक उत्तम काव्य है। जायस का अलंकार-विधान अत्यन्त स्वाभाविक एवं सन्तर्भानुकूल है।

जायसी का मुख्य उद्देश्य सूफ़ी मत के मूल सिद्धान्त 'प्रेम की पीर' का प्रतिपादन करना था, जिसका प्रतिफलन प्रस्तुत काव्य में हुआ है। उनका यह ग्रन्थ इसी प्रेम की स्निग्ध आर्द्रता से परिप्लावित है। पद्मावत दो सर्वथा भिन्न जातियों के तत्त्वों से निर्मित है। इस प्रकार यह ग्रन्थ पारस्परिक वैमनस्य को दूर करके उन्हें एक-दूसरे के निकट लाने में समर्थ हुआ है। स्वयं जायसी को दोनों जातियों की मूलगत एकता में दृढ़ विश्वास था--

बिरिछ एक लागी दुइ डारा। एकहिं ते नाना परकारा।
मातु कै रक्त पिता के बिन्दू। उपजै दुवै तुरुक औ हिन्दू।।

सन्तों की साधना से जो सम्भव न हो सका, जायसी ने धार्मिक एकता के शुभ सन्देश को अपने प्रेम-प्रबन्ध द्वारा बड़े सरस और मनोरम रूप में निष्पन्न किया। जायसी द्वारा अनुप्राणित यह प्रेममार्गीय काव्य-परम्परा आगे भी चलती रही। निष्कर्षतः भक्तिकालीन कवियों में जायसी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सगुण भक्तिधारा की विशेषताएँ

सगुण भक्ति के अंतर्गत ब्रह्म के निराकार स्वरूप को यद्यपि अस्वीकार नहीं किया गया है तथापि व्यावहारिक दृष्टि से उसके साकार सगुण रूप की प्रतिष्ठा की गई है। सगुण भक्ति की काव्य-धारा दो शाखाओं में प्रवाहित हुई - राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा।

ºÉÉ¨ÉÉxªÉ Ê´É¶Éä¹ÉiÉÉBÄ

(1) सगुणोपासना :-- इन कवियों ने ब्रह्म को साकार एवं सगुण माना है और उसके इसी रूप की प्रतिष्ठा करते हुए अपने उद्‌गार व्यक्त किये हैं।

(2) ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों को मान्यता :-- सगुण भक्त कवियों ने ब्रह्म के निर्गुण रूप को स्वीकार किया, परंतु इनका कहना यह था कि निर्गुण की उपासना के लिए सगुण माध्यम अनिवार्य है। गोस्वामी तुलसीदास ने निर्गुण रूप को सापेक्ष बताया, यथा--

ज्ञान कहे अज्ञान बनु, तम बिनु कहे प्रकास।
निर्गुण कहे सगुण बिनु, सो गुरु तुलसीदास।।

कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास का कहना है कि सगुण साकार रूप भावगम्य एवं बुद्धिग्राह्य है। चंचल मन के लिए आधार अथवा आलम्बन अनिवार्य है, यथा अविगत गति कछु कहत न आवै,

* * * * *

रूप-रेख-गुन जाति जुगति बनु निरालम्ब मन चकृत धावै
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै।

(3) रूप की उपासना :-- सगुण भक्त कवियों ने भगवान के रूप-सौंदर्य की उपासनापरबल दिया है। प्रत्येक भक्त कवि ने भगवान के बाल रूप का सौंदर्य-वर्णन जी खोलकर तथा पूरी तन्मयता के साथ किया है। कृष्ण भक्त कवियों ने तो भगवान के जागने, कलेवा करने, गाय चराने, मक्खन खाने, शयन करने हिण्डोला झेलने नाचने आदि को लक्ष्य करके अनेकानेक रचनाएँ लिखी हैं।

राम भक्त और कृष्ण भक्त सभी कवियों की एक विशेषता हमारे सामने बरबस आ जाती है कि ये कवि अपने आराध्य के सौंदर्य-वर्णन का कोई भी अवसर न जाने देते हैं।

(4) भक्ति-भावना की प्रधानता :-- प्रेम और श्रद्धा के योग का नाम भक्ति है अर्थात् भक्ति की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति तभी होती है, तब आलम्बन के सौंदर्य के अतिरिक्त उसके विशिष्ट गुण-शक्ति एवं

शील - का भी निरूपण किया जाय। न भक्त कवियों ने ऐसा ही किया है। इनका स्पष्ट मत है कि भक्ति के बिना न ज्ञान की प्राप्ति होती है और न प्रभु का साक्षात्कार ही संभव होता है। भक्ति के अभाव में वे संसार से उद्धार की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं। सगुण भक्त कवियों की एक विशेषता द्रष्टव्य है - वे भक्ति को साधन और साध्य दोनों मानते हैं।

(5) अवतार :-- सगुण भक्त कवि सिद्धांत रूप से परम प्रभु को निर्गुण मातावलम्बियों की भाँति अजर, अमर, अजन्मा तथा अखण्ड मानते हैं, परंतु इसके साथ वे यह भी मानते हैं कि भगवान अपने भक्तों का, साधु संतों का कल्याण करने के लिए, पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपने लीला-वस्तार द्वारा यथावसर सगुण - साकार रूप धारण करते हैं और इस महीतल पर अवतरित होते हैं। यह मान्यता अत्यंत प्राचीन है। भगवान धर्म की स्थापना के समय तक तो यह मान्यता सर्वथा परिपुष्ट हो चुकी थी कि :

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।''

हिन्दी के भक्त कवि ने भी इस मान्यता का जन-भाषा में घर-घर प्रचार किया--

''जब जब होय धरम कै हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।
तब तक धरि प्रभु मनुज सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।''

(6) आदर्शवादी दृष्टि :-- भक्तों के भगवान् सब प्रकार से आदर्श हैं। वह अनंत सौंदर्यशाली होने के अतिरिक्त अनन्त शक्ति एवं अनन्तशील के सागर हैं। वह रावण और कंस सदृश शक्तिशाली आततायियों का विनाश करने में समर्थ हैं और साथ ही बड़े से बड़े पापियों का उद्धार करने की उदारता से युक्त हैं। भक्त कवि प्रभु के इन गुणों का गुणगान करते हुए उनका जी कभी अघाता नहीं। भगवान के अनंत सौंदर्य, शक्ति और शील समन्वित स्वरूप की देखकर कौन द्रवीभूत न हो उठेगा।

(7) भगवान् की लीला का वर्णन :-- दृष्यमान जगत की प्रत्येक घटना लीलाधारी उस परम प्रभु की लीला है। इस रूप में जीवन और जगत का वर्णन करने में भक्त कवि एक विशेष प्रकार की अनुभूति का अनुभव करते हैं। भक्त कवियों ने अपने आराध्य की लीलाओं के अनेक भावपूर्ण वर्णन लिखे हैं। इस क्षेत्र में कृष्ण भक्त कवि राम भक्त कवियों को बहुत पीछे छोड गए हैं।

(8) गुरु की महिमा :-- सगुणोपासक भक्त कवियों ने कबीर आदि निर्गुण भक्त कवियों की भाँति गुरु के महत्व को स्वीकार किया है। गुरु के बिना भक्ति के सच्चे स्वरूप का ज्ञान ससम्भव है। भक्त कवियों ने गुरु की स्तुति में अनेक भावपूर्ण छंद लिखे हैं। अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी की स्तुति में लिखा हुआ सूरदास का यह पद अत्यंत प्रसिद्ध है--''श्री वल्लभ गुरू तत्त्व सुनाया लीला भेद बताओं'' तथा ''श्री वल्लभ नख चन्द छटा बिनु सब जग माहिं अँधेरौ'' आदि।

(9) ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन :-- भक्त कवियों ने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति के मार्ग को अधिक सरल, मनोवैज्ञानिक, व्यावहारिक तथा श्रेष्ठ बताया। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में ज्ञान को दीपक तथा भक्ति को मणि बताया है। सूरदास का भ्रमरगीत तो ज्ञान केन्द्र पर भक्ति का जयघोष ही हैं।

(10) मोक्ष की अवहेलना :-- जैसा हम अन्यत्र निवेदन कर चुके हैं भक्त-जन भक्ति, मुक्ति आदि किसी वस्तु की कामना या याचना नहीं करते। उन्हें तो केवल प्रभु की अनन्य भक्ति चाहिए। इसके लिए वे मोक्ष, निर्वाण पद आदि सब कुछ अस्वीकार कर देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने तो स्पष्ट लिखा है--

सगुणोपासक मोक्ष न लेहीं।
तिन कहँ राम भगत बिन देहीं।।

(11) वैधी वैष्णव भक्ति का प्रतिपादन :-- भक्त कवियों ने वेद शास्त्र द्वारा निर्धारित भक्ति एवं साधना के स्वरूपों को अपनाया और उन्हीं का प्रतिपादन किया; यथा--

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संजुत विपति विवेक।
जे परिहरहिं विमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक।।

इन भक्त कवियों के काव्य में हमको भक्ति के समस्त परम्परानुमोदित एवं प्रचलित रूपों का समावेश मिलता है। श्रवण, कीर्तन, मनन, गुणकथन आदि नवधा भक्ति का निरूपण तो प्रायः प्रत्येक भक्त कवि ने किया है।

(12) पूर्ण समर्पण :-- भक्त जन अहंकार रहित होकर प्रभु के श्रीचरणों में अपे आप को समर्पित करना ही जीवा का सर्वस्व मानते हैं। भक्ति इनके लिए साधन भी है और साध्य भी है। ये कवि कसी प्रकार के पुरुषार्थ की अपेक्षा प्रभु की कृपा को अपने उद्धार का एकमात्र साधन मानते हैं। प्रभु की कृपा को लक्ष्य करके भक्त कवियों ने अनेक मार्मिक शक्तियाँ कही हैं--

यह गुन साधन ते नहिं होई।
तुम्हारी कृपा पाउ कोइ कोइ।।

(13) विश्व-बन्धुत्व का भाव :-- सगुण भक्त कवियों ने सब प्रकार के भेद-भाव को अस्वीकार किया। इनके विचार से राजा से लेकर रंक तक, कोरी से कुंजर तक सबको समान रूप से प्रभु भक्ति का अधिकार है। भगवान की भक्ति प्राप्त करनेवालों में गुह, निषाद, शबरी, विभीषण, गिद्धराज, जटायु, धूर्त मारीच और नीच पक्षी काकभुशुंडि अग्रगण्य हैं। भगवान की उदारता के सम्मुख किसी प्रकार के भेद-भाव के लिए स्थान नहीं है।

(14) रस और भाषा-शैली के साहित्यिक रूप का प्रयोग :-- इन भक्त कवियों ने प्रभु-चरत्र वर्णन के नाम पर प्रायः प्रत्येक रस की रचनाएँ लिखी हैं। श्रृंगार रस को तो पूर्ण प्रकर्ष पर पहुँचा दिया है। आलम्बन भेद से श्रृंगार के जितने भी भेद होते हैं -- वात्सल्य, दाम्पत्य, भक्ति, मैत्री, दास्य -- सबके वर्णन पूर्ण मनोयोग से किए हैं और उनके श्रेष्ठतम रूपों को प्रस्तुत किया है।

इन कवियों ने प्रचलित भाषाओं को साहित्यिक रूप प्रदान किया। सूरदास में हमको सर्वप्रथम परिनिष्ठित व्रजभाषा के दर्शन होते हैं और तुलसीदास ने अवधी को सर्वप्रथम परिनिष्ठित एवं साहित्यिक रूप प्रदान किया।

भक्त कवियों ने काव्य के क्षेत्र में प्रचलित प्रत्येक शैली को अपनाया और जन-जन तक अपना संदेश पहुँचाया।

इतना ही नहीं, इन कवियों ने छंद, अलंकार, शब्द-शक्ति आदि के सफल निर्वाह द्वारा अपने काव्य को उच्च कोटि के कलापक्ष से युक्त किया।

उपसंहार :-- समस्त भक्त-काव्य के स्रोत संस्कृत के प्राचीन धर्म ग्रंथ हैं। इन कवियों ने अपनी बात को ऋजु सरल भाषा में कहा। इस कारण इनकी वाणी में रहस्यात्मक उक्तियों का तथा कबीर की भाँति अटपटी वाणी का अभाव है।

भारत के लोकनायक तुलसी

जब समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न होकर उसकी गति रुद्ध हो जाती है और सडांध होने लगती है, उस समय किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव होता है जो सम्पूर्ण विरोधी तत्वों एवं गति-रुद्धता के कारणों का परिष्कार कर समाज में पारस्परिक सहयोग और समानता की भावना उत्पन्न करता है। इतिहास इसका साक्षी है। महाभारत काल में राम युग की मर्यादाएँ नष्ट होने के कारण भारतीय संस्कृति के लिए एक भयानक संकट उत्पन्न हो गया था। ब्राह्मण क्षत्रियों के पारस्परिक द्वेष से उत्पन्न विषमता के कारण जनता त्रस्त थी। साधकों के

विभिन्न दल ज्ञान, कर्म और भक्ति की मनमानी व्याख्या कर पारस्परक विरोध को व्यापकता दे रहे थे। ऐसे समय योगिराज कृष्ण ने महाभारत का संचालन कर प्रतिकूल शक्तियों का उन्मूल् किया और ज्ञान, कर्म, और भक्ति की एकता स्थापित की। कालान्तर में पुनः कर्मकाण्ड की प्रधानता हो जाने के कारण सामाजिक गतिरोध उत्पन्न हुआ; उसका परिष्कार करने के लिए गौतम बुद्ध सामने आए। बुद्ध के लगभग डेढ़ हजार वर्ष उपरान्त जब बौद्ध धर्म भी बाह्य कर्म-काण्ड और आडम्बर के माया-जाल में उलझ गया तो शंकराचार्य ने समाज का उद्धार किया। पर्तु शंकर का प्रभाव केवल दार्शनिक एवं धार्मिक क्षेत्रों तक ही सीमित रहने से अधिक स्थायी और ठोस नहीं रह सकता; क्योंकि उसमें समाज के व्यावहारिक पक्ष की उपेक्षा की गयी थी। धार्मिक आचार्यों ने उन्हीं सिद्धांतों के आधार पर धर्म का पुनः परिष्कार कर सामाजिक मर्यादा स्थापित करने का प्रयत्न किया। आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने नके इस प्रयत्न को पूर्णता प्रदान कर समाज को मर्यादा के बन्धन में बाँध दिया और उसमें समन्वय की भावना उत्पन्न की। यह लगभग एक हजार वर्ष से चली आती हुई विषमता का परिष्कार था। इसीसे तुलसी द्वारा स्थापित लोक-धर्म आज भी हिन्दुओं का लोक-धर्म माना जाता है और उनका ''मानस'' हिन्दुओं का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म-ग्रन्थ। तुलसी की महानता का यही ऐतिहासिक महत्व और रहस्य है जो आज भी अक्षुण्ण बना हुआ हा।

अचार्य हजारी प्रसाद द्विव्दा के शब्दों में ''लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार-निष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धेदेव समन्वयकारी थे। गाता में समन्वय की चेष्टा है; और वे मनोविज्ञान को भली भांति समझ सके। वह प्राचीनता को संस्कृत कर उसमें अपनी नवीन विचारधारा का मिश्रण कर इस रूप में ढांल देता है जिससे सम्पूर्ण समाज का कल्याण होकर उसे सन्तोष और शान्ति प्राप्त होती है। भौतिक बल के आधार पर कोई व्यक्ति लोक-शासक तो हो सकता है, परन्तु लोकनायक नहीं। शासक से जनता प्रायः भयभीत और दूर रहती है जबकि लोक-नायक जनता की श्रद्धा का भाजन होता है। शासक का अधिकार केवल तन पर ही रहता है, परन्तु लोक-नायक का अधिकार तन और मन दोनों पर रहता है। इससे उसका प्रभाव अधिक स्थायी, दृढ और स्नेहसिक्त होता है। लोकनायक स्वयं त्याग कर समाज की श्रद्धा, प्रेम और सम्मान प्राप्त करता है। अकबर और तुलसी दोनों समकालीन थे। अकबर लोक-शासक था और तुलसी लोकनायक। अकबर का केवल ऐतिहासिक महत्व मात्र अवशिष्ट है और तुलसी आज भी हिन्दू समाज के कर्णधार का आसन ग्रहण किये हुए हैं। यही दोनों में अंतर है।'' साथ ही लोकनायक का पद उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो सामाजिक परिस्थितियों का सम्यक अध्ययन कर प्रचलित ऐसी मान्यताओं को, जो समाज के लिए घातक हो उठती हैं, मानने से स्पष्ट इन्कार कर देता है। उसमें प्रगतिशीलता की भावना होती है। वह उन प्राचीन

मान्यताओं का निराकरण कर समय के अनुकूल उचित नवीन मान्यताओं की स्थापना करता है। तुलसी ने यही किया था; इसी से सुप्रसिद्ध समाजवादी अलोचक डॉ. रामविलास शर्मा तुलसी को प्रगतिशील साहित्यकार की संज्ञा से विभूषित किया है। ऐसा साहित्यकार, जो प्राचीन हो अथवा नवीन-- यदि आदुनिक प्रगतिवादी आलोचकों की प्रशंसा और सहानुभूति प्राप्त कर लेता है, वह निश्चय ही प्रगतिशील और लोकनायकत्व का वास्तविक अधिकारी माना जा सकता है। तुलसी ने यह प्रशंसा और सहानुभूति प्राप्त की है। तुलसी सच्चे अर्थों में लोकनायक थे और ऐसे लोकनायक जिनका प्रभाव तब बना रहेगा जब तक हिन्दू धर्म और संस्कृति को जनता द्वारा स्वीकृति मिलती रहेगी।

तुलसी समन्वयकारी थे। उन्होंने समाज के नाना स्तरों का जीवन भोग था; गृहस्थ जीवन की निकृष्तम कोटि की आसक्ति के शिकार बन चुके थे। उच्च के ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होकर भी दरिद्रता के कारण उन्हें घर-घर बटकना पडा था। उन्होंने सामान्य जनता के दुखों, कष्टों और समस्याओं को निकट से देखा और उन्का अनुभव किया था। वे अपने जीवन में अशिक्षित एवं उच्छकोटि के व्यक्तियों से लेकर परम साधकों और काशी के दिग्गज पणिडितों तक के संसर्ग में रह चुके थे। उनका प्रचीन संस्कृत साहित्य एवं प्रचलित भाषा साहित्य-ज्ञान विस्तृत और गम्भीर था। उनका पिंगल शास्त्र का ज्ञान भी अपूर्व था। लोक और शास्त्र के इस समिमिलित और यथार्थ ज्ञान ने उनके काव्य को व्यापक बना दिया था। कुछ कवि केवल अश्रयदाताओं की प्रशंसा में ही अपनी सम्पूर्ण काव्य-शक्ति का अपव्यय कर रहे थे। तुलसी क्रांतिकारी थे। ज्ञान के इस दुरुपयोग से वे तिलमिला उठे, इनकी दृष्टि में **''कीन्हे प्राकृत जन गुणगाना, सिर धुनि गिरा लगी पछताना''** वाला सिद्धान्त या गिरा का वास्तविक उपयोग प्राकृत जन का गुणगान करने के लिए न होकर जन-कल्याण के लिए होना चाहिए, तभी उसकी सार्थकता है। पक्कड का अपना व्यक्तिगत सुख ही क्या था। समाज और वह-दोनों अभिन्न थे; इसलिए उसके सुख के निश्चित रूप से समाज का सुख सम्मिलित था। उसका स्वांतःसुखाय, जन हिताय ही था और सच्चे साहित्य मनीषी स्वान्तः सुखाय जन हिताय बना देने की कला में पारंगत हाते हैं।

तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय भाषा और संस्कृति समन्वय, भक्ति ज्ञान और कर्म का समन्वय, शैव और वैष्णव का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, ब्राह्मण और चांडाल का समन्वय, भिन्न काव्य प्रणालियों का समन्वय आदि विभिन्न क्षेत्रों के समन्वय के द्वारा उन्होने उपयुक्त सम्पूर्ण क्षेत्रों में व्याप्त विषमता का निराकरण कर एक नवीन स्वस्थ और स्फूर्तिदायक समानता का आदर्श उपस्थित किया। राम के शक्ति, शील, सौंदर्य समन्वित व्यक्तित्व के रूप उपर्युक्त सभी समन्वयों का उपयोग कर उन्होंने राम के लोक-संग्रही रूप का अत्यन्त सशक्त, प्रभावशाली और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया। तुलसी लोकनायक क्यों माने गये? इस प्रश्न का उत्तर देने केलिए सर्वप्रथम तुलसी के युग पर

एक दृष्टि डाल लेना उचित है। उस समय तक देश पर मुसलमानों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। समाज की दशा विश्रृंखलित थी। उसके सामने कोई अच्चा नहीं था। उच्च वर्ग विलासिता में निमग्न था और निम्न वर्ग उत्याचार का शिकार हो रहा था। लोगों के लिए संसार त्याग कर वैराग्य को अपनाना साधारण-सी बात थी। विभिन्न सम्प्रदायवाले अपने-अपने मतों का प्चार करने में प्रयत्नशील थे। सन्तगण वेद, पुराण, साधु आदि की निन्दा कर सामाजिक और धार्मिक मर्यादाओं पर कुठाराघात कर रहे थे। योगमार्गी साधु अपने चमत्कारों से जनता को चमत्कृत करने में प्रयत्नशील थे। अलख को लखने की भावना जोर पर थी। सन्तों, योगमार्गियों के इस दल में अशिक्षित एवं उच्च वर्ग के प्रति उपेक्षा की भावना रहने के कराण उनके आत्मविश्वास ने दुर्वह गर्व का रूप धारण कर लिया था। ऊँची जातियाँ उनसे चिढा करती थीं। हिन्दू समाज बल-वैभवहीन था। मुसलमनी समाज धार्मिक उन्माद, प्रजा पीडन और विलास में डूबा हुआ था। मदांध मुसलमान शासक तलवार के बल पर इसलाम का प्रचार कर रहे थे। हिन्दू त्रस्त थे। तुलसी से पूर्व कबीर ने इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न तो किया परन्तु उन्हें आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई थी। सूफियों के साहित्य में इस्लामी दर्म की हल्की-सी गंध थी। कृष्ण-भक्त भी जनता के सम्मूख एक शक्तिशाली आदर्श उपस्थित करने में असमर्थ रहे। अतः राजनीतिक और सामाजिक आत्याचारों से त्रस्त जनता को इन प्रयत्नों से कोई ढाढस नहीं मिला। अन्त में तुलसी ने भयभीत जनता के मनोनुकूल राम के शक्ति, शील एवं सौंदर्य के समन्वित रूप की स्थापना कर एक दृढ़ सम्बन्ध प्रदान किया। तुलसी के राम सर्वशक्ति मान, दीन प्रतिपालक और दयालु थे। जनता ने गद्‌गद् हृदय से तुलसी का यह आभार नतमस्तक होकर स्वीकरा किया। हिन्दू धर्म की रक्षा हुई और जनता में अत्याचार का प्रतिशेद करने की शक्ति उत्पन्न हुई। राम जनता के सम्मुख अत्याचार का समूल नाश करनेवाले शक्ति-पुंच के प्रतीक बन गये थे. तुलसी के राम-कार्य यही है कि-- **''जब जब होइ धरम के हानि, बढहिं, असुर अधम अभिमानी तब-तब धरि प्रभु मनुज सरीरा हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।''** कलापूर्ण चित्र प्रस्तुत किया। उस काल के हिन्दू धर्म में अनेक भ्रांतियाँ प्रचलित थीं, तुलसी ने शिव और राम की एकता स्थापित कर इस विरोध को मिटाने का स्तुत्य प्रयत्न किया परन्तु इसका यह अर्थ कधआपि नहीं कि उन्होंने से भी समझौता करने का प्रयत्न किया परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि उन्होंने बुराई से भी समझौता करने का प्रयत्न किया था। वे शक्ति के विरोधी थे। इस कारण उनेहें कबीर का **''बैश्नों की छपरी भली ना सकता को बडगाँव''** वाला सिद्धांत मान्य था। शक्तों की रीति-सीतियों को वे समाज के लिए घातक समझते थे। इसीसे उन्होंने सीता में आदि शक्ति का रूप प्रतिष्ठित कर शक्ति का भी संस्कार करने का प्रयत्न किया था। शैवों, वैष्णवों और शाक्तों का यह समन्वय उनके काव्य में सर्वत्र बिखर पडा है। इसी प्रकार काव्य में अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत और पुष्टि-मार्ग के सिद्धांतों का भी समन्वय हुआ है। उन्होंने भगवान

की कृपा को प्रधान माना है। वे ज्ञान, कर्म और भक्ति की - उनके एकंगी रूप में कोई ुपयोगिता स्वीकार नहीं करते। परन्तु समय की परिस्थितियों के अनुसार उन्होंने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को ही प्रधान माना है, क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियों में ज्ञान की उपादेयता क्षीण हो चली थी। जनसाधारण का मानसिक स्तर उसे समझने में असमर्थ था और ज्ञान अपने एकाकी रूप में सामान्य को कभी प्रभावित भी नहीं कर पाता।

तुलसी समाज के सजग प्रहरी थे। उन्हें लोकहित का पूर्ण ध्यान था। वे जानते थे कि जब तक लोक मर्यादा का पालन नहीं होगा, तब तक जन-कल्याण असम्भव है। मर्यादा के अभाव में लोक-व्यवस्था उत्पन्न होना आकाशकुसुम के समान है। तुलसी के काव्य में एक भी पंक्ति ऐसी नहीं मिलेगी जिसमें मर्यादा का उन्लंघन हुआ हो। उनके राम ''मर्यादा पुरुषोत्तम'' हैं। फिर मरियादा का उल्लंघन कैसे सम्भव था। उन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्षों का एसा संतुलित और मर्यादित चित्रण किया है कि सहसा इस मनीषी कवि की प्रतिभा पर साधारण बुद्धि अविश्वास कर उठती है। हिन्दी साहित्य की यह निधि शाश्वत है। राम एक पूर्ण मानव हैं। मानव के सुख-दुख, राग-विराग की सम्पूर्ण भावनाएँ उनमें हैं। राम के रूप में युग ने जनता का पूर्ण रूप देखा। उनमें अपने आदर्शों का पूर्ण प्रतिबिम्ब देखकर लोक ने उन्हें ललक कर अपना लिया। यह तुलसी की ही विराट कल्पना का परिणाम था। तुलसी का जनवादी दृष्टिकोण ही राम-राज्य जैसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करने में समर्थ था। तुलसी ने कबीर आदि की ङठधर्मी के स्थान पर सहिष्णुता का सम्बल ग्रहण किया था। उन्होंने समाज की अव्यवस्था पर प्रहार भी किया; परन्तु उस प्रहार में कबीर की-सी निर्ममता और विध्वंसक भावना न होकर एक निर्माणकारी और कल्याणकारी भावना था। तुलसी का व्यक्तित्व सौम्य था; और समन्वय का आधार सौम्यता ही मानी जाती है। बुद्ध, ईसा, गांधी आदि महापुरुषों का चरित्र सौम्य था। इस कारम ''तुलसी के खण्डन में कटुता के स्थान पर मिठास अधिक है। उन्होंने असंतों की बी वन्दना की है।'' ''बंदो संत उसज्जन चरन''। वे घोर मर्यादावादी भी हैं। वेद-पुराण, शास्त्र, मुर्ति-पूजा, तीर्थ, वर्ण-व्यवस्था, लोकमत आदि का उन्होंने पूर्ण समर्थन किया है। वे विध्वंसक क्रान्ति में विश्वास न रखा कर निर्माणात्मक परिवर्तन में आस्था रखते हैं। इसी कारण उदार धर्म-परायण हिन्दू साज में उन्हें सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। वस्तुतः तुलसी भारतीय धर्म-संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

भाषा और काव्यशास्त्र के क्षेत्र में भी इस युग-पुरुष ने समन्वय किया था। वे भाषा और भावों के पूर्ण अधिकारी थे। उन्होंने अपने समय में प्रचलित दोनों साहित्यिक भाषाओं -- ब्रज और अवधी को समान रूप में अपनाया था। दोनों भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे; परन्तु लोकहित की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने इन जनभाषाओं को अपनाया और प्रतिदान में वे अमर हो गये। भाषा के अतिरिक्त पिंगल-शास्त्र के सभी नियमों का उन्होंने पालन किया था। इसी कारण अलोचना साहित्य की दृष्टि से

भी हिन्दी साहित्य में ''मानस'' का स्थआन अत्यन्त उच्च मानते हैं। भाषा और पिंगल-शास्त्र के साथ ही उन्होंने अपनी समकालीन एवं अपने से पूर्व प्रचलित समस्त काव्य-पद्धतियों का सफलतापूर्वक उपयोग किया था। चन्द के छप्पय, कबीर के दोहे और सूर के पद और विद्यापति की गीत पद्धति, जायसी ईश्वरदास का दोहा-चौपाई पद्धति रहीम के बरवै-गंग आदि की सवैया, कवित्त-पद्धति एवं मंगल काव्यों की मंगल पद्धति को उन्होंने अपनाया। साथ ही तत्कालीन जनता में प्रचलित सोहर, नहछू चाँचर, वेली वसंत आदि रागों में भी उन्होंने राम काव्य लिखा था। इस प्रकार साधारण जनता में प्रचलित गीत पद्धति से लेकर शिक्षित जनता में प्रचलित काव्य-रूपों तक को उन्होंने अपनाया था। यह उनकी अद्‌भुत काव्य-प्रतिभा का प्रमाण है।

इतनी विषमताओं में साम्य स्थापित करनेवाला पुरुष यदि लोकनायक नहीं होगा तो और कौन होगा। तुलसी ने बुद्ध, कबीर, चैतन्य आदि की भांति कोई मत नहीं चलाया; पर हिन्दुत्व के क्षेत्र में आज तुलसी का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। तुलसी कवि, भक्त, पंडित, विचार-सुधारक, लोकनायक और भविष्य-स्प्रष्टा थे। उन्होंने मानव जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र में समता की रक्षा करते हुए ऐसे काव्य का सृजन किया जो शताब्दियों से उत्तर भारत का पथ-प्रदर्शक रहा था और अब भी है। इसी कारण तुलसी को गौतम बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोक नायक माना गया है।

सूर : भक्ति के क्षेत्र में

हम पहले कह आये हैं कि रामोपासक कवि राम के लोक-रक्षक रूप को और कृष्णोपासक कवि कृष्ण के लोकरंजक रूप को प्रधानता देकर काव्य के क्षेत्र में आये। तुलसी के पथ-प्रदर्शनार्थ कोई निश्चित सिद्धां नहीं थे। उन्होंने रामानन्दी सम्प्रदाय में अनेक परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं परिष्कार कर, उसे एक लोक-धर्म के रूप में उपस्थित कर, अपने मार्ग का निर्माण स्वयं किया था। इसी से उनका काव्य समन्वय का काव्य कहा जाता है। सूर वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए थे। प्रष्टिमार्ग के अपने निश्चित सिद्धांत और नियम थे। माधुर्य भाव की उपासना उनका आधार थी। अभिप्राय से वल्लभ स्वामी ने सूर को श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन मण्डली का प्रधान नियुकित किया था। भगवान का मन्दिर उसका संसार था और भगवान की दैनन्दिन लीलाओं का वर्णन नका कार्य। पुष्टि मार्ग में कृष्ण के लोक-रक्षक रूप की उपेक्षा कर केवल उनके बाल और किशोर रूप की माधुर्यपूर्ण उपासना पर ही बल दिया गया है। इस उपासना पद्धति में महाभारत के कृष्ण के लिए कोई स्थान नहीं है। जब पुष्टिमार्ग में ही कृष्ण के लोक-रक्षक रूप की उपेक्षा कर केवल उनके बाल और किशोर रूप की माधुर्यपूर्ण उपासना पर ही बल दिया गया है। इस उपासना पद्धति में महाभारत के कृष्ण के लिए कोई स्थान नहीं है। जब पुष्टिमार्ग में ही कृष्ण के लोक-रक्षक रूप की पूर्ण अवहेलना की गई थी तो

उसके अनुयायी लोक को साथ लेकर कैसे चल सकते थे? इसी कारण कृष्णोपासक कवियों के लिए लोक सदैव उपेक्षित-सा रहा है। उनमें भक्त-हृदय को पूर्ण तन्मयता थी। स्वयं वे और उनके भगवान ही उनका लोक था। परिणामस्वरूप इन कवियों में भक्ति की पूर्ण तन्मयता तो मिली, परन्तु लोक-कल्याण की भावना की अभाव-सा रहा। कृष्ण-काव्य में लोक की उपेक्षा का यही प्रधान कारण था।

वल्लभाचार्य मूलतः भक्त आचार्य थे। भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत करना ही नका प्रधान लक्ष्य था। उनकी मेधाशक्ति उसके स्वरूप का निरूपण करने में ही लगी रही। भक्ति का रूप प्रधानतः व्यक्तिवादी था, जिसका लोक से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं माना गया था। इस कारण उसकी तत्सम्बन्धी स्थापनाओं में समाज की समस्याएँ स्थान न पा सकीं और उनके अनुयायी भी गुरु के आदेशों का पालन करते रहने के कारण समाज की ओर ध्यान न दे सके। वे केवल अपने आराध्य के लीला-गान में ही समित होकर रह गये।

वल्लभ सम्प्रदाय में बाल कृष्ण की उपासना का विशेष महत्व है। बालकृष्ण की लीला में भाग लेना ही भक्तों का सर्वस्व है। यह भक्ति माधुर्य भाव की होने के कारण रागानुराग है, वैधी नहीं है। इस भक्ति में प्रेम का महत्व है। परन्तु वैधी भक्ति में लोकाचार और वेद-विधि के पालन का विधान है। रागानुराग भक्ति का यह प्रेम का आदर्श गोपियों के प्रेम के रूप में चरम विकास को प्राप्त हुआ। यद्यपि नन्द यशोदा के वात्सल्य-भाव का भी वल्लभ सम्प्रदाय में पर्याप्त स्थान है, परन्तु भक्ति का पूर्ण परिपाक राधा-कृष्ण और गोपियों के प्रेम के रूप में ही हुआ है। प्रेम मेंकिसी भीप्रकार का कोई व्यवधान नहीं रहता। इसकी सम्पूर्ण लीलाओं में राधाकृष्ण और गोपियाँ पूर्ण तन्मय रहते हैं। ये सब-लीलाएँ भक्त और भगवान एवं जीवन और ब्रह्म के व्यवधान को लुप्त करने के साधन हैं। सूर को वल्लभ ने अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करते समय केवल भगवद् लीला का वर्णन करने का ही आदेश दिया था। सच्चे शिष्य की भांति सूर ने उसका एक निष्ठ मन से पालन किया। इस लीला-वर्णन में सूर इतने तन्मय हुए कि उन्होंने अपने पथ-प्रदर्शक गुरु के प्रति एक भी शब्द नहीं कहा। कहा भी तो दसरों के सुझाने पर और वह भी अपे अन्तिम समय में। अतः लीलागान में तन्मय ऐसे भक्त को संसार की क्या चिंता हो सकती थी? वह तो अपने प्रभु में ही सम्पूर्ण विश्व के दर्शन का अभ्यासी था। दूसरी बात यह है कि पुष्टिमार्ग के सिद्धांतानुसार कृष्ण की यह लीला जो ब्रज में हुई, शाश्वत है। वृन्दावन गोलोक का प्रतीक है जहाँ सदैव आनेदमय रास होता रहता है। कृष्ण की यह लीला जो ब्रज में हुई, शाश्वत है। वृन्दावन गोलोक का प्रतीक है जहाँ सदैव आनंदमय राम होता रहता है। कृष्ण ब्रह्म है; राधा उनकी शक्ति और गोपियाँ आत्माएँ हैं। प्रत्येक भक्त अपने इस लीला का अंश समझता है। कृष्ण प्रतिदिन उठते, कलेवा करते, गाय चराते, घर लौटते और शयन करते हैं। प्रतिदिन, प्रतिमास और प्रतिऋतु उनके जीवन की विशेष बातों के लिए उत्सव होता है। इस प्रकार भक्तों के लिए मन्दिर ही एक अलग विश्व होता है। जहाँ से वह बाहर नहीं जाते! जाये भी

कैसे? उनके आराध्य भी तो नहीं जाते। उस आराध्य को छोड़कर जाना भक्ति के अभाव का द्योतक होता है। इसलिए सूर ने श्रीनाथ जी के मन्दिर में हरि लीला गाने में ही अपनी मुक्ति समझी। वे वहाँ से बाहर नहीं निकले प्रभु का लीलागान उनके जीवन का एक मात्र काम्य था और वे जीवन-भर उसीसे व्यस्त बने रहे।

तीसरी बात यह है कि कृष्ण के लोक-रक्षक स्वरूप की ओर महाभारत और गीता के उपदेष्टा कृष्ण की ओर वल्लभाचार्य ने ध्यान तक नहीं दिया। इसीलिए सूर ने भी नहीं दिया। माधुर्य की उपासना में पौरुष के लिए स्थान ही कहाँ है? यही कारण है कि कृष्ण द्वारा असुरों का वध किये जानेवाले प्रसंग का वर्णन करने में सूर की रुचि अधिक नहीं रमी है। सूर की मथुरा तीन लोक से न्यारी थी। वे केवल ब्रज और कृष्ण में ही सीमित होकर रह गए। उनकी समस्त चेतना इसी ब्रज में बन्दी हो गई। तुलसी की भांति राजनीति, धर्म और समाज के मंगल की उन्होंने चिंता नहीं की थी। वे तो ''तन, मन, धन गुरुनई जी को अर्पण'' सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनकी मर्यादा सम्प्रदाय की थी, लोक या समाज की नहीं। उस सम्प्रदाय की सीमा में जो जितना ऊपर उठा वह उतना ही उच्चाकोटि का हुआ। सूर भक्तराज थे। वे उस भीक्त के क्षेत्र में इतने गहरे उतर गये थे कि उन्हें सम्प्रदाय तक का ध्यान नहीं रहा था। इसीलिए अष्टछाप के कवियों में सूर में सबसे कम साम्प्रदायिकता मिलती है।

सूर की रचना स्वान्तः सुखाय थी। पुष्टिमार्गी भक्त भगवान की कृपा के अतिरिक्त अन्य साधनों में विश्वास नहीं करता। भगवान का अनुग्रह ही उसका सर्वस्व है। इसीलिए भक्ति की इस अपूर्व तन्मयता के क्षेत्र में केवल भक्त और उसके भगवान ही रह जाते हैं। भक्त को भगवान के चिंतन में अपूर्व आनंद मिलता है। भगवान अपने लोक को स्वयं ही सँभाल लेंगे तो भक्त को उसकी चिंता करने की क्या अवश्यकता है! जहाँ अपनी सभी प्रवृततियों में ''कृष्णार्पणमस्तु'' की दृढ़ भावना हो वहाँ समाज की ओर क्या देखना! सूर ने तो सन्दरता के संसार का अपने आराध्य में ही सब कुछ देख लिया था। उनके कृष्ण सामाजिक मर्यादाओं के भंजक थे। इससे उनकी सम्पूर्ण लीला सामाजिक मर्यादा के विपरीत थी। लीलाओं का आनंद समाज के समक्ष कहाँ सम्भव था! गोपियाँ स्वयं इन मर्यादाओं को तोडकर कृष्णलीला में सम्मिलित होती थीं। यदि सूर सामाजिक मर्यादाओं का ध्यान रखते तो उन्हें इन लीलाओं में इतना आनंद कैसे आता और वे उनका सरस वर्णन कैसे कर सकते! सूरी काव्य की अलौकिक-सी सरसता का यह भी एक प्रधान कारण रहा है।

सूर-काव्य में समाज की अपेक्षा होने का कारण यह भी प्रतीत होता है कि सूर अंधे थे। उनका संसार अत्यन्त सीमित था। वे स्वयं न तो यात्रा ही कर सकते थे और न ही संसार की भलाई-बुराई को देख उसका अनुभव ही कर सकते थे। तुलसी के समान न तो उनका अध्ययन ही विशाल था और न कबीर के समान वे

अथक पर्यटक और बहुश्रुत ही थे और फिर श्रीनाथ जी के मन्दिर में जा विराजे थे। मन्दिर का वातावरण सदैव कृष्ण लीला से गुंजायमान रहता था। समाज की विषमता वहाँ प्रविष्ट नहीं हो पाती थी। इसी से अन्धे सूर को संसार का अनुभव नहीं हुआ।

आचार्य शुक्ल लोक और समाज को इस अपेक्षा का कारण बतलाते हुए कहते हैं कि सब सम्प्रदायों के कृष्ण-भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की बाललीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपने प्रेम-लक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त समझा। महत्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव छोड़ देने के कारण कृष्ण के लोकरक्षक और धर्म संस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यकता उन्होंने न समझी। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के अनेक गम्भीर पक्षों के मार्मिक रूप प्रस्फुटित हुए और न बहुरूपता आई। ये अपने रूप में मस्त रहने वाले जीव थे। तुलसीदास जी के समान लोकसंग्रह का भाव इनमें न था। समाज किधर जा रहा था-- इस बात की परवाह ये नहीं करते थे। आचार्य शुक्ल के इस कथन के अनुसार अपने सम्प्रदाय तन्मयता और एकांगी दृष्टिकोण ने ही सूर को समाज से निर्लिप्त बनाए रखा था। सूर भक्तराज थे। भक्ति की पूर्ण त्मयता उनके पदों में मिलती है, इससे ''सूर भक्ति के क्षेत्र में इतने आगे पहुंच गए थे कि समाज की आवश्यकताओं का उन्हें ध्यान ही नहीं रहा।''

3.0 रीतिकाल

रीतिकाल नामकरण :-

''रीति'' का अर्थ सामान्य भाषा में प्रकार होता है। ''रीति'' शब्द का यदि शाब्दिक अर्थ लिया जाए तो उसका अर्थ ''काव्य-रचना का ढंग या प्रकार'' होगा। किन्तु हिन्दी में इस शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। काव्य-रचना संबंधी नियमों की व्याख्या की जाती है तो उसे ''रीति ग्रंथ'' और जब उन नियमों के अनुसार काव्य-रचना की जाती हैं तो उसे ''रीति-काव्य'' लक्ष्य ग्रन्थ की संज्ञा दीजाती है। साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का दिया हुआ नाम ''रीतिकाल'' है, जिसे ज्यादातर विद्वान मानते हैं। उन्होंने तत्कालीन लक्षण-उदाहरण शैली की प्रमुखता को देखकर इस काल को ''रीतिकाल'' का नाम दिया था, जो समीचीन है। यद्यपि अनेक विद्वानों ने इस काल के अनेक नाम दिये थे जैसे-रीतिकाल, अलंकृत काल, श्रृंगार काल आदि तथापि ''रीतिकाल'' का नाम इस काल के लिए उचित बैठा था, क्योंकि इस काल की रचनाओं में अलंकरण, रीति-शैली, कलात्मकता और श्रृंगार-भावना की ही प्रधानता थी।

तत्कालीन परिस्थितियाँ :

रीतिकाल का समय 1700 से 1900 तक माना जाता है। इस काल की संपूर्ण परिस्थितियों का विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय देश की राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक स्थितियाँ बड़ी सोचनीय अवस्था में थी। अब इनपर अलग-अलग विचार करना उचित होगा--

®úÉVÉxÉèÊiÉEò {ÉÊ®úÎºlÉÊiÉªÉÉÄ :

1600 के वक्त मुगलों का शासन पूर्णतः छाया हुआ था। इसलिए आक्रमण रुक चुके थे। अब जनता शांति एवं आनंदप्रिय हो गयी थी। इस समय बादशाह शाहजहाँ भारत के राजसिंहासन पर आसीन था। उत्कर्ष के चरम बिन्दु के उपरान्त यहीं से निर्गति का भी आरंभ हो गया।

पुनः समस्त देश विप्लवों और युद्धों के काले-काले बादलों से आच्छादित हो गया। शाहजहाँ के बीमार पड़ने पर उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए कलह मच गयी और केन्द्रीय शासन निर्बल हो गया। मुगल साम्राज्य की विराट गरिमा के नष्ट हो जाने से राजनीति पतन की गर्त में जा पड़ी। अत्याचारी औरंगजेब भी झट-से अपने भाइयों को मारकर भारत के सिंहासन पर आसीन हुआ। फिर भी वह एक सफल राजनीतिज्ञ नहीं था। सारा साम्राज्य औरंगजेब के अत्याचारों को विस्फरित नेत्रों से देख रहा था। उधर जयपुर पर अधिकार कर लेने पर मारवाड और मेवाड़ मुगलों के विरुद्ध हो गये ते। औरंगजेब की मृत्यु के बाद समस्त राज्य छिन्न-भिन्न हो गये। उसके सारे पुत्र औरंगजेब के अहंवाद के कारण विक्तित्वहीन बने और कर्मचारियों के हाथ की कठपुतली बने। इसी समय नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने मुगल साम्राज्य की लडखडाती दीवारों को मटियामेट कर दिया। इस प्रकार केन्द्रीय शासन के दुर्बल हो जाने पर भिन्न-भिन्न प्रांतों के अधिपति स्वतंत्र होने लगे और उनमें ईर्ष्या-द्वेष का ताण्डव नर्तनहो रहा था। राज्य के उत्तराधिकारी विलासप्रिय हो गये थे। अतः शासन-विधान की बागडोर ढीली पड़ गयी। हिन्दू-मुसलमानों में धार्मिक भेद-भाव ने पूर्ण-रूपण घर कर लिया थी। दोनों एक-दूसरे के प्राण-घातक होने लगे थे। फिर भी हिन्दू पददलित थे और मुसलमान विलासिता में मग्न थे।

ºÉÉ¨ÉÉÊVÉEò {ÉÊ®úÎºlÉÊiÉªÉÉÄ :

इस समय सामाजिक स्थित भी अति दयनीय थी। उस समय सारा समाज आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से दो भागों में बँटा हुआ था-- एक उत्पादक वर्ग और दूसरा भोकता-वर्ग। उत्पादक वर्ग में कृषक समुदाय और श्रमजीवी थे जो शासन तथा युद्ध संबंधी कार्यों से सदा अलग रहते थे और सरकार को कर देते थे। भोक्ता-वर्ग में सम्राट के परिवार और दरबार से लेकर उनके दास, नौकर-चाकर आदि सभी इसी में आते

हैं। विशेषतः इनकी सामाजिक स्थिति श्रेष्ठतर थी। इनमें और उत्पादक वर्ग में शोषक-शोषित का संबंध था। तीसरा वर्ग उन विद्वानों का था जो राजाओं के आश्रय में रहकर जीवन-यापन करते थे। कवि और विशिष्ट कलाकार इसी वर्ग में आते हैं। शाहजहाँ के बाद राजकीय आश्रय भी बन्द हो गया था और इससे उनकी सामाजिक स्थिति बहुत गिर चुकी थी। परन्तु मुगल परिवार वैभव एवं ऐश्वर्य से भरा हुआ था। नगर रमणीक सरोवरों, सुवासित उद्यानों से सुशोभित था। वैभव की अति पर पहुँचने पर विलासिता का सागर उमडना स्वाभाविक ही था। सुरा और अन्य मादक वस्तुओं का प्रयोग चरमसीमा तक पहुँच चुका था। राजा के महलों में श्रृंगारिता का नग्न नृत्य होता था। सैनिक शिबिरों में वेश्याओं का जमाव था और सेनापति का कार्य कामदेव के हाथ में था। इस प्रकार राजनैतिक और सामाजिक पतन के फलस्वरूप नैतिक रुग्णता भी स्वाभाविक थी। विलासिता से जर्जर होकर मुसलमान नैतिक बल खो चुके थे और हिन्दू युग-युग से पदक्रान्त थे।

धार्मिक परिस्थितयाँ :

राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक पतन तो हो चुका था, परन्तु नसे भी दयनीय अवस्था धर्म की थी। उस समय हिन्दू और मुसलमान धर्म के अनुयायियों में तीन वर्ग हो गये थे। पहला वर्ग वह था जिसमें विद्वान और पंडित लोग शास्त्र विहीन धर्म का अध्ययन और अनुसरण करते थे। ये लोग अपने धर्म ग्रंथों की आज्ञाओं का पालन अक्षरशः करते थे और उनकी वाणी को देववाणी मानते थे। हिन्दू संप्रदायों में िस समय मुख्यतः वैष्णव धर्म की शाखा-उपशाखाओं का प्रचार था और उनमें भी कृष्ण भक्ति की प्रवृत्ति विशेष रूप से प्रचलित थी। इस शाखा के अनेक संप्रदायों ने जनता में जाकर धर्म का प्रचार नहीं किया और राजसी ठाट-बाट के वातावरण में रहकर उनकी साधना, तत्वचिन्तन सब अवरुद्ध हो गये। दूसरा वर्ग अशिक्षित जन-समुदाय का था। ये अंध-विश्वासी होकर भक्ति के बाह्यांगों तथा तीर्थाटन तक सीमित रहते थे। फिर भी ये लोग रामकीर्तन तथा प्रतिवर्ष रामलीला और रासलीला नियमित रूप से मनाते थे। सूर, मीरा के पदों का गान होता था। तीसरा वर्ग उदार वर्ग था जिसका उद्देश्य हिन्दू और मुसलमान के भेद-भाव को हटाकर एक आधार पर संयुक्त करना था। रतिकाल तक आते-आते कृष्ण-काव्य का भक्तिकालवाला आध्यात्मिक रूप नष्ट हो गया और राधा-कृष्ण लौकिक नायक-नायिका मात्र रह गये। राधा-कृष्ण के इस प्रेम-स्वरूप के सम्मुख रामोपसना की मर्यादित शुष्क धारा फीकी पड गयी और इसकी आड़ में कवियों ने अपनी कुत्सित वासना का नग्न चित्रण किया।

Eò±ÉÉï¨ÉEò {ÉÊ®úÎºlÉÊiÉªÉÉÄ :

इस युग में जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान कलाक्षेत्र में प्रदर्शन-प्रवृत्ति की ही पिरधानता थी। रीतिकाल मेंपरम्पराबद्ध दृष्टिकोण का निर्वाह होता रहा, इसमें मौलिक प्रतिभा और सप्राणता का नितान्त अभाव था,

इसके स्थान पर उसमें नग्नता की म्तारा अधिक थी। ''स्वामिनः सुखायः'' उद्‌भूत कला में सात्विकता की अपेक्षा बाजारूपन अधिक होता गया। प्रदर्शन-प्रधान रीतिकालीन चित्रकला में नायक-नायिकाओंकी बंधी-बंधाई प्रतिकृतियाँ तैयार होती रहीं। युग रुचि के अनुसार इनमें रुग्ण श्रृंगारिता का आधिक्य रहा। राधा-कृष्ण के तो उस युग में अश्लील चित्र बने ही, साथ ही साथ शिव और पार्वती को भी उसी कोटि में लाकर नत्थू और कल्लू के रूप में खड़ा कर दिया। परम्पराबद्ध शैली, अलंकरण की अतिशयता, चमत्कार-वृत्ति, रोमानी वातावरण की सृष्टि, दरबारी अदब कायदों की जकडबन्दी--ये सभी प्रवृत्तियां साहित्य के समान कला-क्षेत्र में भी दृष्टिगोचर होती हैं।

साहित्यिक परिस्थितियाँ :

साहित्यिक क्षेत्र में संस्कृत साहित्य के रीति-ग्रंथों एवं फारसी की ऊहात्मक प्रवृत्ति का प्रभाव बढ़ रहा था। इस काल में प्रमुख रूप से दो प्रकार के साहित्य का निर्माण हुआ-- राज्याश्रय प्राप्त साहित्य और लोक - साहित्य। राज्याश्रय प्राप्त साहित्य दरबारी कवियों द्वारा रचा गया और लोक साहित्य भूषण, लाल, सूदन, घनानंद, आलम, बोधा जैसा कवियों द्वारा। पहले में विलास की तीव्र गंध थी और दूसरे में वीरत्व की सजग भावना और रीति-मुक्त श्रृंगारी कविता की प्रधानता थी। परन्तु संस्कृत के रीति साहित्य का प्रभाव इस युग में इतना व्यापक रहा कि उससे भूषण जैसा कवि भी न बच सका। रीतिकाल तक आते-आते अनेक लक्ष्य ग्रंथों का निर्माण हो चुका था। लक्ष्य ग्रंथों के आधार पर ही लक्षण-ग्रंथ बनाये जाते हैं। समयानुकूल साहित्य का इस ओर झुकाव होना एक स्वाभाविक घटना थी। परन्तु हिन्दी के इस काल के कवि लक्षण देने में तो नहीं, बल्कि उदाहरण देने में अपने पूर्ववर्ती कवियों से भी आगे बढ़ गये।

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

रीतिकाल में प्रमुख रूप से सात प्रवृत्तियों की प्रधानता रही। वे हैं--

1. लक्षण ग्रंथों का निर्माण
2. लौकिक श्रृंगार की व्यंजना
3. कला पक्ष की प्रधानता
4. प्रकृत का उद्दीपन रूप में चित्रण
5. मुक्तक काव्य रचना
6. विरक्ति की भावना

7. वीर काव्य

1. लक्षण ग्रंथों का निर्माण :

रीतिकाल के प्रारंभ तक संस्कृत का साहित्य-शास्त्र पूरी तरह से विकसित हो चुका था। भामह, उद्‌भट, मम्मट का ''काव्यप्रकाश'', जयदेव का ''चन्द्रालोक'' और विश्वनाथ का ''साहित्य-दर्पण'' अनेक आचार्यों तथा उनके ग्रंथों द्वारा काव्यांगों का विशद विवेचन किया जा चुका था। उपर्युक्त ग्रंथ ही लक्षण-ग्रंथों के मूलाधार रहे। केशव ने सर्वप्रथम शास्त्रीय पद्धति पर रस और अलंकारों का निरूपण किया। इस प्रवृत्ति के कारण अब काव्य रचना में हृदय की अनुभूतियों के स्थान पर केवल छन्द, अलंकारों के दृष्टांत दिये जाने लगे। मौलिकता का सर्वथा अभाव हो गया।

2. लौकिक श्रृंगार की व्यंजना :

राधा-कृष्ण अब लौकिक नायक-नायिका बनकर इन कवियों के आलंबन बने। नारी के प्रति इन कवियों की अनन्य आसक्ति थी। इन्होंने नारी की ''आँख मूंदिबो'' खेलने की आयु लेकर निस्संकोच ''बालम को दृग'' जोडने तक की परिस्थितियों का नख-शिख वर्णन के साथ पूरा-पूरा चित्रण किया है। परन्तु इस वर्णन मेंप्राचीन उपमानों का ही आधार लिया गया था। इससे श्रृंगार रूढ हो गया। लौकिक श्रृंगार की यह भावना तीन कारणों से आयी-- (1) संस्कृत के स्त्रीत्र-साहित्य और जयदेव, विद्यापति और सूर की श्रृंगारात्मक भक्ति का प्रभाव (2) संस्कृत के अमरूक शतक और आर्य सप्तशती जैसे सप्तशती साहित्य का प्रभाव (3) कामशास्त्र का प्रभाव।

कुछ आलोचक श्रृंगार की अधिकता का उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से कृष्ण-भक्त कवियों पर डालते हैं, जो गलत है।

कलापक्ष की प्रधानता :

इस युग में भावना की सुकुमारता अनुभूति की सत्यता एवं कल्पना की मौलिकता की अपेक्षा उक्ति की वक्र-व्यंजना पर अधिक बल दिया गया। कवि की दृष्टि काव्य की आत्मा ''रस'' से हटकर कला की ओर गयी। भाव भक्ष की अवहेलना हुई। कल्पना की उडान, वाग्वैदग्ध्य, चमत्कार-वृत्ति आदि गुण फारसी से ग्रहण किये गये। अलंकारों का प्राधान्य रहा। भाषा में अवधी और व्रज का मिश्रण था। दोहा, कवित्त और सवैया

छन्दों की प्रधानता रही। कुछ कवियों ने चित्र-काव्य लिखे। इन कलाकारों में आचार्य और कवि का भेद जाता रहा। एक ही व्यक्ति ने दोनों का कार्य संपादन करने की कोशिश की, जिससे गडबड़ी पैदा हो गयी।

प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण :

नायक-नायिका की मानसिक स्थिति के अनुकूल प्रकृति का चित्रण किया गया। संयोग में प्रकृति का खिला हुआ उम्मीदकारी रूप और वियोग में त्रासदायक रूप चित्रित हुआ। स्वतंत्र प्रकृति-निरीक्षण का अभाव रहा। आलंबन रूप में प्रकृति का चित्रण कम हुआ।

मुक्तक काव्य रचना :

इस युग का संपूर्ण काव्य मुक्तक के रूप में रचा गया। चमत्कारपूर्ण दोहा-साहित्य का बाहुल्य इसी कारण हुआ।

विरक्ति की भावना :

लगभग सभी रीतिकालीन कवियों ने भक्ति संबंधी पद लिखे हैं। राम, शिव, दुर्गा आदि की स्तुति भक्ति-पूर्वक की है। कारण यह था कि विलास में आकंठ निमग्न इन कवियों को जब वृद्धावस्था में अपने कर्मों पर आत्मग्लानि हुई तो अनुभूति के क्षणों में इन लोगों ने भगवद्शरण प्राप्त करनी चाही।

वीर काव्य :

मुसलमानी शासन के विरुद्ध मराठ, सिख और रजवाड़े विद्रोह कर बैठे थे। हिन्दू-राष्ट्र की भावना ने इस विद्रोह को प्रशस्त किया था। भूषण, लाल, सूदन, पद्माकर आदि ने हिन्दू वीरों की प्रशस्तियाँ गायीं।

हिन्दी में रीति-काव्य का विकास :

हिन्दी में यद्यपि रीति-ग्रंथों की रचना का श्रीगणेश भक्तिकाल से ही हो चुका था तथापि रीति काव्यों की अविच्छिन्न परम्परा चिन्तामणि से ही प्रारंभ हुई। हिन्दी में रीति-निरूपण अथवा आचार्य कर्म का निर्वाह दो रूपों में संपन्न हुआ है। रीतिबद्ध कवियों ने साक्षात रूप में लक्षण ग्रंथ लिखकर काव्यांगों का निरूपण किया है, परन्तु रीतिसिद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथ न लिखकर लक्ष्य ग्रंथों का निर्माण किया है। इनके लक्ष्य ग्रंथों के उदाहरणों की पृष्ठभूमि में रीतिशास्त्र अवश्य काम कर रहा था जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि

रीतिसिद्ध कवि भी शास्त्र के पंडित अवश्य थे। इस प्रकार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से रीति ग्रंथों का प्रणयन उस काल में प्रचुर रूप से हुआ।

हिन्दी में रस निरूपण करनेवाले प्रथम कवि कृपाराम माने जाते हैं जिन्होंने संवत् 1598 में ''हिततरंगिणी'' की रचना की थी। इसी समय के लगभग मोहनलाल मिश्र ने ''श्रृंगार सागर'' नामक एक ग्रन्थ लिखा था। इसके पश्चात् करुणेश कवि ने ''कर्णाभरण'', ''श्रुति-भूषण'' और ''भूप-भूषण'' नामक तीन अलंकार संबंधी ग्रंथ लिखे थे। इन लोगों के पूर्व भी कई रीति-ग्रन्थ लिखे गये थे; जैसे सूरदास की ''साहित्य लहरी'' और ''नन्ददास'' की ''रसमंजरी''। परन्तु उपर्युक्त संपूर्ण ग्रंथ स्पष्ट रूप से रीति-ग्रन्थों के रूप में नहीं लिखे गये थे। सर्वप्रथम केशवदास ने ही ''कविप्रिया'' और ''रसिक प्रिया'' जैसे रीति ग्रंथों की परम्परा डाली थी। रीति-ग्रंथों के प्रणेताओं में केशव के बाद चिन्तामणि आते हैं। इनके साथ ही भूषण और मतिराम की गणना की जाती है।

रीतिकाल के प्रथम पचास सालों में कुलपति, सुखदेव और देव के नाम विशेष महत्वपूर्ण हैं। बिहारी भी इसी काल में हुए थे। देव के बाद रीति काव्य का खूब विस्तार हुआ। कालिदास, सुरति मिश्र, श्रीपति, सोमनाथ आदि ने इस परंपरा को खूब आगे बढ़ाया। भिखारीदास रीतिकाल के अन्तिम बड़े आचार्य माने जाने हैं। रीति परम्परा के अन्तिम प्रतिभासंपन्न कवि के रूप में पद्माकर प्रसिद्ध हुए। इनके साथ ही बेनी कवि और प्रतापसिंह की गणना होती है। संक्षेप में हिन्दी रीति-काव्य का यही विकास-क्रम रहा है।

रीतिकाल की रीतिबद्ध और रीतिमुक्त धारा :

रीतिकालीन कवियों को स्पष्ट रूप में दो प्रमुख धाराओं या भागों में रखा जा सकता है-- एक है रीदिबद्ध और दूसरी है रीतिमुक्त। इन भागों के बीच का एक और उपविभाग किया जा सकता है जिस उपविभाग या धारा में आनेवाले कवियों को हम रससिद्ध या रीतिकाव्य कवि के नाम से अभिहित कर सकते हैं। परन्तु इस विषय में विद्वानों में मतभेद है।

अ. रीतिबद्ध धारा :

रीतिबद्ध धारा के लेखक वे हैं जिन्होंने शास्त्र स्थित संपादन किया है। इन्होंने संस्कृत के काव्य-शास्त्र के आधार पर काव्यांगों के लक्षण देते हुए उनके सुन्दर उदाहरण जुटाये हैं। इन्हें शास्त्र कवि भी कह सकते हैं।

इस वर्ग में दो प्रकार के कलाकार हुए। एक तो वे जिन्होंने लक्षण-ग्रंथ भी लिखे और लक्ष्य-ग्रंथ भी। इस कोटि में देव, मतिराम, चिन्तामणि, केशव, पद्माकर आदि आते हैं। इनके दोनों प्रकार के काव्यों में

रूढ़िबद्धता लक्षित होती है। दूसरे वे हैं जिन्होंने केवल लक्ष्य-ग्रंथ लिखे। अर्थात् इन्होंने लक्षण ग्रन्थों को आधार बना कर काव्य-रचना की है। इस धारा के कवियों में बिहारी, बेनी, रसनिधि, कृष्णकवि, वृन्द आदि आते हैं।

आ. रीतिमुक्त धारा :

यद्यपि सत्रहवीं शताब्दी के बाद के साहित्य में रीतिबद्ध काव्य लिखने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बलवती होती गयी, तथापि यह कभी भी नहीं समझना चाहिए कि इस काल में रीतिमुक्त काव्य लिखे ही नहीं गये। रीतिकाल में कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने केशव, मतिराम और चिन्तामणि के समान न तो लक्षण ग्रन्थ लिखे और न ही बिहारी की भांति कोई रीतिबद्ध रचना की। ऐसे कवियों की संख्या पचास के लगभग हैं। इन्में कुछ कवि ऐसे हैं जिन्होंने लक्षणबद्ध रचना नहीं की और जो अपने स्वच्छन्द प्रेम की पीर जनता को सुनाता रहे। इनमें घनानंद, आलम, बोधा और ठाकुर आदि आते हैं। दूसरा वर्ग उन कवियों का है जिन्होंने कथा प्रबंधकाव्य लिखे, जैसे लाल कवि का छत्रप्रकाश, ''सूदन का सुजान चरित'' आदि। तीसरे वर्ग में दान लीला, मानलीला आदि पर वर्णनात्मक प्रबंध काव्य लिखनेवाले कवि आते हैं। चौथे वर्ग में रीति संबंधी पद्य और सूक्तियाँ लिखनेवाले आते हैं; वृन्द, गिरधरदास आदि। पाँचवें वर्ग में ब्रह्मज्ञान, वैराग्य और भक्ति पर लिखनेवाले कवि आते हैं। छठे वर्ग में वीररस के फुटकर पद्य लिखनेवाले आते हैं।

रीतिकाल का प्रवर्तक : केशव या चिन्तामणि :

रीति ग्रंथों का प्रवर्तक किसे माना जाए। यह प्रश्न विवादास्पद है। डॉ. श्यामसुन्दरदास ''केशवदास'' को और आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ''चिन्तामणि'' को रीतिकाल का प्रवर्तक मानते हैं। डॉ. श्यामसुन्दरदास का कथन है कि-- ''यद्यपि समय विभाग के अनुसार केशव भक्तिकाल में पड़ते हैं और यद्यपि गोस्वामी तुसलीदास के समकालीन होने तथा रामचन्द्रिका आदि ग्रंथ लिखने के कारण वे कोरे रीतिवादी नहीं कहे जा सकते, परन्तु उनपर पिछले काल के संस्कृत साहित्य का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि अपे काल की हिन्दी काव्य-धारा से पृथक होकर वे चमत्कारवादी कवि हो गये और हिन्दी में रीति ग्रंथों की परंपरा के आचार्य कहलाए।'' डॉ. श्यामसुन्दरदास केशव को रीति का आदि आचार्य मानते हैं न कि प्रवर्तक। आचार्य शुक्ल भी इस बात से सहमत हैं। वे लिखते हैं-- ''इसमें सन्देह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले-पहल आचार्य केशव ने ही किया।''

यहाँ तक दोनों आचार्यों में मतभेद नहीं हैं। मतभेद सिर्फ ''प्रवर्तक'' मानते में है। क्योंकि ''प्रवर्तक'' उसे माना जाता है जिसका आगे चलकर अनुगमन किया जाता है। केशव के परवर्ती आचार्यों ने केशव द्वारा

अपनायी गयी पद्धति को नहीं अपनाया। इसी आधार पर शुक्ल जी केशव को ''प्रवर्तक'' नहीं मानते। इसके विवेचन में उन्होंने यों लिखा है-- ''पर हिन्दी में रीति ग्रंथों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की ''कवि-प्रिया'' के प्रायः पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं। .....साहित्य की मीमांसा क्रमशः बढ़ते-बढ़ते जिस स्थिति पर पहुँच गयी थी, उस स्थिति से सामग्री न लेकर केवल उसके पूर्व की स्थिति से सामग्री ली। उन्होंने हिन्दी पाठकों को काव्यांग-निरूपण की उस पूर्व दशा का परिचय कराया था जो भामह और उद्भट के समय में थी; उस दशा का नहीं, जो आंदवर्धनाचाराय, मम्मट और विश्वनाथ द्वारा विकसित हुई, पर केशवदास के उपरांत तत्काल रीतिग्रंथों की परंपरा चली नहीं।..... ''कविप्रिया'' के पचास वर्ष पीछे उसकी अखंड परंपरा का प्रारंभ हुआ। यह परम्परा ..... परवर्ती आचार्यों के परिष्कृत मार्ग पर चली। काव्य के स्वरूप और अंगों के संबंध में हिन्दी के रीतिकार कवियों ने संस्कृत के इन परवर्ती आचार्यों का मत ग्रहण किया। ..... हिन्दी रीतिग्रंथों की अखंड परंपरा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली, अतः रीतिकाल का आरंभ उन्हीं से मानना चाहिए।''

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ''केशव'' ने संस्कृत आचार्यों के उस वर्ग का अनुसरण किया था जिसकी मान्यताएँ खंडित हो चुकी थीं और ''चिन्तामणि'' ने उस वर्ग का अनुसरण किया था जिसकी काव्य-शास्त्र संबंधी मान्यताएँ अधिक वैज्ञानिक, मौलिक और तर्क-संगत थीं। इसी बर्ग का अनुकरण प्रायः सभी परवर्ती रीतिकालीन कवियों ने किया। अतः हम ''केशवदास'' को रीतिग्रंथों के निर्माण का प्रेरक ''आदि आचार्य'' मान सकते हैं। परन्तु रीति ग्रंथों के वास्तविक ''प्रवर्तक'' ''चिन्तामणि'' माने जाएँगे।

रीतिकाल की विशेषताएँ एवं न्यूनताएँ :

बाबू गुलाबराय के शब्दों में रीतिकाल की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं--

1. साहित्य-निर्माण के साथ-साथ रस, अलंकार आदि काव्यांगों पर विवेचना हुई। रसों में विशेषकर ''श्रृंगार'' के आलंबनों और उद्दीपनों के बड़े ही सरस उदाहरणों का निर्माण हुआ। वे लोग श्रृंगार रस को रसराज मानते थे इसलिए उसको प्राधान्य देना स्वाभाविक ही था।
2. इस काल में श्रृंगार रस के साथ वीर रस की भी अच्छी कविताएँ हुईं।
3. कवित्त एवं सवैयों की प्रधानता रही। बिहारी ने दोहों की भावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया।
4. भाषा में अवधी और व्रज का मिश्रण रहा।

5. इस काल में भाव-पक्ष का प्राधान्य रहा।

बाबू गुलाबराय ने रीतिकाल की चार न्यूनताएँ मानी हैं। वे हैं--

1. काव्यांगों के विवेचन के साथ शब्द-शक्ति का यथोचित विवेचन नहीं हुआ।
2. नाट्य-शास्त्र के विवेचन का भी अभाव रहा, क्योंकि हिन्दी में नाटक के लक्ष्य ग्रंथ नहीं थे।
3. विषयों का संकोच हो गया था। कवि परम्परा का अनुगमन कर रहे थे। इससे व्यक्तिगत प्रतिभा का प्रदर्शन कम हुआ।
4. इतना अवश्य कहा जाएगा कि यद्यपि ये जीवन की अनेक-रूपता को काव्य में न ला सके, तथापि इन्होंने श्रृंगार के संकुचित क्षेत्र में पारिवारिक जीवन को बाँधकर अपने सौन्दर्य-दर्शन की अभिव्यक्ति की चेष्टा की।

रीति-काव्य की प्रमुख विशेषताएँ :

रीति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार हैं --

1. लक्षणों के आधारभूत ग्रंथ संस्कृत अथवा पूर्ववर्ती हिन्दी काव्य-शास्त्र के ग्रंथ हैं।
2. इनमें क्वाय की वशेषताओं को समझने और समझाने का प्रयत्न हुआ है।
3. सैद्धान्तिक रूप से काव्य का विकास नहीं हुआ है।
4. इसमें सर्वकालीन अथवा युग-विशेष की काव्य-समस्याओं का पूर्ण विवेचन और समाधान नहीं मिलता।
5. इस पद्धति पर रचे गये काव्य के लक्षणों की अपेक्षा उदाहरण अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुए हैं।
6. उदाहरणों में अधिकांश बड़े ही सुन्दर और उत्कृष्ट हैं।
7. उनमें भाषा का परिमार्जन और चमत्कार तथा भाव की मर्मस्पर्शी अभिव्यंजना मिलती है। कवित्व की दृष्टि से यह काव्य बड़ा मनोरम और समृद्ध है।

रीतिकाल के प्रमुख कवि :

आचार्य केशवदास : काल-विभाग के अनुसार केशवदास भक्तिकाल के अन्तर्गत आते हैं; परन्तु काव्य-रचना के आधार पर उन्हें रीतिकाल का प्रथम कवि मानना ही अधिक उपयुक्त हैं। उनकी ''रामचन्द्रिका''

में राम का वर्णन होते हुए भी वह एक प्रकार से अलंकारों और छन्दों का बृहद् कोश मानी जाती है। केशव का जन्म संवत् 1912 में सनाढ्य कुल के पं. काशीनाथ मिश्र के यहाँ हुआ था। ये ओरछा के निवासी और राजा इन्द्रजीत के आश्रित कवि थे। इनके सभी पूर्वज संस्कृत के प्रकांड विद्वान हुए थे। कहा जाता है कि इनके घर के नौकर-चाकर और तोता-मैना तक संस्कृत बोलते थे। इनके लिखे हुए सात ग्रंथ प्रसिद्ध हैं-- (1) विज्ञान गीता (2) रतन-बावनी (3) जहाँगीर जस चन्द्रिका (4) वीरसिंह देव चरित्र (5) रसिक प्रिया (6) कवि प्रिया (7) रामचन्द्रिका। इनमें से ''रसिक-प्रिया'' में रस-निरूपण, विशेषकर श्रृंगार-रस और नायिका भेद हैं। ''रामचन्द्रिका'' में विविध छंदों और अलंकारों में रामचरित वर्णित है। ''कवि-प्रिया'' में काव्य के वर्ण्य विषय और अलंकारों का वर्णन है। यह एक प्रकार से काव्य-शिक्षा का ग्रंथ है। ''विज्ञान गीता'' आध्यात्मिक ग्रंथ है।

केशवदास हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनके दो रूप हैं-- कवि और आचार्य। आचार्य के रूप में उन्होंने काव्यांगों का विवेचन किया है और कवि रूप में ''रामचन्द्रिका'' आदि ग्रंथ लिखे हैं। उनकी दृष्टि में अलंकारहीन कविता का कोई मूल्य नहीं है, जिसका उल्लेख उनका यह दोहा करता है--

''जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरंस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजति कविता, बनिता, मित्त।।

अ. चिन्तामणि त्रिपाठी :

चिन्तामणि तिकवापुर (कानपुर) के निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। भूषण, मतिराम और जटाशंकर इनके भाई थे। चिन्तामणि का जन्मकाल संवत् 1666 के लगभग माना जाता है। इनके लिखे पाँच ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। वे हैं-- ''काव्य-विवेक'', ''कविकुल कल्पतरु'', ''काव्य प्रकाश'', ''रसमंजरी'', ''पिंगल'' और ''रामायण''। इनमें ''कविकुल कल्पतरु'' और ''पिंगल'' दो ही ग्रंथ उपलब्ध हैं।

आचार्य कर्म के साथ-साथ इनका कवि-कर्म श्रृंगार रस का संयक परिपाक बन पड़ा है। चिन्तामणि का छन्द संबंधी ग्रन्थ हैं पिंगल। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चिन्तामणि के पिंगल ग्रंथ का नाम ''छन्द विचार'' बताया है। इसमें विविध छंदों के लक्षण, उदाहरण सरल व्रजभाषा में प्रस्तुत करते हुए इन्होंने कुछ हिन्दी के नये छंदों का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार आचार्यत्व और कवि दोनों दृष्टियों से चिन्तामणि अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

आ. मतिराम :

रस सिद्ध कवि मतिराम, चिन्तामणि और भूषण के भाई थे। मतिराम अनेक राजाओं के आश्रय में रहे थे। इनमें स्वच्छंद - कविता की मनोहारिणी प्रतिभा थी और ये सरस, ललित एवं सुकुमार रचना के धनी थे।

मतिराम के प्रसिद्ध रचनाएँ हैं-- ''ललित ललाम'', ''रसराज'', ''फूलमंजरी'', ''छन्दसार-पिंगल'', ''मतिराम सतसई'', ''साहित्यसार'', ''लक्षण-श्रृंगार'' और ''अलंकार पंचाशिका''। ''रसराज'' और ''ललित ललाम'' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ माने जाते हैं। शुक्ल जी इन ग्रंथों के संबंध में कहते हैं--''रसराज और ललित ललाम मतिराम के ये दो ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं, क्योंकि रस और अलंकार की शिक्षा में इनका उपयोग बराबर चलता आया है।'' इनके रसराज में श्रृंगार रस का वर्णन है, परन्तु प्रधानतःऋ इसमें नायिका-भेद का विस्तार है। नायिका - भेद के उदाहरण अत्यंत सरस हैं जोकि काव्य का सुन्दर नमूना है--

''कुन्दन को रंग फीकी लगै, झलके अति अंगनि चारु गोराई।

आँखिन में अलसानि, चितौन में मंजु विलासन की सरसाई।।''

मतिराम की कविता सुकुमार, सुन्दर और कोमल कल्पना के गुणों से संपन्न है। उसमें कहीं भी भावों की कृत्रिमता नहीं है। वह शब्दाडंबर से सर्वथा मुक्त है। भाव-व्यंजना अत्यंत स्वच्छ और स्वाभाविक भाषा में हुई है।

इ. कवि भूषण :

कवि भूषण हिन्दी के सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ वीर रस के कवियों में एक हैं। ''भूषण'' की उपाधि इन्हें चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्रदेव से प्राप्त हुई थी। इनका काल सं. 1670-1772 तक माना जाता है। कवि ''भूषण'' का नाम ''शिवराज'' था। इनकी छे रचनाएँ हैं। शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास तथा भूषण हजारा--इनमें प्रथम तीन ग्रंथ हीप्राप्त हैं। शिवा बावनी और छत्रसाल दशक वीर रस संबंधी छोटे-छोटे ग्रंथ हैं जिनमें शिवाजी और छत्रसाल के वीर कृत्यों का गौरवमय गान है।

निस्सन्देह भूषण की अभिव्यंजना - पद्धति ओजपूर्ण है पर उनकी भाषा अधिकतर अव्यवस्थित है। उनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं--

1. कंप कदली में, वारि वृन्द बदली में,
   शिवराज अदली के राज में यों राजनिति है।

2. आयो-आयो सुनत ही, सिव सरजा तुव गाँव।
   वैरि नारि दृग जलन सौ, बूढि जात अरि गाँव।।

ई. आचार्य देव :

देव का पूरा नाम देवदत्त था। ''देव'' इनका उपनाम है। देव इटावा (उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। इनका जन्म सं 1730-31 में हुआ है और मृत्यु सं. 1824-25 में मानी जाती है। इनको जीवन-निर्वाह जीविका निर्वाह के लिए अनेक आश्रयदाताओं के पास जाना पड़ा था। इनके आश्रयदाताओं के नाम इस प्रकार हैं-- आजमशाह, भवानी दत्त वैश्य, कुशल सिंह, उदोतसिंह और राजा भोगीलाल। इनके ग्रंथों की संख्या बहत्तर मानी जाती है। परन्तु आचार्य शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में पच्चीस ग्रंथों का मात्र उल्लेख किया है, जो उपलब्ध थे। वर्ण्य-विषष के आधार पर इनके ग्रंथों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। वे हैं-- काव्य शास्त्रीय ग्रंथ तथा अन्य ग्रंथ। ''प्रेम चंद्रिका'', ''रागरत्नाकर'', ''देव शतक'' के चारों भाग आदि प्रमुख ग्रंथ हैं। देव चरित्र और माया प्रपंच को छोड़कर शेष ग्रंथ काव्य शास्त्र से संबद्ध हैं। देव मुख्यतः श्रृंगार रस के कवि थे। इनके काव्य में जो वैराग्य-भावना की अभिव्यक्ति हुई है, वह इनके श्रृंगारी जीवन की प्रतिक्रिया के रूप में समझनी चाहिए। देव की अभिव्यंजना शैली भी प्रशस्य है। उनकी शब्द-चयन विषयानुसार हुआ है। भावावेग की दशा में उन्होंने भावात्मक शैली को अपनाया है। तुकान्त और अनुप्रास के मोह में पड़कर इन्होंने कहीं-कहीं शब्दों और वाक्यों तक को तोड़ मरोड दिया है। इसके संबंध में शुक्ल जी लिखते हैं-- ''कवित्व शक्ति और मौलिकता देव में खूब थी। पर उनके सम्यक स्फुरण में उनकी रुचि-विशेष प्रायः बाधक हुई है। कभी-कभी कुछ बड़े और पेचीदे मजमून का हौसला बांधते थे, पर अनुप्राय के आडंबर की रुचि बीच ही में उसका अंग-भंग करके सारे पद्य को कीचड़ में फंस छकड़ा बना देती थी। भाषा में कहीं-कहीं स्निग्ध प्रवाह न आने का एक कारण यह भी था।''

=. रीतिकाल के लोकप्रिय कवि-- ''बिहारी'' :

''बिहारी'' रीतिबद्ध काव्य का कवि माने जाते हैं। वे हिन्दी के लोकप्रिय कवि थे। इनके पिताजी का नाम केशवराय था। इनके पिताजी ओरछा छोड़कर बृन्दावन चले गये। वहाँ बिहारी ने साहित्य के साथ संगीत का भी अध्ययन किया। वृन्दावन में इनकी भेंट शाहजहाँ से हुई। वे इन्हें आगरा ले गये। वहाँ पर इन्होंने फारसी

शायरी का अध्ययन किया। शाहजहाँ ने पुत्र-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में अनेक राजाओं को आमंत्रित किया। वहाँ बिहारी ने अपनी काव्य-निपुणता का खूब परिचय दिया। बिहारी पर मुग्ध होकर राजाओं ने बिहारी की वार्षिक वृत्ति बाँध दी। इसी सिलसिले में बिहारी एक दफ़ा मिर्जा राजा जयसिंह के यहाँ पहुँचे। यह अपनी मंझली रानी के प्रेम में बुरी तरह आसक्त था। इन्होंने उस समय अपने काव्य-कौशल से काम लिया और निम्न लिखित दोहा लिखकर भेजा--

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अलि कली ही सो बंध्यो, आगे कौन हवाल।।''

इस दोहे ने राजा को प्रबोध दिया। उन्होंने रीझकर बिहारी को अपना राजदरबारी कवि नियुक्त किया और एक-एक दोहे पर एक-एक अशरफी देने लगे। बिहारी एक सजग कलाकार थे। उन्होंने जीवन में 713 दोहों का एक ही ग्रंथ लिखा और वह है ''बिहारी सतसई''। पिछले एक हजार वर्ष की हिन्दी काव्य-निधि में यदि हम सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों को चुनना चाहें तो उनमें बिहारी सतसई का नाम प्रथम आयेगा। इनके दोहों की प्रशंसा में यह दोहा प्रमाण है--

''सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगै, पर घाव करै गंभीर।।

बिहारी एक श्रृंगारी कवि हैं। श्रृंगार के संयोग-पक्ष में वे जितने रमे हैं उतने वियोग-पक्ष में नहीं। वे अनुराग के कवि हैं और उनकी वृत्ति मिलन-पक्ष में खूब रमी है। संयोग-पक्ष की कोई ऐसी स्थिति नहीं, जो बिहारी की दृष्टि से बची हो।

उदा-- ''मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँह चूम्यो ढिंग जाइ।
हँस्यौ, खिसानी, गल गह्यौ रही गरै लपटाई।
दीप उजरै हू पति हिं हरत वसनु रति काज।
रही लिपटि छवि की छटनु नौको छुटी लाज।

''बिहारी सतसई'' में भक्ति की चर्चा होते हुए भी बिहारी को भक्त नहीं कहा जा सकता। इनकी, किसी वाद-विशेष पर आस्था नहीं थी। उन्होंने समान भाव से राम-कृष्ण और नरसिंह का स्मरण किया है। कहीं निर्गुण की महिमा मुक्त कंठ से गायी है। इनकी भक्ति और नीति का एक-एक उदाहरण लीजिए--

पतवारी माला पकरि औरु न कछु उपाउ।
तरि संसार पयोधि को, हरि नाबै करि नाउ।।
दुसहु दुराज प्रजानु को क्यों न बढ़े दुख द्वन्द्व।
अधिक अंधेरो जग करत मिलि मावस रविचन्द।।

रीतिमुक्त-धारा के कतिपय प्रमुख कवि :

घनानंद : रस की साक्षात मूर्ति कवि घनानंद का जन्म सं. 1764 के लगभग हुआ था। इनका निधन संवत् 1796 में नादिरशाही में हुआ। ये जाति के कायस्थ थे और दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुंशी थे।

सुजान इनकी प्रेयसी का नाम है और अधिकांश रचनाओं में इसका नाम उल्लेखित है। इनके ''सुजान सागर'', ''विरहलीला'', ''कोकसार'', ''रस-केलिवल्ली'' और ''कृपाकांड'' नामक ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त इनके फुटकर कवित्त सवैयों के संग्रह डेढ सौ से लेकर सवा चार सौ कवित्तों तक मिलते हैं।

घनानंद मुख्यतः श्रृंगार रस के कवि हैं। वियोग श्रृंगार में इनकी वृत्ति अधिक रमी है। आचार्य शुक्ल ने इनके संबंध में जो कुछ लिखा है, वह इनकी काबिलियत का प्रमाण है-- ''ये वियोग-श्रृंगार-के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम की पीर लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखनेवाला व्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।'' ब्रजभाषा का चलतापन और सफाई जो घनानंद में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी साहित्यिक व्रजभाषा में सहज माधुर्य विद्यमान है। घनानंद प्रेम मार्ग के एक सफल यात्री है। इनकी कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-- ''अतिसूधो सनेह को मारग है, जहँ नैकुस यानम बाँक नहीं।

तहँ साँचे चले तजि आपनयौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं।
धन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ, इन एक ते दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढे हो लला, मन लेटु पै देहु छटाँक नहीं।''

इससे यह पता चलता है कि भक्तिकाल में ब्रजभाषा काव्य में जो स्थान सूरदास का है, वही स्थान रीतिकाल के काव्य में धनानंद का रहा है।

उपर्युक्त कवियों के अलावा रीतिकाल के अन्य कई प्रसिद्ध कवि थे, जिनका विस्तृत उल्लेख संभव नहीं है। इसलिए उनके नाम मात्र यहाँ देते हैं। प्रेमोन्मत्त कवि ''आलम'', मर्मस्पर्शी प्रेम के पद्यों की रचना

करनेवाले ''बोधा'', रीतिमुक्त धारा के नीति-काव्य का सृजन करनेवाले कवि ''वृन्द'', ''गिरधर कविराय'', प्रबंध पटुता रखनेवाले कवि ''लाल'', वीर रस के उत्कृष्ट कवि ''सूदन'' रीतिबद्ध कवि ''पद्माकर'' आदि।

रीतिकालीन साहित्य : उपलब्धियाँ और निष्कर्ष :

हिन्दी साहत्य में रीतिकाल का साहित्य विषय वैविध्य की विभिन्नता, रस रीतिपरक ग्रंथों की बहुलता, विशुद्ध कविता, उत्कृष्ट अभिव्यंजन शैली, हिन्दी गद्य के आविर्भाव एवं भाषा के माध्यम से भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थानवाद आदि अनेक दृष्टियों से मूल्यवान बन पड़ा है।

रीति साहित्य के अध्येता का सबसे पहले ध्यान रीति कवि के आचार्य कर्म की शक्तियों और परिसीमाओं पर जाता है। निस्संदेह रीति कवि के आचार्यत्व में गुणों की अपेक्षा दोष का बाहुल्य है। किन्तु इसके सही कारणों का पता लगाये बिना उसके आचार्य कर्म को कच्चा, अधूरा तथा अपरिपक्व कहना उसके प्रति अन्याय होगा।

विषय विविधता की दृष्टि से रीतिकाल का साहित्य संतोषजनक है। रीतिकालीन श्रृंगारी कविता में रस की वह धारा है जो तन-मन को आप्लावित करती है तथा जिसका प्रवर्तन कालिदास के काल से हो गया था। प्रस्तुत काल में श्रृंगार की धारा के समान ही प्रमुख वीर रसात्मक काव्यों एवं भक्ति तथा नीतिपरक काव्यों की अक्षुण्ण पर्परा बनी रही। इसके अतिरिक्त इस काल में भारतीय दर्शन अध्यात्म, पुराण तथा दूसरे ज्ञान-विज्ञानात्मक विषयों के संस्कृत के ग्रंथों को हिन्दी के माध्यम से विश्लेषण, विवेचन एवं अर्थ-ग्रहण की दृष्टि से उलझाया गया।

रीतिकाल में प्रणीत रीति मुक्त काव्य अपनी कोटि का एक अनुपम साहित्य है। रीतिमुक्त काव्यों की संख्या पचास से भी अधिक है।

रीतिकाल के साहित्य की एक अन्यतम उपलब्धि है-- खडीबोली गद्य का आविर्भाव। आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रारंभिक कर्णधार लेखक-चतुष्टय का उदय इसी काल में हुआ। इस युग में आधुनिक हिन्दी गद्य के विविध रूपों के बीजवपन एवं प्रस्फुटन की प्रक्रिया आरंभ हो गयी थी।

कला एवं शैलीगत क्षेत्रों में रीति की उपलब्धि अपूर्व है। इस विषय में रीतिकाल के एकमात्र अधिकारी विविध प्रतिभामुखी मनीषी एवं समर्थ आलोचक डॉ. नगेन्द्र का कथन स्मरणीय है-- ''ब्रजभाषा के काव्य रूप का पूर्ण विकास इन्होंने (रीति कवियों ने) किया। वह क्रांति, माधुर्य और मसृणता आदि के गुणों से जगमग हो

उठा-शब्दों को जैसे खराद पर उदारकर कोमल और चिक्कण रूप प्रदान किया गया। सवैया और कवत्त की रेशमी जमीन पर रंग-बिरंगे शब्द माणिक-मोती की तरह ढुलकने लगे।''

''भावपक्ष'' और ''कला पक्ष'' दोनों दृष्टियों से रीति काव्य का हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अविस्मरणीय योगदान है। भले ही रीति काव्य में चित्रित जीवन आधुनिक समस्या जीवन के नाना संदर्भों की तुलना में सीमित है, किन्तु उसका जो आकलन रीति कवि ने किया है, वह अत्यंत विश्वसनीय और कलात्मक है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों से हम इसे रीतिकाल का निष्कर्ष-सा ले सकते हैं-- ''इसमें सन्देह नहीं कि रीति काव्य में सूर और मीरा जैसी आत्मा की पुकार नहीं मिलेगी। न जायसी, तुलसी अथवा आधुनिक युग के विशिष्ट महाकाव्यों के समान व्यापक जीवन समीक्षा और छायावादी कवियों का सूक्ष्म सौन्दर्यबोध ही यहाँ उपलब्ध होगा। पर्तु मुक्तक परंपरा की गोष्ठी-भजन कविता का जैसा उत्कर्ष रीति-काव्य में हुआ, वैसा न उसके पूर्ववर्ती काव्य में और न परवर्ती काव्य में ही संभव हो सका। ..... इसकी सर्जनात्मक प्रतिभा का उत्कर्ष बृन्द, देव, बिहारी, मतिराम के काव्य तक पहुँच पाया--तुलसी और सूर के कीर्तिमान अप्राप्त ही रहे, परन्तु शुद्ध कविता अथवा काव्य कला के प्रतिमानों से आंकने पर इसका योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है।''

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में रतिकाल के रीति काव्य का अपा विशिष्ट समथान है। एकान्त वैशिष्ट्य की दृष्टि से भारतीय वाङ्मय में ही नहीं, सेपूर्ण विश्व के वाङ्मय में आलोचना और सर्जना के संयोग से निर्मित यह काव्य-विधा का अपना उदाहरण आप ही है। अन्य किसी भी भाषा में इस प्रकार का काव्य इतने प्रचुर परिमाण में नहीं रचा गया।

Unit 4

आधुनिक काल

प्रस्तावना :--

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल प्रायः सन् 1850 से माना जाता है। हिन्दी साहित्याकाश में भारतेन्दु के उदय से आधुनिकता के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। प्रथम भारतीय स्वाधीनता-संग्राम जिसे अंग्रेज़ इतिहासकारों ने ''सिपाही-विद्रोह'' के नाम से मुद्रांकित किया, सन् 1857 में आरम्भ हुआ था। ईस्ट इन्डिया कंपनी के तथा उस समय भारत में आये अंग्रेज़ों के सम्पर्क में भारत के अभिजात्य वर्ग के लोगों के हिलने मिलने से उन लोगों के विचारों, तथा रहन-सहन में नये-नये परिवर्तन होने लगे। उनको प्रतिबिम्बित करनेवाले साहित्य में इस प्रकार आधुनिकता-बोध के लक्षण दिखाई देने लगे।

सन् 1857 के अनन्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास अनेक अंशों में अपने प्राचीन इतिहास से भिन्न है। हिन्दी में आधुनिकता-बोध का सूत्रपात लगभग इसी समय से होता है।

आधुनिक काल की परिस्थितियाँ :-

सन् 1857 के स्वाधीनता-संग्राम के उपरान्त, जैसा कि पूर्व में अभिव्यक्त हो चुका है, हिन्दी गद्य साहित्य ने विशेष उन्नति की। विषयों की अनेकरूपता के साथ-साथ वह अपने पैरों पर खड़े होने योग्य भी बना। काव्य के क्षेत्र में भी भक्ति, श्रृंगार और रीति की धाराएँ अपने प्राचीन वैभव का क्षीण रूप लिये हुए अब भी प्रभावित हो रही थीं। किन्तु इनके साथ ही कविता, पाश्चात्य शिक्षा और नवीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शक्तियों के फलस्वरूप नये-नये विषयों की ओर झुक रही थी।

राजनैतिक परिस्थिति:

देश के साहित्य में आधुनिकता का आरंभ 1857 ई. से यद्यपि माना जाता है फिर भी 1757 के प्लासी युद्ध में जब बंगाल का सिराजुद्दैला अंग्रेज़ों से हराया गया था तथा ईस्ट इण्डिया कंपनी का शासन ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हो गया तभी से ब्रिटिश सरकार की भेदनीति के कारण मुगल सम्राट शाहआलम, तत्पश्चात् मराठे और सिक्खों का शासन भी नष्ट प्राय हुआ तब भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बना और अंग्रेजों का राज्य भारत में स्थिर हो गया। ब्रिटिश राज्य की नीति से असन्तुष्ट होकर देशी राजाओं ने सम्मिलित. रूप से 1857 ही. में व्यापक रूप से विद्रोह किया जिसमें वे अत्यन्त असफल हुए, परन्तु इस नये सन्दर्भ में भारतीय लोग नया सोचने और करने के लिए बाध्य हुए। भारतेन्दु के आगमन से गद्य के माध्यम से साहित्य जनता के विचारों की अभिव्यक्ति का साधन बना। ख़ड़िबोली गद्य-साहित्य नई चेतना के फलस्वरूप सक्षम बना जबकि ब्रजभाषा-काव्य के माध्यम से पुरानी संवेदनाएँ ही अभिव्यक्त हो रही थीं।

आर्थिक परिस्थिति:

ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत के कच्चे मालों को अपने यहाँ भेजकर उनसे बने तैयार माल को भारत में अधिक दामों में बेचना आरम्भ किया। इसके फलस्वरूप कुटीर उद्योग नष्टप्राय हुए। इसके पूर्व भारतीय जनता के ''चाहे राम राज्य करे चाहे रावण हमारा बनता बिगड़ता क्या'' - इस नीति को अपनाने से भारतीय गाँव - नगरों से अलग अप्रभावित रहे। परन्तु सरकार की जमीन्दारी प्रथा को अपनाने के कारण ग्रमीण किसान एवं मज़दूर जागीरदार तथा जमीन्दारों से पिसते थे तथा जागीरदार और जमीन्दार अंग्रेज़ सरकार के अधीन रहकर उनके सुख-साधन में सहायक रहे। सरकार के झूठे खिताबों से राव साहेब, रायबहादूर, ''सर'' - आदि से सन्तुष्ट रहते थे। इस प्रकार अंग्रेज की सामन्तीय व्यवस्था से आगे बढ़कर पूंजीवादी व्यवस्था व्यापक हो गयी। अंग्रेज़ लोगों ने जनता की मालगुजारी सामय-समय पर बढ़ा दी, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय किसान एवं मज़दूर महाजनों के

चंगुल में बुरी तरह से फँस जाते थे। परिणामतः भारतीय गाँवों में अकाल के बोझ महामारी आदि की भयंकरता का ताण्डव-नृत्य हो रहा था।

अंग्रेज़ सरकार के लोग भी भारतीय जनता के बीच रहनेवाली जातीय भेदभाव का लाभ उठाकर समाज में उच्च वर्ग, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की खाई को बढ़ावा देते थे।

दूसरी ओर भारत में रेल, बस, स्टीमशिप आदि ने लोगों में राष्ट्रीयता और वैचारिक एकता की भावना भरने में सहायता पहूँचायी। मुद्रण यंत्रों ने पूरे देश में वैचारिक एकता उत्यन्न करने में और सहायता की। सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने सती-प्रथा को दूर करने में सफलता पायी। उन्होंने बंगाल में ब्रह्म समाज की, तथा पूने में केशचन्द्रसेन ने प्रार्थना समाज की, महादेव गोविन्द रानडे ने तदीय समाज की, गोपाल कृष्ण गोखले ने सर्वेंट्स आफ़ इण्डिया सोसाइटी की, विवेकानन्द ने रामकृण्ण मिशन की, तथा पंजाब में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की और मद्रास में ओल्कार्ट ने थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना करके पूरे भारत में नये जागरण केलिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया।

सांस्कतिक परिस्थिति :-

सांस्कृतिक परिस्थिति में भी आधुनिकता का उल्लेख हुआ है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा तकनिकी विज्ञान के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का नया, गैर-रोमान्टिक और अमिथकीय साक्षात्कार ही यह नयी आधुनिकता है। आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता से यह सम्बद्ध है. इसमें नीत्से का अनीश्वरवाद, ऐनस्टीन का सापेक्षतावाद, क्वांटम-सिद्धान्त, सार्त्र के अस्तिववाद आदि के प्रचार से व्यक्ति की व्यग्रता, दुख, निराशा, अकेलापन, मृत्यु-बोध, स्वतंत्रता, त्रास आदि आधारभूत प्रश्न उठ खडे हुए हैं।

कालविभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने आधुनिक काल को गद्यकाल माना है जो सन् 1850 से 1927 तक व्याप्त है। डॉ. नगेन्द्र 'आधुनिक' शब्द को दो अर्थों में मानते हैं - मध्यकाल से भिन्नता और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण। उनका अभिप्राय मध्यकाल में - भक्तिकाल में एक भक्ति के लीक में काव्य चल रहे थे तो रीतिकाल में वही कला और साहित्य अलंकृति और शैली में एकरूप हो गयी थी। वह ''घोर श्रृंगारिकता के बंधे घाटों में बह रहा था। ... आधुनिक काल में बंधे हुए घाट टूट गये और जीवन की धारा विविध स्त्रोतों में फूट निकली।'' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल को दो खंडों में विभाजित किया है - गद्य खण्ड और काव्य खण्ड/गद्य खण्ड को फिर ब्रजभाषा - गद्य और खडी बोली-गद्य के रूप में फिर विभक्त किया और आगे गद्यकाल को प्रथम उत्थान (1868-1893), द्वितीय उत्थान (1893-1918) और तृतीय उत्थान (1918 से) के रूप में बाँटा। आधुनिक काल की काव्यधारा को पुरानी धारा (1893 से), नई धारा को, प्रथम उत्थान (1868 से 1893), द्वितीय उत्थान (1893 से 1918 तक) और तृतीय उत्थान (1918 से पुनश्च तृतीय उत्थान को (1. व्रज भाषा काव्य - परम्परा, 2. द्विवेदी काल में प्रवर्तित खडीबोली की काव्य धारा और, 3. छायावाद युग के रूप में विभक्त किया। परवर्ती इतिहासकारों ने उपर्युक्त विभाजन का ही बहुधा अनुसरण किया है।

यह विभाजन निम्न प्रकार है --

आधुनिक काल

गद्य खण्ड		काव्य खण्ड	
ब्रज भाषा	खडी बोली	पुरानी धारा	नई धारा
खंड	खंड	सन् 1893 से	1868 से

1. प्रथम उत्थान काल (सन् 1868 - 1893)

2. द्वितीय उत्थान काल (1893 - 1918)

3. तृतीय उत्थान काल (1918 से ....)

1. प्रथम उत्थान (1868 से 1893)

2. द्वितीय उत्थान (1893 से 1918)

3. तृतीय उत्थान (1918 से)

ब्रजभाषा काव्य | खडीबोली काव्य

छायावाद युग

परन्तु डॉ. नगेन्द्र ने इस विभाजन को एकसूत्रता के अभाव में विसंगतिपूर्ण मानकर अपनी ओर से आधुनिक काल के उपविभाजन का प्रारूप निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया है --

1. पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु काल) सन् 1857 से 1900 ई.

2. जागरण - सुधार काल (द्विवेदी काल) 1900 से 1918 ई.

3. छायावाद -काल 1918 से 1938 ई.

4. छायावादोत्तर काल

(क) प्रगांति - प्रयोग काल 1938 से 1953 ई.

(ख) नवलेखन -काल 1953 से .....

इस प्राकर का काल-परिवर्तन-विभाजन यों ही नहीं होता और निर्दिष्ट संवत्सर से ही होने लगाता है, यह भी बताया नहीं जा सकता। इस प्रकार के परिवर्तन के कारण समाज के मूलभूत ढांचे को परिवर्तित करनेवाले आर्थिक और सांस्कृतिक कारण होते हैं। इनमें प्रथम मुख्य कारण है और द्वितीय गौण कारण होता है। इन दोनों को लाने का दायित्व जाने-अनजाने अंग्रेज़ों पर ही रहा। अतः

आधुनिक काल की परिवर्तमान प्रक्रिया को समझने केलिए इनका विवेचन आवश्यक है।

आधुनिक काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

यह वह युग है जिसमें जन-चेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्रेरित थी। राष्टीय भावना का उदय भी इस काल की एक विशेषता थी, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसाफिकल सोसाइटी के सिद्धान्तों का प्रभाव भी जन-जीवन पर पड़ रहा था। पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली से शैक्षिक क्षेत्र में वैयक्तिक स्वतंत्रता की भावना, अंग्रेज सरकार की नीति से आर्थिक, औद्योगिक, धार्मिक क्षेत्रों में पुनर्जागरण की प्रक्रिया का प्रारंभ होने लगा था। इससे राष्ट्रीय-भावना के विकास के लिए उचित वातावरण उत्पन्न हुआ। इन सब का प्रभाव कविगण के विचारों पर गहरा पड़ा।

राष्टीय भावना:

भारतेन्दु युगीन काव्य भक्तिकालीन अथवा रीतिकालीन काव्यों के जैसे बंधे हुए लीक में न चलकर विस्तृत विचारों का फलक लिये बढ़ता जा रहा था। इस युग के कवियों ने इस प्रकार जन-मानस में राष्ट्रीय भावना का बीजवपन का महत्वपूर्ण कार्य किया। परवर्ती कवियों में देश-भक्ति की जो भावना लक्षित होती है वह भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि कवियों की कविताओं से प्रेरित हो कर ही भारतेन्दु की ''विजयिनी विजय वैजयन्ती'', प्रेमघन की ''आनन्द अरुणोदय'', प्रताप नारायण मिश्र की ''महापर्व'' और ''नया वसन्त'' तथा राधाकृष्णदास की ''भारत बारहमासा'' और ''विनय'' शीर्षक कविताएँ देश-भक्ति कि प्रेरणा से संयुक्त हैं। अंग्रेजों की शोषण - नीति की ओर नवयुवकों को आकृष्ट कर, पुनर्जागरण का मन्त्र, अंग्रेज़ों के प्रति तीखी व्यंग्यात्मक शैली में, प्रदान किया —

भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसि हँसिके तन मन धन मूसै।

जाहिर बातन में अति तेज़, क्यों सखि सज्जन! नहिं अंग्रेज़।।

''प्रेमघन'' ने ''हार्दिक हर्षादर्श'' कविता में अंग्रेज़ों की स्वार्थपूर्ण शासन-प्रक्रिया केलिए भी ईस्ट इन्डिया कंपनी को दोषी ठहराया।

सामाजिक चेतना:

भारतेन्दु युग की यह विशेषता रही कि नारी - शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, अस्पृश्यता आदि सामाजिक जीवन और समस्याओं के निरूपण की ओर कवियों ने जनता का ध्यान आकर्षित किया। भारतेन्दु ने वर्णाश्रम-धर्म की संकीर्णता का यों विरोध किया ''भारत-दुर्दशा'' नाटक में - ''बहुत हमने फैलाये धर्म, बढाया छुआछूत का कर्म।'' प्रतापनारायण मिश्र ने ''मन की लहर'' में बाल विधवाओं की करुण-दशा पर अपनी दृष्टि दौड़ायी। इस प्रकार भारतेन्दु प्रभृति कवियों ने समाज की पीड़ा की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर उन्हें दूर करने का संदेश दिया।

भक्ति-भावना:

भारतेन्दु युग में धार्मिक और भक्ति-भावना को गौण स्थान दिया गया। फिर भी इस काल के भक्ति-काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -- निर्गुण भक्ति, वैष्णव भक्ति औरस्वदेशानुराग समन्वित ईश्वर-भक्ति। राम-काव्य की अपेक्षा कुष्ण भक्ति-काव्य की रचना इस युग में अधिक परिमाण में हुई।

भारतेन्दु और उनके समकालीन अन्य कवियों ने काव्य की आत्मा रस को मानकर अपनी कविताओं में राम और कृष्ण भक्ति काव्यों में माधुर्यपरक श्रृंगार-चित्रण किया। भारतेव्दु ने ''प्रेम-सरोवर'', ''प्रेम-माधुरी'', ''प्रेम-तरंग'', ''प्रेम-फुलवारी'' आदि में भक्ति-श्रृंगार और विशुद्ध श्रृंगार दोनों का समावेश किया है।

प्रकृति-चित्रण:

प्रकृतिक सौन्दर्य का स्वच्छन्द वर्णन भारतेन्दु युगीन कविता की अंगभूत विशेषता है। परन्तु अधिकतर कविताओं में परम्परा - निर्वाह ही किया गया है।

इनके अलौकिक रीति-निरूपण, समस्यापूर्ति की कविताएँ और काव्यानुवाद भी इस युग की कविताओं में प्राप्त हैं।

निष्कर्ष:

भारतेन्दु युगीन कविता का पर्याप्त भाग पद-शैली में रचित है। तथापि परम्परित ढंग की छन्द - योजना भी सभी कवियों की रचनाओं में प्राप्त है। इस प्रकार इसमें सन्देह नहीं कि रीतिकालीन काव्य की अपेक्षा इस युग के कवि विविधतापूर्ण छन्द-विधान के प्रति आधिक सतर्क थे।

हिन्दी कहानी साहित्य का उद्‌भव, विकास:

आधुनिक युग में गद्य की कई शाखाएँ निकली। यहाँ कहानी के उद्‌भव विकास देखते हैं। रानी केतकी की कहानी, सिंहासन-बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, माधवानल कामकंदला, शकुंतला, प्रेमसागर, नासिकेतोपाख्यान, गोरा बादल की कथा, राजा भोज का सपना, आदि मौलिक एवं अनुदित कथा-ग्रन्थों में आधुनिक कहानी की कथात्मकता के दर्शन हो जाते हैं। भारतेन्दु-युग में जादू, कुतूहल एवं वासनामूलक प्रेम-कहानियाँ ही तत्कालीन जनता का मनोरंजन करती रहीं। इनके अतिरिक्त संस्कृत की धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं के कुछेक अनुवाद भी मिलते हैं।

हिन्दी में सर्वप्रथम कहानी के विकास का श्रेय 'सरस्वती' मासिक पात्रिका को है। इसमें छपी किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' नामक कहानी को कुछ विद्वान, हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। कुछ विद्वान् 'बंग-महिला' की 'दुलाई वाली' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं, किन्तु इधर नवीन खोजों के फलस्वरूप माधव राव सप्रे की 'टोकरी भर मिट्‌टी' हिन्दी की प्रथम कहानी मानी गयी। प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियाँ पर बँगला-प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु आगे वे इस

प्रभाव से पूर्णतया मुक्त हो गये हैं। इनकी आधिकांश कहानियों में भावुकता, आदर्श और भारतीय दर्शन का समुचित रामन्वय है।

प्रेमचन्द जनता के लेखक थे। उनहोंने हिन्दी कहानी को एक नई दिशा दी। जहाँ प्रसाद ने अतीत की विशिष्ट घटनाओं को आधुनिक संदर्भ में उभारकर जनमानस में राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना भरने का प्रयास किया, वहीं प्रेमचन्द ने भारत के दलित-शौषित किसानों, मजदूरों एवं मध्यम वर्ग की अनेक समस्याओं को अपनी कहानी का आधार चुना। उनकी कहानियों के विषय दैनिक जीवन में घटने वाली आसपास की घटनाएँ थीं जिनका संबन्ध प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग से था। उन्होंने सामयिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं एवं आन्दोलनों को अपने साहित्य का विषय बनाया।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विश्वम्भर नाथ कौशिक, पृथ्वीनाथ भट्ट, सुदर्शन, आदि प्रेमचन्द के समसामयिक कलाकार हैं। गुलेरी जी ने केवल तीन कहानियाँ लिखीं---- 'सुखमय जोवन', 'उसने कहा था', और 'बुद्धू का काँटा'। 'उसने कहा था' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जाती है और मात्र इसी कहानी के आधार पर 'गुलेरी' जी को हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार के रूप में अमर किया।

सामाजिक कुरीतियों और आर्थिक विषमताओं का भंडाफोड़ करने वाले तथा पूँजीवादी व्यवस्था का खुलकर विद्रोह करने वाले लेखकों में बेचनशर्मा 'उग्र' तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। विषय की दृष्टि से यदि कहानियों का वर्गीकरण किया जाय तो अब तक उनके अनेक रूप साहित्य में उपलब्ध हैं ---- आदर्शवादी, यथार्थवादी, ऐतिहासिक, रोमानी, कुतूहल-प्रधान, हास्य-प्रधान तथा प्रतीकात्मक, आदि। जासूसी, अय्यारी एवं तिलास्मी कहानियों के लेखकों में गोपालराम गहमरी, दुर्गाप्रसाद कत्री, जी.पी. श्रीवास्तव, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हास्य रस के प्रमुख कहानीकार जी.पी. श्रीवास्तव हैं। प्रसादा ने प्रतीकात्मक

कहानियाँ लिखी। 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री तथा ऋषभ वरण जैन जहाँ यथार्यवादी लेखक हैं, वहीं प्रेमचन्द, कौशिक एवं सुदर्शन व्यावहारिक आदर्शवादी।

कहानी-क्षेत्र में जैनेन्द्र के आगमन से हिन्दी साहित्य में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ। ''उन्होंने हिन्दी कहानियों को एक नयी अन्तर्दृष्टि, संवेदनशीलता और दार्शनिक गहराई प्रदान की।''

इलाचन्द जोशी, अज्ञेय मनोवैज्ञानिक कहानी-लेखक हैं। जहाँ जैनेन्द्र की मनोविश्लेषण की प्रणाली स्वानुभूति पर आधारित है, वहीं जोशी और अज्ञेय पर फायड के यौनवाद का प्रभाव है। जोशी के कहानी-संग्रह हैं----'रोमांटिक और छाया', 'आहुत', 'दीवाली और होली', आदि। जोशी कहानी-क्षेत्र में उतने कुशल कलाकार नहीं जितने कि उपन्यास-क्षेत्र में हैं। अज्ञेय जी एक कुशाल उपन्यासकार के साथ कुशल कहानीकार भी हैं। इनके कहानी-संग्रह हैं--- 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात', आदि। यशपाल जी मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित हैं। 'अभिशांत', 'वो दुनिया', 'ज्ञानदान', 'पिंजरे की उड़ान', 'भस्मावृत्त', 'चिन्गारी', 'तर्कावृत', 'फूलों का कर्ता', 'उत्तराधिकारी', आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं।

सन् 1950 ई. से हिन्दी-कहानी ने नई कविता के समान ही अपने को नई कहानी के रूप में ढाल लिया। इसमे कामकुठा, क्षणवाद, घुटन, निराशा, अनास्था एवं जीवन के प्रति वितृष्णा की अभिव्यंजना होने लगी। नई कहानी 'अकहानी', 'सचेतन कहानी' एवं 'अचेतन कहानी' के रूप में अपने को परिवर्तित करती रही है। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, अमरकान्त, रेणु, अमृतराय, श्रीकान्त वर्मा, मार्कण्डेय, डॉ. महीप सिंह, मनहर चौहान, हिमांशु जोशी, सुदर्शन चोपड़ा, धमेन्द्र गुप्त, राजीव सक्सेना, देवेन्द्र सत्यार्थी, दूधनाथ सिंह, आदि नई कहानी के प्रमुख कहानी-लेखक हैं।

हिन्दी उपन्यास का आरम्भ और विकास

आधुनिक हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के समान उपन्यास का विकास भी अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव और सम्पर्क से हुआ। बहुत से विद्वान, बाण की 'कादम्बरी' को भारत का सर्वप्रथम उपन्यास मानते हैं। मराठी में उपन्यास के लिये 'कादम्बरी' शब्द पर्यायवाची के रूप में आज भी प्रयुक्त होता हैं। 'कादम्बरी' की अलंकारिकता, अलौकिकता, आदि ने उसको उपन्यास-परम्परा से काफी दूर कर दिया है। उपन्यास के कतिपय तत्वों (कथावस्तु, चरित्र-चित्रण) के दर्शन तो संस्कृत के अनेक ग्रंथों से हो जाते हैं, जिनमें प्रमुख हैं––हितोपदेश, पंचतंत्र, कथासरित्सागर, बृहत्कथा, वैताल पंचविशति, दशकुमार चरित, आदि। कतिपत दोषों से युक्त होने पर भी 'दशकुमार चरित' औपन्यासिक गुणों से सहित नहीं कहा जा सकता है।

हिन्दी का उपन्यास साहित्य अंग्रेजी साहित्य से विशेष रुप से प्रभावित हुआ। यह प्रभाव कुछ तो सीधा पड़ा है और कुछ बँगला के माध्यम से। प्रारम्भ में अंग्रेजी उपन्यासों के अनुकरण पर बँगला उपन्यास ही लिखे गये। इस रूप में भारतेन्दु-युग में ही सर्वप्रथम उपन्यास लिखे गये।

हिन्दी उपन्यासों के विकास को हम चार कालों में विभक्त कर सकते हैं––

(1) प्रथम अवस्था (सन् 1750 ई. से 1900 ई. तक)–– इंशा अल्ला खाँ द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी' का उपन्यास-कला की दृष्टि से भले ही कोई मूल्य न हो, किन्तु इसका ऐतिहासिक महत्तव तो है ही। हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवास दास-कृत 'परीक्षागुरु' है। इसमें उपदेशात्मकता की प्रवृति अधिक उभर कर सामने आई है ओर चरित्र-चित्रण तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की गरिमा समाप्त हो गई है। यह साधारण-सा सुधारात्मक एवं मनोरंजक उपन्यास है। बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' तथा 'नूतन ब्रह्मचारी' भी उपदेशात्मक सामाजिक उपन्यास हैं। इस युग में अंग्रेजी और बँगला उपन्यासों के अनुवाद भी हुए। भारतेन्दु ने 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यासों का अनुवाद किया।

प्रतापनारायण मिश्र ने 'राजसिंह', 'इन्द्रा', 'युगलांगुलीय' और 'राधा-रानी' के अनुवाद किये। राधाचरण गोस्वामा ने. 'सावित्री', 'विरजा', 'मृण्मयी' का अनुवाद किया। इन अनुवादों से हिन्दी साहित्य को मौलिकता की दृष्टि से तो कोई लाभ नहीं हुआ, किन्तु पाठकों में उपन्यासों के प्रति अभिरूचि जागृत करने के लिए एवं हिन्दी उपन्यास की परम्परा की नींब डालने के लिये ये उपन्यास ऐतिहासिक दृष्टि से कम महत्तवपूर्ण नहीं हैं।

(2) द्वितीय अवस्था (सन् 1900 ई. से 1915 ई. तक)–– इस काल में भी अनुवाद कम नहीं हुए। रामकृष्ण वर्मा ने 'अकबर', 'अबला वृताल-माला, वितौर चातकी' तथा कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'इला', 'प्रमिला' और गोपाल कृष्ण गहमरीने 'चतुर चंचला', 'भानुमती', 'बड़े बाबू', आदि का अनुवाद किया। 'लंदन रहस्य', 'टाम काका की कुटिया' नामके अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद भी हुए। इस युग के मौलिक उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकांता संतति' इतने लोकप्रिय हुए कि अनेक हिन्दी न जानने वालों ने भी उन्हें पढ़ने के लिए हिन्दी सीखा। लोकरुचि को हिन्दी उपन्यास की ओर जागृत करने का बहुत बड़ा श्रेय खत्री जी को है। खत्री जी की ही भौति गोपाल कृष्ण गहमरी के तिलस्मी एवं अय्यारी उपन्यासों ने भी हिन्दी-जगत् में धूम मचा दी। इनके अनुकरण पर देवी प्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, किशोरी लाल गोस्वामी, आदि ने जासूसी एवं अय्यारी उपन्यासों से हिन्दी साहित्य की निधि को भर-सा दिया।

इस काल में सामजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, श्रय्यारी एवं प्रेम-प्रधान उपन्यास ही लिखे गये। सामाजिक उपन्यासों में नैतिक शिक्षा, समाज-सुधार, भारतीय आदर्श तया पश्चिमी सभ्यता की कटु आलोचना है।

(3) तृतीय अवस्था (सन् 1915 ई. 1936 ई. तक)––– इस काल में उपन्यास तिलस्मी, अय्यारी और धार्मिक उपदेशों के परिप्रेक्ष्य से निकल कर

सामाजिक धरातल पर आया। यथार्थ एवं आदर्श के अंकन के द्वारा जीवन-संघर्ष का सुन्दर चित्रण उपस्थित हुआ। इन उपन्यासों में जन-जीवन को वाणी मिली। इनमें भारत के किसान, मजदूर और मध्यमवर्गीय जीवन की समस्वाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। प्रेमचन्द इस युग के अग्रदूत है।

प्रेमचन्द का 'गोदान' हिन्दी साहित्य का सर्वेश्रेष्ठ उपन्यास है। यह एक यथार्थवादी उपन्यास है। इसमें अन्य उपन्यासों की भाँति प्रेमचन्द ने किसी आदर्श के द्वारा समस्या को हल करने की चेष्टा नहीं की है।

प्रेमचन्द-युग में हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में अनेक प्रतिभाशाली उपन्यास-लेखकों का आगमन हुआ, जिनमें प्रमुख हैं—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, तितली, इरावती), चतुरसेन शास्त्री (परख, ह्रदय की प्यास, अमर अभिलाषा, आदि) विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (माँ, भिखारिणी), बेचन शर्मा 'उग्र' (दिल्ली का दलाल, चन्द हसीनों के खतून), प्रतापनारायण श्रीवास्तव (विदा, विकास, आदि), वृन्दावन लाल वर्मा (विराटा की पद्मिनी, मृगनयनी, गढ़कुंडार, झाँसी की रानी, महारानी लक्षमीबाई, आदि), जैनेन्द्र कुमार (परख, सुनीता, कल्याणी, आदि, इलाचंद जोशी (पर्दे की रानी, प्रेंत और छाया, संन्यासी, आदि), भगवती प्रसाद वाजपेयी, जी.पी. श्रीवास्तव, सुदर्शन, निराला, ऋषभ चरण जैन, आदि। इस युग के उपन्यासों से हिन्दी साहित्य की ही श्रीवृद्धि नहीं हुई, अपितु भाषा, भावाभिव्यक्ति, आदि को अभूतपूर्व गरिमा प्राप्त हुई।

(4) चतुर्थ अवस्था (सन् 1936 ई. के पश्वात् से आज तक)—इस समय तक काव्य में अनेक वाद आ गये थे। उक्त वादजनित प्रवृत्तियों से उपन्यास साहित्य अछूता न रहा। मनोवैज्ञानिक यथातथ्यवाद, घोर यथार्थवाद, प्रतीकवाद, अवचेतनवाद, आदि का प्रयोग उपन्यासों में भी होने लगा। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, जैनेन्द्र के उपन्यास उल्लेखनीय है।

सामाजिक उपन्यासकारों में प्रसाद, कौशिक, उग्र, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ अश्क, आदि प्रमुख हैं। इन लेखकों ने अपने उपन्यासों में समाज के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करके उसकी कुरीतियों के दुष्परिणामों को दिखाने का प्रयास किया है।

ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृन्दावन लाल वर्मा, निराला राहुल सांकृत्यायन हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आंचलिक उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु (मैला आँचल), उदयशंकर भट्टु (लोक-परलोक, सागर और लहरें), बलभद्र ठाकुर (आदित्यनाथ, मुक्तावली, नेपाल की बैटी), जागार्जुन (बलचनामा, तरुण के बेटे, आदि), रांगेय राघव (काका, कब तक पुकारूँ), देवेन्द्र सत्यार्थी (रथ के पहिये), शैलेश मटियानी (होल्दार) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कहानी एवं कविता के समान ही उपन्यासों में भी कुछ नये प्रयोग हुए हैं। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (धर्मवीर भारती), 'बहती गंगा' (रुद्र), 'चाँदनी के खण्डहर' (गिरधर गोपास) में इस प्रवृत्ति के दर्शन हो जाते हैं। 'ग्यारह सपनों का देश' तो अनेक लेखकों द्वारा लिखा गया उपन्यास है। आधुनिक उपन्यासकारों में नागार्जुन, गुरुदत पहाड़ी, उदयशंकर भट्ट, अनन्त गोपाल शेवड़े, यादवेन्द्र नाथ, कंचनलता सब्बरवाल, उषादेवी मित्र, आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी के नाटकों की उत्पत्ति तथा विकास

डॉ. दशरथ ओझा ने हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक 'गाय सुकुमार रास' माना है। जिसकी रचना सन् 2232 इ. में हुई थी। वस्तुतः अठारहवी शती तक हिन्दी साहित्य में काव्य का ही आधिपत्य रहो। नाटक-कला की दृष्टि से ब्रजभाषा में अनुदित गोपालचन्द्र का गिरिधर दास-कृत 'नहुष' को विद्वान् हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं। किन्तु, यह भी एक पद्यबद्ध नाटक है और नाटकीय तत्वों से युक्त नहीं है। भारतेन्दु-काल को अन्य विधाओं की भाँति ही नाटकों के उत्थान का काल

कहा जा सकता है। भारतेन्दु ने सर्वप्रथम बँगाल से 'विद्यासुन्दर' नामक नाटक का अनुवाद किया।

भारतेन्दु-काल राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक चेतना एवं उन्मेष का युग था। अतः नाटकों के माध्यम से एक ओर जहाँ इस युग के लेखकों ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने की चेष्टा की, वहीं दूसरी ओर जन-जन में राष्ट्र के प्रतिप्रेम की भावना भी जागृत की।

देश-हित, राष्ट्र-प्रेम, समाज-सुधार एवं सांस्कृतिक जागरण ही भारतेन्दु युग के नाटकों का प्रतिपाद्य विषय रहा है। इस काल के लेखकों में भारतेन्दु के अतिरिक्त श्रीनिवास दास, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, तोताराम, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', आदि प्रमुख हैं।

इस काल में दो प्रकार के नाटक मिलते हैं --- (1) अनूदित तथा (2) मौलिक। अनुवाद-कार्य संस्कृत, बँगला, अंग्रेजी एवं उर्दू से विशेष रूप से हुआ।

मौलिक नाटकों में 'तप्तासंवरण', 'संयोगिता-स्वयंवर', 'दुखिनी बाला', 'मयंक-मंजरी', 'माधुरी रूपक', 'महाराणा प्रताप', 'श्री रुक्मिणी परिणय', आदि नाटक संस्कृत नाट्य-कला के आधार पर ही लिखे गये हैं। गायन, नृत्य एवं पारसी प्रभाव से युक्त ऐसे नाटक भी मिलते हैं जिनमें अभिनेयता पर अधिक ध्यान दिया गया है। ऐसे नाटकों में 'सीताहरण', 'रामलीला', 'कंसबध', 'नन्दोत्सव', 'बाल-विवाह', 'गोवध-निषेद', 'रति कुसुमायुध', 'महारास', 'हरतालिका', 'कल्पवृक्ष', 'गोसंकट', 'भारत सौभाग्य', 'मीराबाई', 'गोपीचन्द', 'प्रभात-मिलन', आदि प्रमुख हैं।

भारतेन्दु-युग के नाटकों पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव विशेष रूप से रहा है। कहीं-कहीं तो इनमें संस्कृत नाटकों-जैसा काव्यात्मक वातावरण भी है। इस काल के नाटकों के पद्यों की भाषा ब्रजभाषा ही रही है।

मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, आधुनिक जीवन का वातावरण, साहित्यिक भाषा, स्वाभाविक संलाप, गौत्यात्मक पद्य आदि का विकसित एवं प्रौढ़ रूप प्रसाद के पूर्व किसा नाटककार में एकसाथ नहीं मिलते। नाटकों का पूर्ण उत्कर्ष प्रसाद-युग में ही हुआ।

उनके नाटक न तो सुखान्त हैं और न दुःखान्त, अपितु प्रसादान्त हैं। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'अजातशत्रु', 'विशाख', 'राज्यश्री', उनके ऐतिहासिक नाटक हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' ऐतिहासिक नाटक होते हुए भी आधुनिक समस्या को प्रकाशित करने वाला है।

पौराणिक नाटककारों में प्रसाद के पश्चात् सुदर्शन, गोविन्द वल्लभ पन्त, सेठ गोविन्ददास, माखन लाल चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट, आदि का नाम लिया जा सकता है। पौराणिक नाटककारों में उदयशंकर भट्ट का स्थान विशेष महत्तवपूर्ण है।

सामाजिक नाटककारों में जी. पी. श्रीवास्तव, सुदर्शन, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, लक्षमण सिंह, गोविन्द वल्लभ पन्त, सेठ गोविन्ददास, उग्र उदयशंकर भट्ट, आदि आते हैं। इस दिशा के नाटककारों ने समाज की अनेक कुरीतियों, विडम्बनाओं एवं रूढ़ियों को लक्ष्य करके उन पर व्यंग करने की चेष्टा की है। उग्र के 'चुम्बन' में अश्लीलता के विशेष रूप से दर्शन होते हैं।

प्रसाद का 'कामना' और पन्त का 'ज्योत्सना' प्रतीकात्मक शैली में लिखे नये नाटक हैं। प्रसाद का 'करुणालय' और उदयशङ्कर भट्ट के 'विश्वामित्र', 'मत्स्य-गंधा' तथा 'मेघदूत' गीति-नाट्य हैं।

समस्यामूलक नाटककारों में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा लक्षमी नारायण मिश्र का नाम लिया जा सकता है। समस्यामूलक नाटककारों में मिश्र जी का महत्तवपूर्ण स्थान है। उन्होंने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं का बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण किया है। हिन्दी में एकांकियों के प्रचलन से नाटक के क्षेत्र में उस

स्तर पर प्रगति नहीं हो सकी, जिस स्तर पर एकांकी की हुई है। वैसे आज भी नाटक लिखे जा रहे हैं।

हिन्दी में एकांकी नाटक का उद्‌भव एवं विकास

आधुनिक एकांकी पाश्चात्य साहित्य की देन है, किन्तु संस्कृत के भाण, व्यायोग, अंक, वीथी, प्रहसन, आदि एकांकी ही कहे जा सकते हैं। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में एकांकियों की दीर्घ परम्परा प्राप्त होती है। भारतेन्दु-युग साहित्य का पुनरुत्थान-काल था। उन्होंने एक ओर प्राचीन नाटकों का अनुवाद किया, और दूसरी ओर मौलिक एकांकी भी लिखे।

इस दिशा में भारतेन्दु का 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' हिन्दी का प्रथम एकांकी है। भारतेन्दु-काल में दो प्रकार के एकांकी मिलते हैं—(1) अनूदित तथा (2) मौलिक। प्रथम कोटि के एकांकियों में 'भारत जननी', 'भारतवर्ष में यवन लोग', 'प्रद्युम्न-विजय' आदि आते हैं। दूसरी कोटि के एकांकियों में 'विषस्य विषमौषधम्', 'तन मन धन गोसाई जी के अरपन', 'चौपट चपेट', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'कलियुग और घी', 'बाल-विवाह', 'कलिराज की सभा', 'रेल का बिकट खेल', 'कलि-कौतुक', 'धर्मालाप', 'नीलदेवी', 'सती चन्द्रावली', 'अमरसिंह राठौर', 'राम-वन-गमन', 'श्रीदामा' आदि सामाजिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकी हैं। इन एकांकियों की मूल प्रेरणा लेखकों को धार्मिक कृत्यों, समाज की दुष्प्रवृत्तियों, राष्ट्र के प्रति अनुराग एवं प्राचीन भारत की गौरवमयी संस्कृति से मिली।

बहुत से विद्वान् प्रसाद के 'एक घूँट' को हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते हैं। 'एक घूँट' में जहाँ सुगठित कथा, संवाद का स्वाभाविकता, मार्मिकता, संकलन-क्रम का निर्वाह एवं संघर्ष का उत्तरोत्तर विकास है, वहीं पात्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिकता भी है। रामकुमार वर्मा के 'पृथ्वीराज की आँखें', भुवनेश्वर के कारवाँ, सत्येन्द्र के 'कुणाल' में एकांकी का वह स्वरूप प्रस्फुटित हुआ, जिसकी धारा आज भी प्रवाहित होती आ रही है।

एकांकी-लिखकों का ध्यान विशेष रूप से दो दिशाओं की ओर अधिक गया—(1) विषय-निरूपण की ओर तथा (2) शिल्प-विधान की ओर। अपने एकांकियों में विषय को प्रधानता देने वाले लेखकों में सूर्यशरण 'पारीक', जैनेन्द्र कुमार, वृन्दावन लाल वर्मा, गोविन्द वल्लभ पंत,उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण 'प्रेमी', धर्म प्रकाश, राहुल सांकृत्यायन, भगवती प्रसाद बाजपेयी, सेठ गोविन्द दास, आदि प्रमुख हैं। शिल्प-विधान को अपने एकांकियों में प्रमुखता देने वाले लेखकों में रामकुमार वर्मा, गणेश प्रसाद द्विवेदी, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', एस.पी. खत्री, विष्णु प्रभाकर प्रादि का नाम लिया जा सकता है। शिल्प-विधान को प्रधानता देने के बावजूद भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इनके एकांकियों में विषय की उपेक्षा हुई है।

समस्यामूलक, हास्य-व्यंग्यमूलक, शिल्पमूलक, सूचनामूलक, आदि विविध रूपों में आज एकांकियों का विकास हुआ है। जहाँ आज का एकांकी जीवन के यथार्थ रूप को चित्रित करने के लिए अग्रसर हुआ है, वही उसमें प्रयोग की दृष्टि से विविधता आती गई है। आज का वही एकांकी विशेष रूप से सफल माना जाता है जिसमें अभिनेयता, बात कहने की कुशलता, प्रभावोत्पादकता तथा मन के रहस्यों को खोलने की क्षमता, एकसाथ हो।

निबन्ध का उद्‌भव और विकास

निबन्ध गद्‌य की एक विशिष्ट विधा है। इसका उद्‌भव और विकास आधुनिक युग की देन है। वस्तुतः जिस विधा को हम निबन्ध कहते हैं वह अंग्रेज़ी शब्द (Essay) ''एस्से'' का पर्यायवाची है। सुप्रसिद्ध लेखक मोन्तेन (Mantaigne) ''एस्से'' के आदि लेखक माने जाते हैं। निबन्ध में साहित्यकार का ''आत्मप्रकाशन'' विद्यमान है।

निबन्ध का विकास :

अंग्रेज़ी निबंध साहित्य की भाँति हिन्दी में भी समाचार पत्रों द्वारा निबन्ध का आरंभ हुआ हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र ''उदन्त-मातण्डि'' के संपादक युगल किशोर शुक्ल जो हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु अंग्रेज़ी के विरुद्ध यह पत्र चलाया। इसमें सबसे प्रथम अंक में संपादक अपना लेख लिखता था। इसके अलावा हिन्दी निबन्ध के विकास में निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाओं ने भी अपना योगदान दिया -- 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन', 'मित्र विलास', 'हिन्दी प्रदीप', 'मोहन चंद्रिका', 'ब्राह्मण' आदि।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द', राजा लक्ष्मण सिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि ने हिन्दी निबन्ध के लिए मार्ग प्रशस्त किया और भारतेन्दु युग की पीठिका तैयार की।

निबन्ध लेखन का आरंभ सन् 1857 से माना जाता है तथा भारतेन्दु को प्रथम निबन्धकार माना गया। परन्तु प्रमाणों के आधार पर ''राजा शिवप्रसाद सिंह'' को हिन्दी का प्रथम निबन्धकार मानना ही उचित होगा। इनके निबन्ध का नाम ''राजा भोज का सपना'' है। निबन्ध साहित्य को चार युगों में विभाजित किया गया है। वे निम्नलिखित हैं।

1. भारतेन्दु युग (सन् 1857 - 1900 तक)
2. द्विवेदी युग (सन् 1900 - 1920 तक)
3. शुक्ल युग (सन् 1920 - 1940 तक)
4. शुक्लोत्तर युग (सन् 1940 से आज तक)

(i) भारतेन्दु युग :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी निबंध का जन्मदाता मानते हैं। वे हिन्दी निबंध-रचना के व्यवस्थित आरंभकर्ता माने जाते हैं।

भारतेन्दु ने विविध कोटियों और विषयों पर लेख और निबंध लिखे। ''हरिश्चन्द्र मेगज़ीन'', ''बाला-बोधिनी'' आदि में वर्णनात्मक और संस्कृति संबंधी

लेख बराबर निकलते रहे। हास्य-व्यंग्य की शैली भी उन्होंने ठीक से चलाई। भारतेन्दु युग की निबन्धकला का उस युग की पत्रकार-कला से घनिष्ठ- संबंध है। उन्होंने लोक-प्रचलित भाषा-शैली को व्यावहारिक साहित्यिक रूप दिया। कविता और नाटक की भाँति उनके निबन्धों का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है।

भारतेन्दु जी ने अनेक निबन्धों में तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर तीक्ष्ण व्ग्य किया है। सर्वत्र में विचार, सभा का अधिवेशन, अंग्रेज़ स्त्रोत आदि इसी कोटि के हैं। भारतेन्दु के निबन्धों में विषय के अनुरूप विभिन्न प्रकार की भाषा शैलियों का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा में मार्मिक अभिवंय्जना, सजीव योजना, विदग्ध वाग्मिता और मन-मोहक स्वच्छता मिलती हैं। उनके आलोचनात्मक निबंध ''वैष्णवता और भारत वर्ष'' की भाषा अत्यंत प्रौढ़ है। विषय तथा शैली की दृष्टि से भारतेन्दु का निबन्ध-साहित्य महत्वपूर्ण है।

(ii) द्विवेदी युग : (महावीरप्रसाद द्विवेदी) (सन् 1900 ई. से 1920 तक) :

द्विवेदी युग का आरंभ हम महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' के सम्पादन का कार्यभार सम्भालने के समय से ही मान सकते हैं। निबन्धकार द्विवेदी का आदर्श ''बेकन'' था। उन्होंने बेकन के निबन्धों का अनुवाद ''बेकन-विचार-रत्नावली'' के रूप में किया। द्विवेदी जी द्वारा भाषा में स्थिरता और सुघडता लाई गई। इनकी भाषा और शैली विषय के अनुसार बदलती हैं। ''मेघदूत'' एवं ''कवि और कविता'' निबन्ध उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी युग में निबन्धों का प्रयोजन केवल मनोविनोद तथा चमत्कार प्रदर्शन तक ही सीमित नहीं रहा, परंतु उच्च कोटि के विचारात्मक तथा आलोचनात्मक निबन्धों की ओर भी प्रवृत्ति हुई। भाषा और व्याकरण संबंधी निबंध लिखे गये। इस युग में आलोचनात्मक निबन्धों की रचना में गहनता आई। द्विवेदी युग निबन्ध-साहित्य का पृष्टिकाल था। इस युग में विषय और शैली की दृष्टि से प्रायः सभी विषयों को अपनाया गया।

(iii) शुक्ल युग (सन् 1920 से 1940 तक)

हिन्दी निबन्ध के विकास की गति में तीसरा मोड़ रामचन्द्र शुक्ल की ''चिन्तामणि'' द्वारा उपस्थित होता है। इस निबन्ध के द्वारा इन्होंने नये विचार, नयी अनुभूति और नवीन शैली को प्रस्तुत की।

शुक्लजी के साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबन्धों में 'कविता क्या है?', 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' आदि प्रमुख हैं।

शुक्ल युग के निबंध प्रौढ़ एवं शक्ति-संपन्न हैं। शुक्लजी के अनुसार वैयक्तिकता निबंधकार की शैली एवं उसकी हृदयगत प्रवृत्तियों की एकमात्र झलक प्रस्तुत करने में है। उन्होंने विचार गुम्फन को ही महत्ता दी। उन्होंने विचारात्मक निबन्धों को उच्चकोटि के निबन्ध माने थे। इसलिए इस युग में विचारात्मक, आलोचनात्मक तथा भावात्मक निबंध अधिक लिखे गये, वर्णनात्मक, और विचारात्मक निबंध कम लिखे गये।

शुक्ल-युग के अन्य निबन्धकारों में जयशंकर प्रसाद, डॉ. गुलाबराय, पद्मलाल पुन्नलाल बख्सी, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि, शान्तिप्रिय द्विवेदी आदि उल्लेखनीय हैं।

(iv) शुक्लोत्तर युग (सन् 1940 से अब तक) :

शुक्लोत्तर युग निबन्ध समृद्धि का युग है। इस समय निबन्धकारों के विषय तथा शैली की दृष्टि से, इनको उत्कर्ष प्रदान किया गया है। इस युग में विचारात्मक तथा आलोचनात्मक निबन्धों का ही बाहुल्य रहा।

इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इस समय राजनीति और सामाजिक समस्याओं में महत् परिवर्तन हुआ। इस युग में ही देश स्वतंत्र हुआ, नयी रचना-धारा ने भी विकास किया। इस युग का प्रमुख दृष्टिकोण यथार्थवाद ही है जिसके द्वारा वैयक्तिक और सामाजिक दोषों को प्रकाश में लाया गया।

शुक्लोत्तर युग में तीन भाव-धाराएँ स्वष्टतः परिलक्षित होती है – 1. सैद्धांतिक, 2. ऐतिहासिक, 3. व्यावहारिक आदि। विषय, शैली स्वरूप तथा व्यक्तित्व की दृष्टि से आज का निबन्ध-साहित्य उन्नतिशील है। इस काल के निबंध विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक हैं।

निष्कर्ष :

निबन्ध साहित्य का क्रमिक विकास उद्‌भव और अभ्यास, प्रयत्न और निर्माण, उत्कर्ष और परिष्कार तथा प्रसार और प्रसाधन की अवस्थाओं में विकास करता हुआ निरन्तर गतिशील रहा है। हिन्दी-निबंध परम्परा आदर्श के बिन्दु से आरंभ हुआ। निबंध वैयक्तिक, सामाजिक, साहित्यिक और शास्त्रीय भूमियों पर संवरण करता हुआ स्वच्छन्दता और कलात्मकता, भौतिकता और यथार्थोन्मुकता की ओर अग्रसर हुआ है। उसमें प्रौढ़ता और परिवर्तन के अतिरिक्त वस्तु, दृष्टिकोण, रूप, शैली तथा भाषा प्रयोगों का वैविध्य भी अर्जित किया गया है। अब वह समृद्धि और वैविध्य से परिपूर्ण है जो कालांतर में हिन्दी साहित्य का गौरव बी समझा जाएगा।

आधुनिक काल में पद्य का विकास

जिस प्रकार हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में गद्य का विकास हुआ उसी प्रकार पद्य में भी उत्तरोत्तर विकास देखा गया।

रहस्यवाद--

प्रसाद रहस्यवाद को भारतकी निजी सम्पत्ति मानते हुए लिखते हैं कि ''काव्य की आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।'' महादेवी वर्मा के अनुसार -- ''जब प्रकृति की अनेक रूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके समीप ह्रदय में समाया हुआ था,तब प्रकृति का एक-एक अंश अलोकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।''

''अपनी अन्तःस्फुरित अपरोक्ष ज्ञानुभूति द्वारा सत्य, परम तत्व अथवा ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है।'' अव्यक्त चितन का ब्रह्म ही भावना का प्रियतम है। उसके विषय में जानने और उससे मिलने की जिज्ञासा-मनुष्य में सदा से विद्यमान रही है और आज भी उसी रूप में है।

अनेक ग्रन्थों और विद्वानों ने उसके स्वरूप का विवेचन करना चाहा, किन्तु वह उससे और रहस्यमय होता गया—

सब कहते हैं 'खोलो, खोलो' छवि देखूँगा जीवन धन की।

आचरण स्वयं बनते जाते है भीड़ लग रही दर्शन की।।

चितकों ने अपने 'स्व' को 'आत्मा' की संज्ञा दी है और उसे उस अव्यक्त का ही अंश माना है। उसके बिना आत्मा अपूर्ण है। उस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए आत्मा ने परमात्मा से अपने सम्बन्धों की अनेक रूपों में परिकल्पना की, जिनमें दाम्पत्य-सम्बन्ध विशेष रूप से ग्राह्म रहा है। सूफी कवियों को छोड़कर अन्य साधकों वे आत्मा को नारी-रूप में परिकल्पित किया और परमात्मा का पुरुष-रूप में। नारी अपने प्रियतम के विरह में तड़पने लगी। ब्रह्म के साथ हुए इस तादात्म्य की अभिव्यक्ति जिस रूप में हुई, वह काव्य में रहस्यवाद के रूप में प्रकट हुआ।

ब्रह्म के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा तो वेद-उपनिषद् से लगातार चली आ रही है। आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों की चर्चा भी उपनिषद् साहित्य में मिल जाती है।

कबीरदास हिन्दी साहित्य के प्रथम रहस्यवादी कवि हैं। उन्होंने अपने इष्ट-देव राम को अपना प्रियतम माना है। उनके अनुसार आत्मा-परमात्मा में जो भेद है, वह माया के कारण है। माया के हट जाने पर दोनों एकाकार हो जाते है।

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।

फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना यह तत कथौं गियानी।।

मीराँ की आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए कितनी आकुल है---

वे दिन कब आवेंगे माइ।

जा कारनि हम देह धरी हैं, मिलिबो अंग लगय।।

वह वियोग में तड़पती है, किन्तु प्रियतम के दर्शन नहीं होते। प्रतीक्षा करते-करते उसकी दशा कितनी दयनीय हो जाती है—

आँखड़ियाँ झाई पड़ीं पंथ निहारि-निहारि।

जीभड़ियाँ छाल्या पडया राम पुकारि-पुकारि।।

अन्त में आत्मा की यह साधना सफल होती है। उसके सम्मिलन के दिन आ जाते है। कबीर दास कहते हैं--

दुलहिन गावहु मंगलाचार।

हमारे घर आए हो राजा राम भरतार।।

सूफियों के अनुसार ब्रह्म तक पहुँचने के लिए जीव को चार अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। वे हैं-- शरीअत, तरीकत, हकीकत तथा अनहलक। जायसी ने 'पझावत' में रत्नसिंह को आत्मा और पझावती को ब्रह्मा के रूप में चित्रित किया है। पझवती के स्वरूप का वर्णन कवि ने ब्रह्म के रूप में ही किया है-

-

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर समीर।

हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।।

नागमती का वियोग साधारण नही हैं, अपितु सृष्टि-व्यापी है--

सुरज बूड़ि उठा होइ ताता, औ मजीठि टेसू बन राता।

भा बसंत राती बनस पती, औराते सब जोगी जती।।

सगुण भक्त कवियों में सूरदास एवं तुलसीदास के काव्य में कुछ रहस्यमयी उक्तियाँ अवश्य मिल जाती हैं, किन्तु इससे वे रहस्यवादी कवि नहीं कहे जा सकते। रहस्यवादी कवियों में मीराँ का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है।

प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा एवं राम कुमार वर्मा आधुनिक युग के रहस्यवादी कवि हैं। जब साधक में एकाकार की स्थिति है तो वह अपने में ही परमात्मा का अनुभव करने लगता हैं—

तू मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या?
चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम, मधुर राग तू मैं स्वर सरगम।
काया छाया रहस्यमय, प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या?
(महादेवी वर्मा)

जब आत्मा से परमात्मा का मिलन होता है तो वातावरण इतना उल्लासमय हो जाता है कि प्रकृति का कण-कण उल्लास से विभोर हो उठता है—

सखि मैं हूँ अमर सुहाग मरी, प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।
किसको त्यागूँ, किसको मागूँ, है एक मुझे मधुमय विषमय।।

निराला दार्शनिक रहस्यवादी हैं तो सुमित्रानन्दन पंत प्रकृतिमूलक और प्रसाद एवं महादेवी वर्मा सौंन्दर्य एवं प्रेममूलक रहस्यवादी हैं।

छायावाद :

हिन्दी विद्वानों में छायावाद के स्वरूप-निर्धारण के विषय में काफी मतभेद है। रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आज तक के विचारकों ने जिन परिभाषाओं को दिया हैं, उनसे छायावाद का एक स्थिर रूप स्वीकार नहीं किया जा सकता। आचार्य शुक्ल छायावाद के विषय में लिखते हैं-- ''छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संवंध काव्य-वस्तु से होता है, अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर चित्र भयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। ... छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।''

शुक्ल जी के अनुसार छायावाद स्वच्छन्दतावाद से भिन्न है और रहस्यवाद छायावाद का पर्याय है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'कबीर के रहस्यवाद' में जो परिभाषा रहस्यवाद की दी है, वही 'साहित्य समालोचना' में छायावाद की दी गई है— ''छायावाद (रहस्यवाद) जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक सत्ता से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।''

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में--- ''छायावाद स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह है।'' और ''छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।''

''इस आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता की वह शैली है जिसमें सूक्ष्म और काल्पनिक सहानुभूति को लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक ढंग पर प्रकाशित करते हैं।''

श्री रामकृष्ण शुक्ल एक स्थल पर लिखते हैं --- ''प्रकृति में व्यक्ति का , मानव जीवन का प्रतिबिम्ब देखने की पद्धति छायावाद है।'' डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार---''छायावाद एक अनुभूति विशेष है--- सौन्दर्यानुभूति।''

कवियों अथवा आलोचकों द्वारा दी गयी छायावाद की परिभाषाओं के लक्षणों को यदि लें, तो उन्हे इस प्रकार रख सकते हैं--- (1) रहस्यवादिता, (2) समझ में न आना, (3) अभिव्यंजना-पद्धति, (4) स्थूल के प्रति सूक्षम का पौराणिकता के प्रित लौकिकता का, रूढ़ि, नीति, आदि के प्रति मानवता का विद्रोह, (5) प्रकृति में मानवीय तथा ईश्वरीय सत्ता का आरोप, (6) स्वानुभुत वेदना की अभिव्यक्ति (7) जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण, (8) व्यक्तिवादिता, (9) भाववादिता, (10) सर्वात्मवादिता, (11) गीतात्मकता और (12) सौन्दर्य-चित्रण की प्रवृत्ति।

रहस्यवादी कविताएँ न तो छायावादी हो सकती हैं और न छायावादी कविताएँ रहस्यवादी ही। स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति छायावाद में अवश्य मिल जाती

है, किन्तु इसलिए वह स्वछन्दतावाद नहीं है। छायावाद शब्द अंग्रेजी रोमाण्टिसिज्म का अनुवाद नहीं है। इस काल की प्रमुख विसेषताएँ ये हैं–– (1) सामाजिक या यथार्थोन्मुख आदर्शवाद, (2) छायावादी आदर्शवाद की प्रतिक्रिया और निजी सुख-दुःख की सीधी अभिव्यक्ति, (3) मस्ती और मौज की प्रवृत्ति, (4) निराशावाद, (5) अहंवाद, (6) ऐन्द्रियता और मधुचर्या।

यह काव्य-धारा नवजागरण का रचनात्मक परिणाम कही जा सकती है। इसे मात्र स्थूलता, इतिवृत्तात्मकता, सामन्तवादिता, रूढ़िवादिता, आदि की प्रतिक्रिया कहना सत्य है। इस पर विवेकानन्द और रामतीर्थ की अद्वैतमूलक भक्ति-भावना, गाँधीवादी मानवतावाद, रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विश्व-बन्धुत्ववाद, आदि का भी प्रभाव पड़ा है। यह राष्ट्रीय प्रेम एवं विदेशी शासन के विद्रोह से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रह सका।

छायावाद का आरम्भ सन् 1913-14 ई. से होता है, किन्तु सन् 1916 ई. तक आते-आते उसकी प्रगति अवरुद्ध-सी हो जाती है। सन् 1918 ई. में प्रसाद का 'झरना' प्रकाशित हुआ, जिसमें आत्म-प्रकाशन, भाव-प्रवणता एवं आर्द्रता के विशेष रूप से दर्शन होते हैं। सन् 1927 ई. तक पंत की 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव', आदि रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। निराला की कविताएँ भी अब तक प्रकाशित होने लगी थीं। 'आँसू' प्रसाद का श्रेष्ठ विरह काव्य है। उनकी 'कामायनी' छायावाद का उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसमें आनन्दवाद की सृष्टि हुई है।

प्रसाद कहीं तो जगत् से पलायन कर जाना चाहते हैं––

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों में गहरी।
निश्चल प्रेमकथा कहती हो, तब कोलाहल की अवनी रे।
मेरे नाविक धीरे-धीरे।।

तो कभी स्वप्लि लोक से जागने के लिए प्रेरित करते हैं––

'जूही की कली' निराला की पहली रचना है। 'परिमल', 'गीतिका', 'अनामिका', आदि की कविताओं में उनका उदात्त स्वर, करुणा से द्रवित ह्रदय की विशालता, भावों के सूक्ष्म सौन्दर्य एवं उनकी दार्शनिकता देखी जा सकती है। 'तुलसीदास' निराला का छायावादी प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें महाकाव्योचित गरिमा है, सौष्ठव है।

पलायनवादिता का एक उदहरण निराला जी की कविता से लें---

हमें जाना है जग के पार।

जहाँ नयनों से मिलें, ज्योति के रूप सहस्त्र खिलें।

सदा ही बहती नव-रस धार, वहीं जाना, इस जग के पार।।

सुमित्रानंदन पंत का रचना-काल सन् 1918 ई. से आरम्भ होता है। 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदि इनकी छायावादी कृतियाँ हैं। पंत सुकुमार प्रकृति के कवि हैं। पंत ने अमूर्त भावों को बड़े ही कौशल के साथ मूर्त रूप प्रदान किया है ---

कहो कौन तुम दमयन्ती -सी इस तरु के नीचे सोई।

भूल गया है क्या तुमको भी अलि नल-सा निष्ठुर कोई।।

पत ने तो वियोग सो ही काव्य की सृष्टि मानी है---

वियोगी होगी पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।

उमड़ कर आँखों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान।।

महादेवी वर्मा निराशावाद एवं पीड़ावाद की कवियित्री हैं। उन्हीं के शब्दों में--- ''दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जिसमें सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता है।'' 'निहार', 'रश्मि', 'निरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा', आदि इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं महादेवी जी पीड़ा को अधिक महत्त्व देती हैं। वे अपने, प्रियतम को पीड़ा में ही खोजने का प्रयास करती हैं।

तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।

अन्य छायावादी कवियों में रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, हरिकृष्ण 'प्रेमी', सुमित्रा कुमारी सिनहा, मोहनलाल महतो, वियोगी, आदि प्रमुख हैं।

छायावादी काव्य-कला ने भाषा-शैली, भाव, छन्द-विधान आदि सभी दृष्टियों से कांति की। अपनी गीतिमयता, कल्पना की मनोरमता एवं माधुर्य की गरिमा से एक ऐसी रसधारा बहाई, जिसने काव्य की कलुषता एवं कुस्सा का प्रच्छालन करके उसका अभिषेक किया और सरस-सौरग से कविता-कानन को सुरभित बना दिया। सौन्दर्य के ऐसे अनुपम एवं सूक्ष्म चित्र दिये, जिनमें आन्तरिक पावनता भी झलक उठी और सौन्दर्य स्वयं बोलता हुआ दृष्टिगत हुआ।

प्रगतिवाद :

''प्रगतिवाद का उद्देश्य था साहित्य में उस सामाजिक यथार्थवाद को प्रतिष्ठित करना जो छायावाद के पद्धनोन्मुख काल की विकृतियों को नष्ट करके एक नये साहित्य और नये मानव की स्थापना करे और उस सामाजिक सत्य को, उसके विभिन्न स्तरों को साहित्य में प्रतिपादित होने का अवसर प्रदान करे।'' साहित्य जीवन की व्याख्या है। गति जीवन का दूसरा नाम है। अतः गति या प्रगति साहित्य का मूल लक्षण है। साहित्य जीवन का सर्वांगपूर्ण निरूपण करता है। जैसे ही साहित्य जीवन से पृथक् हो जाता है, वह जन-मानस से भी अलग हो जाता है। सर्वप्रथम भक्ति-साहित्य में हमें प्रगति के तत्त्व मिलते हैं। कबीर के सामने वो समाज था, उसमें अनेक विकृतियाँ आ चुकी थी।

वे सामाजिक कुरीतियों, विडम्बनाओं और बाह्माडम्बरों से विमुख नहीं हुए, अपितु सदैव उनसे लड़ते रहे। तुलसीदास का साहित्य लोक-मंगल की भावना से पूर्ण है। उनके साहित्य में भी तत्कालीन समाज की झाँकी मिल जाती है। रीतिकालीन कवि श्रृँगारिकता के प्रवाह में इस प्रकार बह गये कि उन्हें जीवनगत

आवश्यकताओं को समझने का अवकाश ही न रह गया। भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग में साहित्यिक जागृति उत्पन्न हो चुकी थी। किन्तु, छायावादी एवं रहस्वादी काव्य-धारा ने जो स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाने का प्रयास किया, उसमें उसकी वायवी उड़ान ही अधिक स्पष्ट हुई। आत्मा और परमात्मा के सम्मिलन की; विविध झाँकियाँ तो अवश्य देखने को मिली, किन्तु जीवन और जगत् की, संघर्ष और जगरण की सच्ची अभिव्यक्ति यथार्थ के धरातल पर न हो सकी।

आधुनिक प्रगतिवाद का प्रेरणा-स्त्रोत मार्क्सवाद है। मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार, सृष्टि का मूल भौतिक पदार्थ है और वर्तमान सृष्टि उसी का विकसित रूप है। परिवर्त्तन एवं विकास आदि में परोक्ष सत्ता का कोई हाथ नहीं। दो विरोधी तत्त्वों के संघर्षण से सृष्टिगतिशील होती है। उसमें कभी साम्यावस्था होती है तो कभी द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है। साम्य और द्वंद्व ही सृष्टि-विकास के कारण हैं। इसी को 'द्वन्द्वात्मक भौतिकचाद' कहते हैं। मार्क्स के अनुसार समाज के संघटन का मूल आधार आर्थिक व्यवस्था है। सुख-दुःख आर्थिक विषय के कारण होता है। इसमेंएक वर्ग के हाथ में पूँजी आ जाती है, दूसरा उसके आश्रित हो जाता है। पहले वर्ग को पूँजीपति-वर्ग या शौषक वर्ग और दूसरी वर्ग को शोषित-वर्ग या सर्वहारा वर्ग कहते हैं। मार्क्सवाद श्रेणी विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है। उसके अनुसार जब तक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था रहेगी, तब तक समाज का समुचित विकास नहीं हो सकता। अतः साहित्यकारों को चाहिए कि वे सर्वहारा वर्ग को गौरवपूर्ण स्थान देकर वर्गहीन समाज-रचना के लिए आगे बढ़े। प्रगतिवाद प्रेम के उपयोगी एवं स्वस्थ पहलू का समर्थन करता है, न कि फायड के 'काम-भावना' से ग्रसित सिद्धान्त को। मार्क्सवाद ईश्वर, धर्म, भाग्यवाद, आदि की अवहेलना इसलिए करता है, क्योंकि ये जीवन को निष्क्रिय बनाते हैं। वह साहित्य की उपयोगिता जीवन के सभी क्षण में मानता है।

गद्य के क्षेत्र में महाकवि निराला, महादेवी वर्मा, यशपाल, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', भगवती चरण वर्मा, यशपाल आदि का नाम प्रगतिशील साहित्य-सृजन के रूप में लिया जा सकता है। काव्य-क्षेत्र में सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, दिनकर, भगवती चरण वर्मा, सुधीन्द्र, उदयशंकर भट्ट, नरेन्द्र, सुमन, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव आदि कवियों के काव्यों में प्रगतिवादी विचारधारा स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आयी है।

पन्त ने पूँजीवाद का विरोध किया और समाज में साम्यवाद की स्थापना करनी चाही---

साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण।
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।।

उन्होंने मार्क्स की प्रशंसा की---

धन्य मार्क्स चिरतमाच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर।

दिनकर ने पूँजीवाद एवं सर्वहारा वर्ग के विषय को कितने मार्भिक ढेग से प्रस्तुत किया है---

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक चिल्लाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक तब तेल फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं।।

अंचल का शोषण के प्रति कितना रोष है---

हाँ यह समाज चिथड़े-चिथड़े शोषण पर जिसकी नींव पड़ी।

अत्याचार, शोषण, , चोरबाजारी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, आदि के विरुद्ध इन कवियों ने जो आवाज उठाई है, वह अवश्य ही जन-जीवन को नयी दिशा प्रदान करेगी।

जहाँ तक प्रगतिशील काव्य की भाषा का प्रश्न है, वह भावानुकूल है। इस काव्य के उपमान प्रकृति के न होकर नागरिक जीवन से संबंधित हैं--

लहू कि बूँदों से

जलते हैं बिजली के बल्ब सूनी सड़कों पर--लाल!

--रामविलास शर्मा

x x x

कोयले की खान, मजदूरिनी-सी रात।

बोझ ढोती तिमिर का विश्रान्त-सी अवदात।।

--रांगेय राघव

साहित्य की प्रकृति पर विचार करते हुए प्रेमचन्द ने एक स्थल पर लिखा है--''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी उत्पन्न करे, सुलाये नहीं।''

निश्चित रूप से प्रेमचन्द के उक्त विचार में न तो रूस-भक्ति के लिए ही कोई संकेत मिलता है और न अतियथार्थ का रूप ही।

प्रयोगवाद

प्रयोगवाद और प्रगतिवाद के शीर्षकों के अन्तर्गत समाहित की जानेवाला कविता में मुख्यतः छायावाद के चुक जाने से पैदा हुए अन्तराल एवं अवकाश की पूर्ति का प्रयास ही अधिक थी। यह छायावाद के प्रति विद्रोह कम और उत्तर छायावादी वैयक्तिक कविता के प्रति प्रतिक्रिया अधिक थी।

प्रयोगवाद और नई कविता के उन्नायकों में प्रमुखतया वह पीढ़ी थी, जिसने सन् 43 में विश्व के महान साम्राज्यवादी षड्यन्त्र के विरुद्ध एक निरस्त्र साधनहीन क्रान्ति का आह्वान किया था। वह साधारण जन का अपना विक्षोभ था, अपनी नियति की समस्त प्रक्रिया की सारी बागडोर को आगे बड़कर उसने अपने हाथ में लिया था--और वह लघुक्रान्ति चाहे राजनीतिक स्तर पर कुचल दी गई थी, पर हमारी

चेतना और हमारे भवबोध में पलती रही, मूल्यों में जो परिवर्तन आया था वह परिपक्व होता रहा। कवि ने तत्कालीन जीवन-यथार्थ की अभिव्यक्ति पूरी गम्भीरता और अपनी जिम्मेदारी के अहसास के साथ करने का प्रयास शुरु किया।

प्रयोगवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ :-

प्रयोगवादी कवियों ने अपने प्रयोगों द्वारा पुरानी काव्य-रीतियों और रूढ़ियों को तोड़कर, नई और अनजानी राहों पर चलने के खतरे उठाए थे। सन् 1943 में ''तारसप्तक'' के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद का आरम्भ माना जाता है। इसके 'आमुख में कवि अज्ञेय स्वयं लिखते हैं ''हम राही नहीं, राहों के अन्वेषी हैं, किसी मंजिल तक पहुँचे हुए नहीं हैं।'' कविता के रत्तर पर कवियों ने अपने प्रयोगों की सार्थकता और औचित्य प्रमाणित करने की कोशिश की थी। इस कोशिश में वे सर्वत्र सफल रहे हों, ऐसी बात नहीं। उनके प्रयोग, कहीं-कहीं नितांत वैयक्तिक, अनर्गल, हास्यास्पद प्रतीत होते हैं पर उनकी प्रयोगशील वृत्ति अपने आप में महत्तवपूर्ण है।

(1) अहं की प्रवृत्ति :-

प्रयोगवादी कविता मुख्यतः व्यक्ति केन्द्रित है। यह व्यक्ति जटिल एवं कुण्ठित है, मन की भीतरी तहों में विचरण करने वाला वैद्धिक प्राणी है। इस कविता में व्यक्ति की अपनी विशिष्टता है जैसे कि नदी की धारा के मध्य में द्वीप—

द्वीप हैं हम, यह नहीं है शाप

यह अपनी नियति है।

(2) यथार्थ-दृष्टि :--

ये कवि जीवन के यथार्थ से कटे हुए नहीं थे। यथार्थ से इनका पूरा सरोकार था। अपने परिवेश के प्रति ये कवि अत्यधिक जागरूक और संवेदनशील थे। उनके

सौन्दर्य-बोध और उनकी संवेदना को तत्कालीन भीषण और विषय परिस्थितियों न प्रभावित किया है।

वेदनां है चाँदनी बीच
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार
शिशिर का राका-निशा की शान्ति है निस्सारा।

(3) दृष्टि की नवीनता:--

प्रयोगवाद का आधार दृष्टि की नवीनता है. मैलिकता प्रयोगवाद का विशिष्ट गुण है। 'रेडीमेड़ आइडियाज़' को अपना लेने के स्थान पर वह अपने नए विचारों को महत्व देता है। सत्य को वह अपनी आँखों से देखने का आदी है।

कवि अज्ञेय ने प्रयोगों पर इसलिए विशेष बल दिया क्योंकि इन्हीं प्रयोगों के माधयम से ही सत्य की खोज की जा सकती थी। उन्हें सत्य की उपलब्धि भी हुई। अज्ञेय का यह वैयक्तिक सत्य उनका युग-सत्य ही था, जिसके सभी सूत्र खो गए थे--

सत्य एक है
क्योंकि वह एक ग्रन्थि है
जिसके सब सूत्र खो गए हैं।

(4) लघु मानव की महत्ता :--

व्यक्तिवादी दृष्टि होने के कारण प्रयोगवादियों ने व्यक्ति को ही अपने प्रयोगों का केन्द्र बनाया। प्रयोगवाद 'महत्' के स्थान पर 'लघु' की प्रतिष्ठा करता है। वह इस मानव की खोज अन्तर्मुखी होकर अन्तः धरातल पर करता है। 'लघु' से 'महत्' की कल्पना करनेवाली यह नवीन दृष्टि प्रशंसनीय है—

''शक्ति असीम है

मैं शक्ति का एक अणु हूँ,

मैं भी असीम हूँ।

एक असीम बूँद

असीम समुद्र को अपने भीतर प्रतिबिम्बित करती है।''

(5) सामाजिक आग्रह :--

व्यक्तिवादी होते हुए भी प्रयोगवाद की जीवन-दृष्टि समग्र है--वह लोक सम्पृक्त है। यह व्यक्ति के सामाजिकरण की ही प्रबल आकांक्षा थी कि अपने अहं के दीप को अज्ञेय ने समष्टि को पंक्ति में रख देना चाहा। अहं का यह विसर्जन सामाजिक आग्रह तो है ही, किन्तु व्यक्ति की प्रतिष्ठा में विश्वास भी व्यक्त करता है--

''यह दीप अकेला स्नेह भरा

है गर्व-भरा मदमाता पर

इसको भी पंक्ति दे दो।''

(6) प्रखर युग बोध:--

सामान्य मानव भी अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील हो उठता है तो कोई कारण नहीं कि समाज का अति संवेदनशील कवि ही इसका अपवाद बने। कवि जितना ही व्यक्तिवादी और विद्रोही क्यों न हो, एक सम्बन्ध-सूत्र से समाज उसे से बाँधे ही रहता है।

(7) आभिजात्य-वर्ग के प्रति विद्रोह :--

आभिजात्य वर्ग के प्रति प्रयोगवादी कवि में अत्यन्त रोष है, और इस रोष को वह खुलकर प्रकट करता है। इनमें आभिजात्य वर्ग के प्रति तीव्र विद्रोह और पददलितों के प्रति सच्ची सहानुभूति के दर्शन होते हैं। आततायी परिवेश को कवि पूरे दम्भ के साथ ललकारता है--

ठहर, ठहर आततायी! ज़रा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार लें--

(8) अनास्था एवं संशय के स्वर :--

पूँजीवादी संस्कृति के काले बादल घिरे-और आस्था का चाँद खो गया। साहित्य में भी अनास्था, निराशा एवं संशय के स्वर जोर पकड़ने लगे क्योंकि पूँजीवाद के प्रति विद्रोह भी असफल हो गया। प्रयोगवाद से पूर्व कविता में कभी इतनी निःशक्तता, इतनी बेबसी एवं घुटन नज़र नहीं आई कि त्रस्त कवि यहाँ चिल्ला उठता --

''मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता।''

(9) अस्तित्व बोध :--

व्यक्ति में जीवन के प्रति अनास्था आ जाने के कारण उसके मन में निजता के ग्रसे जाने की काल्पनिक आशंका भी घर कर गई। यह आत्म-रक्षा की भावना ही अन्त में अस्तित्ववाद के रूप में परिणत हो गई--

''वेदना अस्तित्व की
अवसान की दुर्भावनाएँ--
भव-मरण उत्थान अवनति
दुख-सुख की प्रक्रियाएँ।''

निष्कर्षत :--

प्रयोगवादी कविता ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन के चित्र से अंकित है। प्रयोगवादी कवि ने जिस सच्चाई की शोध एवं उस शोध के सम्प्रेषण में नए माधयम की घोषणा की थी, वह सचमुच इसी मध्यर्गीय समाज के व्यक्ति का सत्य था।

नई कविता

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से सरे संसार की परिस्थितियों में तेजी से परिवर्तन आया। राजनैतिक हलचलों ने अनेक देशों का नाम मिटा दिया, अनेक नये देश अस्तित्व में आए। छोटे-छोटे देश भी स्वाधीन हो गए। देश में नयी सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई। युगीन परिस्थितियों के अनुकुल काव्य चेतना ने भी अंगडायी ली। नयी परिस्थितियों की देन नयी काव्य चेतना को नयी कविता नाम दिया गया।

नयी कविता का आविर्भाव कब व किसके द्वारा हुआ? इसका स्वरूप क्या है? आदि के सन्दर्भ में विभिन्न मत मिलते हैं। वास्तव में नयी कविता आधुनिक भावबोध की कविता है। नयी कविता की भाषा-छंद, विधान, अलंकार आदि सभी जीवन के यथार्थ की देन हैं। यह मानवतावादी कविता है, जो मानव को केन्द्र मानकर विकसित हुई है। इससे उस लघु मानव को प्रतिष्ठा दी गयी है, जो लघु होकर भी विराट व महान है। नये कवियों का भावबोध व सौन्दर्यबोध विशिष्ठ रही है।

नयी कविता प्रयोगवाद का अगला चरण है, पर अनेक बुद्धिजीवी भी प्रयोगवाद व नयी कविता को एक ही समझते हैं तथा सामान्य पाठक भी इसे एक ही समझते हैं। नामकरण के संबंध में सामान्य पाठकों का कथन इस प्रकार भी है कि नयी कविता में ऊलजलूल की दुरूहता है जो उसे नयी बनाती है। आज भी लोग बेकार, और न समझ में आने वाली कविता को ही नयी कविता बताते हैं।

नई कविता की प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ :

नयी कविता, स्वाधीन भारत के नये बुद्धिजीवी के नये मानस की कविता है। ये कविताएँ व्यक्ति व समाज के यथार्थबोध का काव्यात्मक स्वर है। यह भावपक्ष एवं शिल्प दोनों क्षेत्रों में गतिशील हो उठी है — प्रमुख विशेषताओं में निम्न है —

1. लघुमानव की प्रतिष्ठा :

आज की भौतिक प्रगति ने मानव व्यक्तित्व को अत्पन्त बौना बना दिया है, जिससे मानव स्वयं परिचित है। वह अपने खोये हुए अस्तित्व के लिए चिंतित है। वह उदास है फिर भी वह लघु मानस की प्रतिष्ठा के प्रति संकल्पवान है। वह कहता है, हारो मत साहस मत छोड़ो।

भारत भूषण कहते है --

''आजीवन बौने बने रहने की नियति को
वरदान मैंन कर सिर माथे लेना
कितनी महानता है।
मुझे छोड़ इसका मर्म कौन जानेगा,
बौना बने रहकर भी
तारों को जीभ बिराई है।''

2. यथार्थोन्मुखता :

आज का मानव एक विशिष्ठ संक्रमण काल में जी रहा है। वह संशय, अनिश्चय, ऊहापोह, अवसाद, आत्मग्लानि, कुंठाग्रस्त, टूटना, आत्मवेदना आदि के मध्य जी रहा है।

कुबेरनारायण का कथन है —

''मैं जानता हूँ आज यह गान नहीं सवरेंगें।
रूखें पाषाणों की कई जमी दरारों में
छिपकली सी चेतना?
सिसक रही वेदना?
नहीं, आज जीवन के स्वप्न नहीं ठहरेंगे।''

3. आस्थावादिता :

नयी कवि निराशावादी नहीं है। वह भविष्य के प्रति आस्थावान है।

केदारनाथ के अनुसार --

''कल उगूँगा मैं

आज तो कुछ भी नहीं हूँ

एक नन्हा जीत मैं, अज्ञात नव युग का

समुदाय, विश्व होना चाहता हूँ।''

4. राजनीतिक संलग्नता :

आज के जीवन में राजनीति अपरिहार्य बन गयी है। जैसे

डॉ. सुरेशेन्दु की राजनीतिपरक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं --

''देश तो बँटा ही था

टूट गया कांग्रेस

एक बैल इधर गया

दूसरा उधर

हालत बदतर''

5. अस्तित्ववादी दार्शनिक चेतना :

नयी कविता का दर्शन है अस्तित्ववाद। वह स्वतंत्रता के साथ जीने का आकांक्षी है। अज्ञेय जी का कथन है --

''केवल बना रहे विस्तार हमारा बोध

मुक्ति का सीमाहीन खुलेपन का।''

6. वैयक्तिकता :

नया कवि व्यक्तिवादी है। वह अपनी तरह से जीने का अकांक्षी है।

उदाहरणार्थ भारतभूषण अग्रवाल की ये पंक्तियाँ देखें –

''मैं नहीं हूँ कागज की लुग्दी

या कि निरा पिण्ड प्लुस्टिक का

मिट्टी का लोंदा नहीं हूँ,

जिसे तुम साँचे में ढाल दो

मनमाना रूप दो मनचाही चाल दो।''

7. पीड़ा का धरण :

दुःख, पीड़ा आदि आज के वरदान हैं। सामान्यतया व्यक्ति इनसे बचना चाहता है पर नया कवि इनके वरण का आवाहन करता है।

8. क्षणवादी चेतना :

नया कवि अपने आस्तित्व के प्रति शंकालु है। वह वर्तमान पल को क्षण में भोग लेना चाहता है।

9. अविराम बौद्धिकता :

नयी कविता के कतिपय कवियों की रचनाओं में बौद्धिकता का अतिरेक देखने मिलता है।

10. नारी का स्वरूपांकन :

नयी कविताएँ नारी यथार्थपरक है।

डॉ. हरिचरण शर्मा के शब्दों में --

''नयी कविता की नारी तन-मन और आत्मा की त्रिवेणी में स्नान करती है। आनन्द और आकर्षण की भूमि पर खड़ी है। वह मुख्यतः भोग की वस्तु है, मोहिनी है, आदर्श है, आदर्श से परे यथार्थ की प्रतिकृति है।''

11. अदग्य जिजीविषा :

विषम परिस्थिति में भी नयी कविता पलायन की बात नहीं करती अपितु सतत संघर्ष पर जीना चाहती है।

12. शिल्प पक्ष संबंधी विशेषताएँ :

किसी भी कविता की विशेषता में वस्तु और शिल्प दोनों की विशेषता देखी-जाती है। वस्तु या भावपक्ष की विशेषताओं का आकलन करने के बाद शिल्प संबंधी विशेषताओं को भी देखना आवश्यक है। नयी कविता में शिल्प विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(i) भाषा :

नयी कविता की भाषा, आम बोल-चाल की तरह सरल है। वह व्यावहारिक है, व्याकरण के शिकंजे से मुक्त है। उसका शब्द भण्डार व्यापक है। हिन्दी के

विविध प्रकार की शब्दावली के साथ देश-विदेश की भाषाओं के शब्द भी इसमें प्रयुक्त हुए है।

(ii) शैलीगत सादगी :

प्रतीकात्मकता, उपमा-विधान और अलंकार-योजना आदि की दृष्टि से नयी कविता निखर आयी है।

(iii) नूतन काव्यालंकरण :

नयी कविता सामान्यतः तुकान्त है। किन्तु उनमें नूतन प्रवाह है और अभिव्यक्ति की सादगी भी है।

(iv) छंद विधान :

नयी कविता छंद के कठोर बंधन से मुक्त है। सामान्यतः और मुक्त छोंदों का प्रयोग किया गया है।

(v) गद्यात्मकता :

नयी कविता की अभिव्यक्ति गद्यात्मक है। कुछ लोग उसकी गद्यात्मकता को लक्षित कर उसे कविता मानने से इनकार करते हैं। इसमें कुछ ऐसे भी कवि हैं जिनके पास ह्रदय नहीं हैं, जो कविता करने के लिए कविता करते हैं और कविता को बदनाम करते हैं।

निष्कर्ष :

नयी आन्दोलित कविताओं में नयी कविता पर दुरूहता, अस्पष्टता, सूक्ष्मता आदि के आरोष लगाये जाते हैं। सच तो यह है कि जब सामान्य व्यक्ति के जीवन में ही रस सूख जाता है तो सामान्य जन की भावनाओं को अभिव्यक्ति देनेवाली नयी कविता रस-सिक्त कसे हो सकती है। आज का युग बौद्धिक है, अतः नयी कविता में भी बौद्धिकता का समावेश है। कोरी भावुकता व काल्पनिकता का उसमें सर्वथा अभाव है। उसमें जीवन की उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न है।

~ ~ ~ ~ ~

Unit-5

Translation

अनुवाद अभ्यास

पाठ 1

Translate into Hindi :--

One day Prince Siddhartha was playing in the palace-garden. He saw some wild swans flying in the sky. He loved these fine bords very much. Suddenly one of the swans dropped down from the sky and fell at his feet. There was an arrow in its side. Blood was coming out of its body. The prince feld very very unhappy. He took the arrow out of the bird gently. He put some green leaves on the wounded part. The bird slowly opened its eyes and looked at the prince. Now the prince was very happy. The bird dod not die. The prince had given it life again.

Then came to the prince a young man called Devadatta. He was fond of hunting and killing birds and beasts with his arrows. He said to the prince, "I shot that swan, so give it to me." The prince said, "No, the bird is neither yours nor mine. It is free. You shot at it and I saved it. So it is more mine than yours."

एक दिन सिद्धान्त महल के बाग में खेल रहे थे। उसने आकाश में कुछ वन हंसों को उड़ते देखा। उसे ये हंस बहुत प्यारे लगे। अचानक एक हंस ऊपर से उसके पैरों के पास आ कर गिरा। उसके बगल में एक तीर लगा था। शरीर से रक्त बह रहा था। राजकुमार दुखित हुए। पक्षी के शरीर से तीर को उसने धीरे से निकाला। उसमें कुछ हरे पत्तों को छाव में लगाया। धीरे से पक्षी ने आँखें खोला और राजकुमार की ओर देखा। अब राजकुमार प्रसन्न हुए। पक्षी मरा नहीं। राजकुमार ने उसे दूसरा जीवन दिया।

तभी युवक राजकुमार के पास देवदत्त नामक व्यक्ति आये। उसे पक्षियों और बन जीवों का शिकार करना पसन्द था। उसने राजकुमार से कहा--

''मैंने उस हंस को मारा, अतः मुझे वह पक्षी दे दो।'' राजकुमार ने कहा-- 'नहीं, पक्षी न तुम्हारा है न मेरा। वह आज़ाद है। तुमने उसे तीर से मारा-- मैंने उसे बचाया। अतः उस पर तुमसे ज्यादा मेरा अधिकार है।

पाठ 2

Translate into Hindi :--

We are all citizens of India. Each of us is a member of one great community, which included every Indian. We should be grateful, for this privilege and the thought of it should always prevent us from doing anything unworthy.

The citizen has both rights and duties. Some people think only of their rights. They forget their duties on account of their selfishness. But if we don't perform our duties, how can we claim our rights? India gives much to us, and expects much from us in return.

Everyone has a right to have enough good food to eat, if he earns it by his work. Here the State has a great responsibility. It must try to find food for all the people, to be sold at prices which they can afford to pay. The Government should, therefore, try to improve food production by helping the farmers in many ways. India should be able to feed herself without importing food - stuffs from abroad. It should, therefore, be the bounden duty of every citizen to produce more by improving the methods of cultivation by hard work.

The health of the citizens should be maintained well. The Health Department of the Government tries to see that the whole country is free from any disease. It establishes hospitals and dispensaries all over the country. It looks after good water supply and sees that the streets are kept clean. Here also the responsibilities of the citizen are great, Shopkeepers, and citizen should not expose food to dust and flies. It is the duty of every citizen not to foul the drinking water in any way. It is the duty of every person who cooks, not to use dirty vessels in his cooking. We should not throw rubbish on the streets. We should put them into the dust-bins meant for them.

हम सभी भारतीय नागरिक है। हम लोगों से हर एक, बढ़े समुदाय के सदस्य है। जिसमें सभी भारतीय आ जाते है। हमें कृतज्ञ होना चाहिए, ऐसी मान्यता प्राप्त करने का और यह विचार हमें किसी भी प्रकार के तुच्छ काम करने से रोकना चाहिए।

हर नागरिक के अपने कुछ कर्तव्य और अधिकार होते है। कुछ लोग अपने अधिकार की बात ही सोचते हैं। अपने निज स्वार्थ के कारण कुछ लोग कर्तव्य निभाना मूल जाते है, ऐसे में अपना अधिकार कैसे प्राप्त करेंगे? भारत हमें बहुत कुछ देती है और बदले में बहुत कुछ अपेक्षा भी करती है।

पाठ 3

Translate into Hindi :--

It was five o'clock in the evening. Ramdas taking his double-barrelled gun reached the forest in the company of his friends. He asked all his followers to stay on a nearby rock and proceeded ahead alone, making his way through the bushes. He would have gone only 20 or 25 metres ahead, when he heard the bawling of a bull. But before he reached that place, the tigher had killed the bull. The tiger too was wounded. The bull had attacked the tiger with its horns. As evening set in, Ramdas returned to the village with his followers.

Whenever a tiger kills an animal, it comes back the next day to eat it. So Ramdas waited for the tiger for three consecutive days. But it did not come to eat the bull. So Ramdas thought that the tiger would have been wounded so badly, that it could not move about. Even then the did not give up his search for it, because he knew that a wounded tiger is usually a dangerous animal. It was likely to attack the nearby villages and destroy them. So it was necessary to kill it. In this effort Ramdas went to the forest two or three times but returned in vain.

शाम के पाँच बजे, रामदास अपना दुनाली बंदूक लिए जंगल में अपने साथियों के पास गया। उसने अपने सभी साथियों को पास के चट्टान पर रूकने को कहा और खुद अकेले झाड़ियों को काटने हुए आगे निकल गए। 20-25 मीटर की दूरी पर ही उसने साँड का रंभाना सुना, परन्तु वहाँ तक उसके पहुँचने के पहले ही शेर ने सांड को मार डाला। शेर भी धायल हुआ। सांड ने अपने सींग से उसे मारा था। शाम के ढलने ही रामदास अपने साथियों के साथ गाँव वापस आ गए।

जब भी शेर शिकार करता है उसके दूसरे दिन अपने शिकार किए जानवर को खाने आता है। अतः तीन लगातार दिन रामदास शेर का इंतज़ार करते रहे। परन्तु वह सांड को खाने नहीं आया। अतः रामदास ने सोचा शायद शेर बहुत घायल हो गया होगा, उठने में भी असमर्थ होगा। फिर भी उसने अपनी आशा नहीं छोड़ी, क्यों कि उसे मालुम है कि धायल शेर साधारण जानवरों से खतरनाक होता है। वह पास के गाँव पर हमला करके उसे नष्ट कर सकता है। अतः उसे मारना अनिवार्य है। इसी उम्मीद के साथ रामदास दो-तीन बार वन गए परन्तु निराश लौट आए।

पाठ 4

Translate into Hindi :--

During summer the whole of India is very hot, At that time it is very difficult to do any work. People usually go to the hill stations to escape from the heat. Kodaikanal is a popular summer resort in South India. It is situated on the Palani hills. You have to get down at Kodaikanal Road station of the Southern Railway to go to Kodaikanal. This station is between Tiruchirappalli and Madurai. After about 55 Kilo Metres on the plains, one has to go to the hills. There is a well-laid road on the hills. Kodaikanal town is situated at a distance of about 50 Kilo Metres up the hills.

Many people say that the climate of England and that of Kodaikanal are almost the same. You do not have as much heat at Kodaikanal, as you have at Ooty during the day-time. The temperature at night is also not so cold as at Ooty. The natural scenery of Kodaikanal is just like that of England. But on account of better travel facilities more people go go Ooty. Hence there is more calm at Kodaikanal than at Ooty.

भारत में गर्मियों का मौसम बहुत गरम रहता है, उस समय कोई भी काम करना कठिन होता है। गरमी से बचने के लिए आमतौर से लोग पहाड़ी स्टेशन चले जाते है। दक्षिण भारत में कोडैकानल एक ऐसा ही प्रसिद्ध गरमी से बचने का स्थान है। यह पळनी पहाड़ के पास स्थित है। कोडैकानल जाने के लिए दक्षिण रेलवेस के कोडैकानल मार्ग स्टेशन में उतरना होगा। यह स्टोशन तिरुच्चिनापल्ली और मदुरै के बीच में पड़ता है। यहाँ से 55 किलो मीटर सपाट रास्ता पार करके यात्रियों को पहाड़ पर चढ़ना पड़ता है। पहाड़ों पर बढ़िया रास्ता बना है। 50 किलोमीटर की ऊँची पहाड़ पर कोडैकानल बसा है।

कई लोगों का कहना है कि इंगलैंड और कोडैकानल का मौसम समान है। दिन में उतनी गर्मी नहीं लगती जितना ऊटी में पड़ता है। रात में भी उतना ठंडा नहीं रहता जितना ऊटी में कोडैकानल में। प्रकृति सौन्दर्य भी इंगलैंड के समान ही है। परन्तु यात्रियों को बढ़िया सुविधा मिलने के कारण लोग ऊटी ज्यादा जाते है। अतः कोडैकानल में ऊटी से ज्यादा शांत वातावरण है ।

पाठ 5

Translate into Hindi :--

The newspaper tells us what is happening all over the world. Within a very few hours of any great event, no matter in which part of the world it occurs, we can read about it in the newspapers. If there is a famine in India, or an earthquake in Japan, or a railway accident in Australia, we are told about it in the newspapers. The newspapers help to keep the people of different countries in close touch with each other. They play an important part in the world of to-day.

The newspaper tells us what is happening in our country. It tells us what Parliament is doing at Delhi. When there is a big five or a heavy storm some-where, the newspaper tells us about it.

The newspaper tells us what kind of weather we are going to have. It tells us whether the next day is likely to be cloudy or fair, warm or cold.

Shops advertise in the newspapers the things they have to sell. From the advertisements we learn where to buy such things as food. clothing and furniture. We also find out where to go to hear good music or to see a picture. People advertise about houses to let or for sale. Sometimes in the newspapers there are pictures of interesting events that have happened.

समाचार पत्र विश्व की खबरों को हम तक पहुँचाता है। कुछ ही घंटों में, कोई भी घटना, विश्व के किसी भी जगह घटित हुआ होगा, उसे हम समाचार पत्रों में पढ़ सकते है। यदि भारत में सूखा हो, या जापान में भूकम्प, या आस्ट्रेलिया में रेल दुर्घटना हो तो उसे हम समाचार पत्र में पढ़ लेते है। विभिन्न देशों के निवासियों को एक दूसरे के करीब लाने में ये समाचार पत्र सहायक होते है। आज की दुनिया में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

समाचार पत्र हमारे देश में होने वाली बातों को बताती है। दिल्ली संसद की बातों की सूचना भी यही समाचार पत्र देती है।

समाचार पत्रों में मौसम संबंधी जानकारी भी मिलती है। अगले दिन का मौसम बदलों से घिरा होगा या सामान्य, गरम या ढंडा उसकी सूचना भी इसमें मिलती है।

दुकानों में अपने सामानों की जानकारी विज्ञापन के द्वारा देती है। इन विज्ञापनों से हमें पता चलता है कि कहाँ खाद्य पदार्थ खरीदना है, कहाँ कपड़े और कहाँ मेज़ कुर्सियाँ। हमको सुगम संगीत सुनने या पिंच्चर देखने को सूचना भी इनमें मिलती है। लोग घरों को किराए के लिए या बेचने के लिए भी विज्ञापन देते है। कभी-कभी रोचक घटित घटनाओं के फोटो भी समाचार पत्रों में देखा जा सकता है।

पाठ 6

Translate into Hindi :--

Arabia is well known for its camel and horses. The Arab finds the camel particularly useful. It can go without water for weeks and as you know, there are many deserts in Arabia, where it is difficult to find water. So the Arabs use the camel for travelling and for carrying goods over the deserts. It has broad flat feet, with which it can walk easily over the desert sands. Because it is so useful for travelling in the deserts, the camel is called 'the ship of the desert.' The Arab also enjoys eating the camel's flesh and he uses its hair to make his clothes.

The Arab is very fond of his horse and loves it as he would love his own child. The Arabian horse is one of the best in the world. It is beautiful to look at and it can run very fast. It is brought up with great care.

There are a number of large towns in Arabia and of them two are very famous. One is Mecca which is looked upon as a holy place by Muslims. It has a great Mosque called 'Kaaba' and thousands of Muslims go there every year to perform Haji. The second famous city is called Medina. The Prophet lived there for ten years and died and was buried there. It is also considered as a sacred city.

ऊँट और घोड़ों के लिए अरब देश प्रसिद्ध है। खासतौर से ऊँटों का उपयोग अरब में बहुत होता है। वह कई हफ्तों तक बिना पानी के जी सकता है, और अरब में कई रेगिस्तान है, जहाँ पानी मिलना कठिन है। अतः अरब लोग यात्रा के लिए एवं सामान ढो कर जाने के लिए ऊँटों का प्रयोग रेगिस्तान में करते है।

उसके सपाट चौड़ा पैर होते है, जिसके कारण वह आसानी से रेगिस्तान के बालू में चल सकता है। क्योंकि रेगिस्तान में यात्रा के लिए ऊँट उपयोगी है इसलिए ऊँटों को रेगीस्तान का जहाज कहते है। अरब लोग उसके मांस भी खाना पसन्द करते है एवं उसके बाल कों कपड़ा बनाने में प्रयोग करते है।

अरब अपने खुद का बच्चा जैसे घोड़ों को पालते करते है। विश्व में सबसे बढ़िया घोड़ो में अरब है। वह देखने में बहुत अच्छे लगते है और तेज भागने है। उसे बहुत ध्यान से पालते है।

अरब में कई बढ़े शहरों में दो बहुत प्रसिद्ध है। एक मेक्का है जिसे मुस्लिम लोग पूज्यनीय मानते है। इसमें ''काबा'' नामक एक मकबरा है जिसे मुस्लिम लोग हर साल हजारों की संख्या में 'हज' के समय जाते है। दूसरी महानगर का नाम मीडिना है। दस वर्ष एक पुजारी वहाँ रहे और वहीं अन्तिम समय उन्हें दफनाया गया। इस नगर को भी पुण्य तीर्थ स्थान मानते है।

पाठ 7

Translate into Hindi :--

There was a large colony of monkeys in Bareilly gail and their antics were always worth watching. One incident impressed me. A baby monkey managed to come down into our barrack enclosure and he could not mount up the wall again. The warder and some other prisoners caught hold of him and tied a bit of string round his neck. The parents of the little one saw all this from the top of the high wall, and their anger grew. Suddenly one of them, a huge monkey, jumped down and charged almost right into the crowd, which was surrounding the baby monkey. It was an extraordinarily brave thing for the monkey to do, for the warder and the prisoners had sticks and lathies and they were brandishing them about and there was quite a crowd of them. But reckless courage triumphed and the crowd of humans fled terrified, leaving their sticks behind them. The little monkey was rescued.

We had often animal-visitors that were not welcome. Scorpions were frequently found in our cells, especially after a thunderstorm. It was surprising that I was never stung by one, for I would come across them in the most unlikely places-- on my bed, or sitting on a book, which I had just lifted up.

बरेली जेल में बड़ी संख्या में बन्दर थे और उनका विचित्र वर्ताव हमेशा देखने लायक था। एक घटना ने मुझे बहुत प्रभावित किया। एक बन्दर का बच्चा हमारे जेल के कमरे में आ गया, परन्तु उतना ऊँचा दीवार चढ़ कर वापस जाने में असमर्थ रहा। हमारे बार्डर और कुछ अन्य कैदियों ने उसे पकड़ लिया और गले में एक रस्सी बाँधा। बच्चे के माता-पिता ने दूर से ये सब देखा और उनका गुस्सा चढ़ गया। अचानक एक बड़ा बन्दर कूदा और भीड़ के बीच में खड़े हो गए जहाँ बन्दर के बच्चे को धेरे खड़े थे। एक बन्दर का यह बताव साहसी कार्य रहा, क्यों कि वार्डन और अन्य कैदियों के पास लाठी थे जिसे वे चारों ओर घुमा रहे थे और

भीड़ लगी थी। फ़िर भी उस बन्दर को देख कर सारे लोग घबरा गए, अपने हाथ की लाठी को वही फेंक कर दौड़ पड़े। बच्चा बन्दर सुरक्षित रहा।

कई लोग प्रायः जानवरों को देखने आते है जिसका उतना स्वागत नहीं होता। हमारे कमरे में तूफान के बाद विशेष रूप से बिच्छुओं को देखते है। परन्तु आश्चर्य है कि मुझे कभी उसका ढंक नहीं लगा। उनके पसन्दगी स्थान पर कई बार में गुजर चुकी हूँ-- मेरे बिस्तर पर, किसी किताब के ऊपर, जिसे मैंने तभी उठाया हो।

पाठ 8

Translate into Hindi :--

For a long time there was not much demand for rubber. It was used for the tyres of carriage-wheels, and on bicycles; but by the beginning of the Twentieth century, the motorcar had begun to take the place of the horse. All motorcar tyres have to bemade of rubber and of the very best rubber. Rubber plantations were started in Malaya, Ceylon, Burma, India, Indo-China and Duch Indies. The greater part of the industry is in the hands of the British.

The first kind of rubber to be grown in the plantations was not Para Rubber, but a plant called Ceara. Ceara has one advantage, that is, these trees grow quickly, they do not need so much care as the Para and they produce rubber sooner. But the life of a Ceara tree is not long. It is much smaller a tree than the Para, and it does not produce so much of the juice as the Para. Para rubber has now taken the place of Ceara almost everywhere.

The Para tree, when it is full-grown, is about forty feet high, and the trunk about four or five feet round. It is generally grown on low hills. In Ceylon rubber is found to do well at a high as 3000 feet above sea level. Rubber, like Tea, is grown on hills, because hills catch the rain-clouds, and hilly land is easier to drain. It likes an even hot climate, with a heavy but regular rainfall.

बहुत दिनों पहले रबर की माँग थी। उसे गाड़ियों में पहिए के रूप में प्रयोग करते थे और साइकल टायर में प्रयोग करते थे। परन्तु बीसवीं शताब्दी के आते ही कार ने घुड़सवारी का स्थान ले लिया। सभी मोटर कार की टायर रबर से बनने लगी, वह भी बेहतरीन रबर के साथ बनाई जाने लगी। मलय, सिलोन, बर्मा, भारत, इन्डो-चीन और डच में रबर उगाने लगे। इसमें ब्रिटिशें के हाथ सबसे ज्यादा भाग रहा।

रबर खेत का सबसे पहला प्रकार पारा रबर नहीं रहा, अपितु सीरा नामक पौधा था। सीरा का एक उपयोग था, कि ये पेड़ जल्दी उगते थे, उसे पारा जैसा देख-भाल करने की आवश्यकता नहीं थी और रबर उत्पादन भी ज्यादा करते थे। परन्तु सीरा पेड़ का उम्र ज्यादा नहीं है। पारा पेड़ से वह छोटा भी है और पारा जैसा उतना रस भी नहीं देता। आज सीरा का स्थान पारा ने लगभग सभी जगह ले लिया है।

जब पारा पेड़ पूर्ण रूप से उग जाता है, तब वह चालीस फुट लम्बा दीखता है और ताना चार पा पाँच फीट मोटा दीखता है। वह आमतौर से पहाड़ के नीचले भाग में उगना है। सिलोन में समुद्र पानी से लगभग 3000 फीट ऊपर उगता है। चाय जैसा रबर भी पहाड़ों में उगता है क्योंकि पहाड़ी इलाका बरसात के बादलों को खींचता है और पहाड़ों में पानी का बहाव सरल होता है। उसे सामान्य गरम मौसम पसन्द है, जिसमें मुसलादार परन्तु नियमित बरसात होता है।

पाठ 9

Translate into Hindi :--

King Dasaratha had three queens -- Kausalya, Kaikeyi and Sumitra. Rama was the son of the eldest queen Kausalya; Bharata was the son of Kaikeyi; while Sumitra had two sons, Lakshmana and Satrughna. Lakshmana was devoted to Rama and was always in his company; while Satrughna was specially deoted to Bharata. The four brothers lived in great friendship, and the three younger brothers worshipped their eldest brother Rama.

As king Dasaratha was now getting old, he esolved to regire and confer the sovereignity upon Rama. Great preparation was made for the coronation of Rama. There was much rejoicing and bustle in the city, in the midst of which the second queen, Kaikeyi fell into great dejection. Once upon a time the had saved king Dasaratha by taking care of him during his serious illness, and he had showed his gratitude by promising to grant any two boons she might ask. Hitherto Kaikeyi had made no claim, but now, on hearing that Rama was to be made king, she made two requests--the first, that Bharata should be made king and the second, the Rama should be banished to the forest for fourteen years.

King Dasaratha could not go back upon his promise. So Rama had to go to the forest. Rama was so good that the population was plunged in grief at this decision. King Dasaratha became ill with sorrow for the banishment of Rama and a few days later he died.

राजा दशरथ की तीन रानियाँ थी-- कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा। राम बड़ी रानी कौसल्या का पुत्र था, भरत कैकेयी के पुत्र थे, जबकि सुमित्रा के दो पुत्र थे लक्षमण और शत्रुघन। लक्ष्मण हमेशा राम के समर्थ रहे और सदैव उनके साथ रहते थे। जब कि शत्रुघन हमेशा भरत को पसन्द करते थे। चारों भाई मित्र के समान रहते थे और छोटे तीनों भाइयों ने राम को बहुत चाहा।

राजा दशरथ बूढ़े होने लगे तो उन्होंने तय किया की वे राम को राज्याधिकार बनायेंगे। धूमधाम से राम का पट्टाभिषेक कार्यक्रम की तैयारी होने लगी। शहर में उल्लास और आनन्द भरने लगा, इस बीच द्वितीय रानी कैकेयी गहरी शोक से भर गई। एक समय जब राजा दशरथ बीमार पड़ गए थे, तब रानी कैकेयी ने उनकी बड़ी सेवा की थी तब राजा ने उन्हें दो वर अपनी कृतज्ञता हेतु माँगने को कहा था। इस समय कैकेयी ने कुछ नहीं माँगा, परन्तु अब जब राम को राज्याधिकार देने का निर्णय उठाया तब वह राजा से दो प्रार्थना करने लगी -- पहला भरत को राज्याधिकार दे और राम को चौदह वर्ष के लिए वन भेजे।

राजा दशरथ अपने वचन से हट नहीं पाए। अतः राम को वन जाना पड़ा। राम इतने अच्छे थे कि पूरा राज्य उसके जाने का शोक मानने लगा। राजा दशरथ बिमार पड़ गए और पुत्र शोक में थोड़े दिनों बाद मर गए।

पाठ 10

Translate into Hindi :--

In grandmothers' tales the crow is always described as knowing about events much before we some to know of them. Whether it is so I cannot say. But since some birds and beasts have keener sight, smell and hearing than humanbeings, it is possible they can sense somethings that we cannot. In the year nineteen hundred and thirtyfour, a violent earthquake shook Bihar and caused terrible destruction. It was bright sunny day in January and there was no hint that any such disaster would occur. The flowers were in full bloom and the gardens wore a pleasant look. Suddenly hundreds and hundreds of crows started yelling in a deep and hoarse tone. I was wondering what had happened to them, when within ten minutes, the earth shook violently, houses collapsed and many people were killed.

Like parrots, the common crows live in large groups. They build their nests also in company. Crows not only live as a community, but have some rules, which every member of the group has to obey. You have all seen how, when one crow is hurt, a good many other crows immediately collect round it. If you keep watch, you may also see a crow being

punished. It is almost like a court scene. Several crows collect in a field. They all seem to discuss something. Then most of the crows fly away and only the 'culprit' and a few other crows remain. They punish the guilty crow by pecking him with their beaks. But when it is a question of fighting an outsider, the crows team up and offer a united front.

नाना-नानियों की कहानियों में एक विश्वास पूर्ण घटना का वर्णन मिलता है जिसमें कौए को दूर्दर्शी माना जाता है। वह सच है या नहीं मुझे नहीं पता। परन्तु कुछ पक्षियों के पास देखने की, सूँगने की और सुनने की तीव्र प्रतिक्रिया मनुष्यों जैसे मिलती है, मनुष्यों में यह सम्भव है, परन्तु हम से ज्यादा कौए पता लगा लेते है। उन्नीस सौ चौवालीस में एक बड़ा भूकम्प बिहार में देखा गया जिससे बहुत शति पहुँची, वह एक उज्जवल प्रकाशमय जनवरी का दिन था और इस क्षति की सूचना बिलकुल नहीं मिला। पुष्प खिले थे और बगीचा हरियाली से भर गया था। अचानक सौ से ज्यादा कौए जोर-जोर से चिल्लाने लगे। मैं आश्चर्य में पड़ गया क्या हो गया था कौओं को? दस मिनट में पृथ्वी हिली और घर गिरने लगे और कई लोग मर गए।

तोते की तरह ही कौए भी बड़ी समुदाय में घोसला बनाते है। कौए समूह में रहते ही नहीं अपितु कुछ नियमों को भी बनाए है, जिसे समुदाय के सभी लोगों को पालन करना पड़ता है। हम लोगों ने देखा है, यदि एक कौए को चोट लगता है तो सभी उसे घेर कर चिल्लाने लगते है। ध्यान से देखो तो लगेगा कि कौए को सज़ा दी जा रही है। अदालत जैसा मौहाल लगता है। कई कौए मैदान में आ जाते है, लगता है जेसे सभी विचार-विमर्श कर रहे है। फिर कई कौए उड़ जाते है और अपराधी कौआ और कुछ उसके साथी वही ठहर जाते है। वे सभी अपराधी कौए को चोंच से मारकर सज़ा देते है। परन्तु यदि समुदाय के बाहर का कोई हो तो एक जुट हो कर एकता का प्रदर्शन करते है।

पाठ 11

Translate into Hindi :--

Haider Ali began his life as an ordinary soldier. When he joined the army of Mysore, the experience he had obtained served him in such good stead that he soon became a General. But Haider Ali was not content to remain a General. The Raja of Mysore was then a minor; his uncle endeavoured to usurp the throne. Haider Ali taking sides with the young Raja, defeated the uncle, and in the end himself secured the throne.

Haider Ali now employed Frenchmen to train his army in the European mode of warfare. He plundered parts of the Karnatic and started on his ambitious career of conquering the whole of South India, At that time the neighbouring powers formed an alliance against

him, so as to check his growing strength. The Mahrattas and the Nizam were the first to declare war on him and the English followed them. Haider bribed the Mahrattas and persuaded them to give up their alliance with the English. In the same was he offered very high terms to the Nizam and induced him to come over to his side. The English had now to fight single-handed.

एक सामान्य सैनिक के रूप में हैदरअली का जीवन आरम्भ हुआ। जब वह मैसूर सैनिक में भर्ती हुए तब सैनिक के ये अनुभव उसके उतने काम आए कि वह शीघ्र महासैनिक बन गया। परन्तु महासैनिक की पदवी से हैदरअली संतुष्ठ नहीं हुए। मैसूर के होने वाला राजा छोटे थे, उनके मामा रक्षाधिकार छीनना चाहते थे। हैदरअली ने राजकुमार की सहायता करके उनके मामा को हराया और बाद में खुद वहाँ का राजा बन गए।

अब हैदर अली ने लड़ाई के पाश्चात्य तरीके के को अपनाने के लिए अपने दरबार में फैंच लोगों की नियुक्ति की। कर्नाटक के कईं प्रदेशों को जीतने के बाद उसने सम्पूर्ण दक्षिण भारत को जीतने की अभिलाषा बनाये रखा। उसी समय पडौसी देशों ने उसके विरुद्ध काम करना शुरू किया। ताकि उसके शक्ति का अन्दाज़ा लगा पाए। इसमें मराठा और निज़ाम ने सबसे पहले उस पर हमला किया, फिर अंग्रेज़ों ने हमला किया। तब निज़ाम को लालच देकर उसने अपनी ओर उन्हें खींच लिया। अब अंग्रेज़ अकेले रह गए।

पाठ 12

Translate into Hindi :--

If we look towards the east early in the morning, just as it is becoming bright, we shall see the Sun appear as a great ball of fire. He seems to rise higher and higher in the sky, until at noon or mid-day he is right above our heads. After that he seems to sink slowly lower and lower on the other side until evening. Then he goes out of sight in the west and it is night instead of day.

Next morning he appears again, and seems to travel over our heads in the same way. This goes on day after day, year after year.

Perhaps you know that in fact it is not the sun that has been moving. It is the earth, which turns round on its own axis once a day or once in twenty four hours. When the sun can be seen, we say that it is day-time. When he is out of sight we say that it is night.

As the earth turns round on its own axis, the part on which we live it at one time turned towards the sun, and the sun shines upon it. This is the day-time. At another time it is turned away from the sun, and the sun does not shine on it. That is the night.

यदि सवेरे पूर्व की ओर देखकर खड़े हो जाए, तो हम देखते है कि वह उज्जवल प्रकाश, धीरे-धीरे सूर्य को, अग्नि का गोला में परिणित करने लगता है। वह धीरे-धीरे आकाश की ऊँचाई पर चढ़ जाता और दोपहार ठीक हमारे सिर के ऊपर दीखते है, उसके बाद वे धीरे-धीरे पश्चिम की ओर उतरते हुए नज़र आते है। फिर पश्चिम की ओर विलीन हो जाते है और रात का आगमन होता है।

दूसरे दिन सबेरे फिर वही शुरु होता है, हमारे ऊपर से यात्रा करते हुए उसी प्रकार विलीन हो जाते है। यह क्रम हर रोज, वर्षों से चला आ रहा है।

वास्तव में यह तथ्य है कि सूर्य खिसकता नहीं है, अपितु धरती अपने धुरी पर घूमती है दिन भर या चौबीस घंटों। जब हम सूर्य को देखते है तब कहते है दिन है जब वह आँखों से ओझल हो जाता है तब कहते है वह रात है।

भूमि अपने धुरी पर घूमती है और जिस स्थान पर हम रहते है वह जब सूर्य की ओर घूमती है तब सूर्य की किरणे हम पर पड़ती है, उसी को हम दिन कहते है। उसके विपरीत जब सूर्य से विमुख हो जाती है तब उसकी किरणे भी हम पर नहीं पड़ती। तब रात कहलाता है।

पाठ 13

Translate into Hindi :--

Two brothers named Kasim and Ali Baba, once lived in a Persian town. Kasim had married a rich lady and was one of the richest men in the town. Ali Baba, however maried a poor lady, and had to work hard for his living, by cutting wood in the forest and selling it in the town.

One day as Ali Baba was cutting wood, he saw a large party of horsemen coming through the forest. Fearing that they were robbers, he climbed up a tree and hid himself.

A few yards away from the tree there was a cliff. When the band of horsemen came up to this cliff, they stopped and dismounted, and tied up their horses. Then each man took from his horse a bag, which seemed so heavy that Ali Baba felt sure that it was filled with gold and silver.

The man who seemed to be captain of the band went through the trees and bushes that stood in front of the rock, and called out "Open Sesame" Then, to Ali Baba's great surprise, a hidden door opened in the ace of the rock and all the men went inside. Ali Baba counted them as they went in and found that they were forty in all.

एक समय कासिम और अलि बाबा पारस टाऊण में रहते थे। कासिम एक अमीर धराने की लड़की से विवाह करके पारस का सबसे बढ़ा अमीर बना। अलिबाबा एक गरीब लड़की से शादी करके खूब मेहनत करने लगे, लकड़ियों को काट कर शहर में बेचना पड़ा।

एक दिन अलिबाबा लकड़ियों को काटते समय वन से घुड़सवारियों को आते देखा। उन्हें चोर समझ कर वह एक पेड़ के तने पर चढ़ कर छुप गया।

पेड़ के कुछ ही दूरी पर एक चट्टान था। घुड़-सवारी उस चट्टान के पास पहुँचते ही रूक गए और सबने अपने घोड़े को बाँधा। फिर सबने अपने घोड़े के पीठ से बोरी निकाला। वह इतना भारी था कि अलिबाबा को लगा जरूर उसमें सोना चाँदी होगा।

उस समूह के नेता पेड़ों और झाड़ियों को काटते हुए उस चट्टान के सामने जा कर खड़े हो गए। और कहा-- 'खुल जा सी सम' फिर, बड़े आश्चर्य के साथ अलि बाबा ने देखा कि उस चट्टान से एक छिपा द्वार खुला और सभी अन्दर जाने लगे। अली बाबा ने उन को अन्दर जाने समय गिना तो पूरे चालीस लोग निकले।

पाठ 14

Translate into Hindi :--

Aeroplanes play a great part in wars. They are used for scouting purposes to see the enemy's positions and direct the fire of the batteries. They are used for bombing the enemy's troops and trenches. Its progress has been rapid. Larger and more powerful aeroplanes have been built, which have attained very high speeds, and which can stay in the air for moe hours. The ordinary speed at which they can travel is 126 miles an hour. In special flights an aeroplane has flown over 500 miles an hour. The Atlantic has been flown over and flights have been made from England to Australia in under two days. Regular air services have now been established between continents. India sends and receives letters by regular air-mail.

Travel by air is now swift, comfortable and safe through it is not yet very cheap. That too, no doubt, will come about. The modern aeroplane can carry as many as eighty passengers and in almost as much comfort as a railway train or a streamer. The modern air-liner with its crew, passengers, luggage and mail flies in safety thousands of miles. Thus man has conquered the air.

The aeroplane has at present one great defect. It requires a large open space for taking off or coming down. It has to un along the ground for some distance both when flying up and when coming down. Some success has been attained in the effort to remove this dificulty.

युद्ध के दौरान हवाई जहाजों की मुख्य भूमिका रहती है। उससे दुश्मनों की स्थिति को भेद कर देखने का काम किया जाता है और फिर अग्नि के तोपो को निर्देश दिया जाता है। इसका प्रयोग दुश्मनों के तोपों और उनके खाइयों को नष्ट करने के लिए प्रयोग करते है। इसकी प्रगति तीव्र रूप से हो रहा है। बढ़े और शक्तिशाली हवाई जहाजों का निर्माण हुआ है, जिसमें तीव्र गति है, और जो अन्तरिक्ष में एक घण्टे से ज्यादा ठहर सकती है। सामान्य रूप से ये 126 मील तक उड़ सकती है। कुछ विशेष जहाज़ों में हवाई जहाज़ 500 मील की दूरी एक घण्टे में तैय किया है। अट्लाण्टिक से ऊपर उड़ते हुए जहाजों ने दो दिन में इंगलैंड से आस्ट्रेलिया का सफर तय किया है। आज नियमित यात्रा दोनों देशों के बीच होता है। भारत से नियमित डाक दोनों देशों में इसके माध्यम से होता है।

हवाई जहाजों की यात्रा सुविधाजनक, शीघ्र और सुरक्षित होते हुए भी सस्ते नहीं है। उसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। आधुनिक हवाई जहाज में 80 यात्रियाँ बैठ सकते है और उन्हें वे सभी सुविधाएँ उपलब्ध है जो रेल की यात्रा या स्टीमर की यात्रा दौरान मिलती है। आज हवाई जहाज अपने फौज के साथ, यात्रियाँ एवं उनके सामानों के साथ हज़ारों मील सुरक्षा के साथ उड़ सकती है। इस प्रकार मानव ने आकाश को भी अपने बस में कर लिया है।

हवाई जहाज में एक ही कमी है। उसे उड़ने और उतरने के लिए बहुत बड़ा स्थान चाहिए। उसे बहुत दूर रास्ते पर दौड़ाना पड़ता है उड़ने के पहले और उतरने के पूर्व। इस कठिनाई को बहुत कम हटाने का प्रयास किया गया है।

पाठ 15

Translate into Hindi :--

Ever since I have grown up, Ihave never desired to smoke and have always regarded the habit of smoking as barbarous, dirty and harmful. I have never understood why there is such a desire for smoking throughout the world I cannot bear to travel in a compartment full of people smoking. I feel checked.

But much more serious than this was the one I was guilty of a little later. I stole the coppers (coins) when I was twelve or thirteen or possibly less. The other theft was committed when I was fifteen. In this case I stole a bit of gold out of my brother's armlet. This brother had run into a debt of about twenty five rupees. He had on his arm an armlet of solid gold. It was not dificult of clip a bit out of it.

Well, it was done, and the debt cleared. But this caused me sorow moe than I could bear I resolved never a steal again. I also made up my mind to confess it to my father. But I did not dare to speak. Not that I was afraid of my father beating me. No, I do not recall his ever having beaten any of us. I was afraid of the pain that I should cause him. But I felt that the risk should be taken and that there could not be a cllensing without a clean confession.

जब से मैं बड़ा हुआ हूँ तब से धूम्रपान की कभी इच्छा नहीं की और हमेशा उसे असभ्य, गन्धा और हानिकारक ही समझा। मुझे समझ में नहीं आता है क्यों संसार के लोग धूम्रपान को पसन्द करते है, मैं तो धूम्रपान पीने वालों के साथ सफर भी नहीं कर पाता, अपने को असहाय समझता हूँ।

परन्तु कुछ समय के बाद मुझे एक बात पर ग्लानि हुई, जब मैं बारह या तेरह साल का था तब मैंने पैसे चुराए। उस समय मैंने अपने भाई की कड़ाई में से सोना चोरी की। मेरे भाई पच्चीस रूपय के लिए कर्ज में पड़े गए। उसके हाथ में सोने की कड़ाई थी, उससे कनरना उतना आसान नहीं था।

परन्तु यह सम्भव हुआ और वे कर्ज से मुक्त हुए। इससे मुझे बहुत दुःख पहुँचा और निर्णय किया कि अब कभी चोरी नहीं करूँगा। मैंने मन में सोचा कि पापा को बता दे, परन्तु मैं बिलकुल इस पर बात नहीं कर पाया। पापा मारेंगे इसलिए डर नहीं था, अपितु पापा को किसी पर हाथ उठाते हुए भी मैंने नहीं देखा। मुझे इस बात का डर था कि सच्चाई बता कर उन्हें दर्द न देदूँ परन्तु मुझे लगा कि बताना ही सही है जिससे मैं अपने भीतर की सफ़ाई कर सहूँ।

पाठ 16

Translate into Hindi :--

To the Hindus the Dussarah (Dashara) Festival is what Christmas is to the Christians. For ten days and nights the festival is observed, all over India, but most splendidly in Mysore.

Mysore is among the richest of the States. Its elephants, its sandalwood, its gold, silver and copper, are all famed for being the finest of their kind. Its flowers and fruits are the choicest in India. No wonder, then, that this great festival is celebrated with more splendour in Mysore than elsewhere. The Maharaja of Mysore pays great respect to the old customs of his family. He holds his court with great pomp at this time; the ancestral ivory throne is used at this festival only. Thee is State-worship of the Gods, with wrestling and dancing, music, lectures and fire works. It is a wondrous and splendid time; followed by three nights of Durbar.

हिन्दुओं के लिए दशहरा उतना ही महत्वपूर्ण है जितना ईसाइयों के लिए क्रिसमस। यह त्योहार दस दिन और दस रात मनाई जाती है सम्पूर्ण भारत में, विशेष रूप से मैसूर में।

अपने राज्य में मैसूर सबसे महँगा शहर है। वहाँ के हाथी, चन्दन की लकड़ी, सोना, चाँदी, और ताँबा सबसे बेहतरीन किसम का माना जाता है। भारत के चुने हुए पुष्प और फल वहाँ उगते है। फिर इसमें आश्चर्य क्या, कि यह महान त्योहार पूरे उल्लास के साथ मैसूर में जितना मनाया जाता है उतना अन्य कहीं नहीं। मैसूर के महाराजा अपने पारम्परिक रिवाज़ों की कदर करते थे। ऐसे समय में वे दरबार में धूमधाम मचा देते थे, अपने वंशज का हाथी दाँत का बना सिंहासन पर बैठते थे, सम्पूर्ण शहर के आप ईश्वर बन जाते थे, जिसमें लड़ाई का प्रदर्शन, नृत्य, संगीत, भाषण और अतिशबाजियाँ चलती थी। बहुत खुशी और सुखद अवसर होता था। जिसमें लगातार तीन रात दरबार बना रहता था।

पाठ 17

Translate into Hindi :--

In India 10 percent of the people either till the soil or are employed in work connected wish farming. Most of them are not rich; so, to buy seeds and stock and to carry on their business, they are often forced to borrow money.

The village banker lends them money and for security the farmers must pledge their land with him. But since the farmers often are simple and ignorant, and the bankers greedy and cunning, thebankers make the farmer pay very high interest on the loans he takes, with the result that a farmer who has once started borrowing money, finds it harder and harder to get out of debt.

The Government has lately made certain laws, to stop the land from being too easily transferred to the money-lenders. In some parts of India it cannot be transferred at all. This saves the farmer from the loss of his farm, but it also prevents him from getting money to cultivate it. To help him in this, the co-operative system is being tried.

भारत में 10% जनसंख्या या तो खेत में काम करते या कृषि होते है। अधिकतर कोई अमीर नहीं होते, अतः बीजों को खरीदने और भण्डार में रखने एवं व्यापार करने के लिए ज्यादातर लोग कर्ज में पैसा लेने में मजबूर होते है।

ग्रामीण बैंक इन्हें पैसा देती है, जिसके बदले में इन्हे अपना खेत सुरक्षा हेतु गिरवी रखना पड़ता है। परन्तु क्योंकि कृषि लोग सीधे और बेचारे होते है और बैंक वाले लालची और चालाक होते है, वे इन्हें बहुत बड़े ब्याज़ पर पैसा देती है, फलस्वरूप वे कृषिक जो पैसा उधार लेना शुरू करते है उन्हें अपने कर्ज से मुक्ति पाने के लिए कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

सरकार ने अभी नियम बनाया है, खेतों को उधार देने वाले के कब्जे में जाने से बचाये। भारत के कुछ भागों में खेतों का ग्रामान्तरन सम्भव ही नहीं है। इससे कृषिक लोगों का जमीन बचा रहता है, परन्तु इससे पैसा प्राप्त करके उपजाऊ रूकावट भी होती है। अतः उन्हें उभारने के लिए सामुदायिक प्रणाली की स्थापना की गई है।

पाठ 18

Translate into Hindi :--

The wind blows so fiercely on Mount Everest that it is almost impossible for a man even to stand there. At night the cold is very severe. During snow-storm, heaps of ice fall from the sides of the mountain.

Even if the weather happens to be good, there are other dangers and blockades. When one goes higher and higher, it becomes more and more dificult for him to breathe. It is so,

because as you go higher and higher the air becomes lighter or less dense. The oxygen content slowly lessens and it becomes impossible for a man to live without extra oxygen.

As it is very dificult to breathe on the Everest, when compared with smaller mountains, the work of the climbers on this mountain becomes much more arduous. The fact is that after reaching a certain height, it becomes necessary for him to draw oxygen from the cylinder for breathing. He has to carry this cylinder on his back. But this is so heavy that the mountaineer cannot go up, always taking enough oxygen necessary for him.

The result is that he has to walk very slowly. That means he has to spend more time on the mountain. As such the necessity for more food and other materials increases and all these things have to be moved up along with him.

Further, on account of the extremely cold climate it is very difficult to stay on the mountain for a long duration. The severe cold and the biting wind almost take away the strength of the mountaineer. Often ice falls so heavily, that it becomes quite impossible for him to climb up.

माऊंट एवरेस्ट में इतने जोरों की हवा बहती है कि वहाँ मानव खड़ा नहीं रह पाता। रात को ठण्ड भी भयानक पड़ती है। ओले गिरने के समय, पर्वतों से बड़े-बड़े बर्फ के टुकड़े गिरते है।

यदि मौसम बढ़िया रहा तो वहाँ भी खतरनाक और रुकावटें है। जब कोई और ऊँचाई पर चढ़ता है तो स्वाँस लेने में भी कठिनाई होने लगती है। इसका कारण यह है कि जैसे-कैसे हम ऊँचाई पर जाते है हवा का दबाव कम होने लगता है। हवा हल्की हो जाती है। उसमें ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है और आक्सिजन के अभाव में मानव का जीना दुर्लभ हो जाता है।

छोटे पहाड़ों की तुलना में एवरेस्ट में साँस लेना जहाँ कठिन हो जाता है, वहाँ मानव को ऐसे पहाड़ों पर चढ़ना भी कठिन हो जाता है। इसका कारण है कि कुछ ऊँचाई तक पहुँचते ही, मानव को अपने सिलन्डर से आक्सिजन निकालकर साँस लेना पड़ जाता है। उसे यह सिलण्डर अपने पीठ पर बोना पड़ता है। परन्तु यह इतना भारी होता है कि इसमें चढ़ने वाला चढ़ नहीं पाता। हमेशा उसे आवश्यकतानुसार ऑक्सीजन लेकर चढ़ना पड़ता है।

परिणामस्वरूप वह धीरे चढ़ता है। अर्थात उसे पहाड़ पर अधिक समय बिताना पड़ता है। इसके कारण अधिक खाद्य पदार्थ और अन्य सामग्री की माँग बढ़ जाता है, और इन सब को ढोते हुए ही उसे ऊपर चढ़ना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त बहुत ठंडा मौसम होने के कारण, पहाड़ों में बहुत समय तक ठहना कठिन हो जाता है। तीव्र ठंडा और चुबती हवा के कारण चढ़ने वालों की शक्ति गिरने लगाता है। अक्सर ओले मुसलाधार पड़ता है, कि चढ़ने वालों को असम्भव सा लगता है।

पाठ 19

Translate into Hindi :--

Once upon a time there was a young king named Dushyanta in the city of Hastinapura. He was a descendant of the great Hindu king Puru. He ruled wisely and well in peace-time and was a brave leader in war. He was very fond of hunting and whenever he could spare time from the afairs of State, he used to go into the forests with a few friends and followers, camping out at night, and often staying there for days and even weeks.

On one of these expeditions, the king left his companions behind, while chasing a fine stag. The stag was very swift and the chase was a long one; but at last the king's horse caught up the terrified animal. The king had fixed an arrow to his bow and was just about to shoot, when two Brahmin youths stepped out in front of the stag and begged the king to have pity on helpless animals.

The king was touched by their earnestness and let the stag go. After thanking and blessing him the two young Brahmins tole the king that he was near the ashram of the holy Kanva and invited him to rest and refresh himself there.

The king accepted their hospitality and walked forward in the direction of Kanva's hermitage, charmed by the beauty and peacefulness of the surroundings.

एक समय की बात है, हस्तिनापुर राज्य के राजा युवा दुष्यन्त थे। वे महान हिन्दू राजा पुरू के वंशज थे। शांति के समय उन्होंने सुचारू रूप से बड़े अच्छे दंग से राज्य चलाया, और युद्ध के दौरान वीर नेता बनकर लड़े। उन्हें शिकार करना बहुत पसन्द था, और जब भी राज्यकीय कार्यों से फुरसत मिलती वे कुछ मित्रों एवं अनुयायियों को लिए शिकार करने रात को निकल जाने और अक्सर वहाँ कई दिन हफ्ते बिताने।

ऐसे ही एक बार शिकार के लिए निकलते वक्त अपने एक साथी को शिकारी के पीछे दौड़ते समय। वे पीछे छोड़ आए। वह शिकारी बहुत तेज़ भागा, उसका पीछा करना लम्बा दौड़ रहा, अन्त में राजा के घोड़ों ने

उस भयंकर जानवर को पकड़ ही लिया। राजा अपने तीर को बाण में रख कर चलाने ही वाले थे, जब दो ब्राह्मण उनके सामने खड़े हो कर गिड़-गिडाने लगे कि बेसहारा जानवरों को छोड़ दे।

राजा को उनकी बातों पर दया आ गई और उसने शिकारी को छोड़ दिया। राजा को अपना कृतज्ञता प्रकट करने के बाद वे दो ब्राह्मण उन्हेंपास के पवित्र आश्रम में आने को कहा जहाँ कन्वर रहते थे, वहाँ उन्हें आराम करके खा-पी कर जाने को कहा।

राजा ने उनका अतित्थ्य स्वीकारा और कनवर आश्रम की ओर प्रस्थान किए। वहाँ चारों ओर के प्रकृति सौन्दर्य एवं शांति वातावरण से वे प्रभावित हुए।

पाठ 20

Translate into Hindi :--

In August 1914 began the most terrible war that the world had ever seen. Germany helped by Austria, Bulgaria and Turkey wickedly attacked the British Empire, which was helped by France, Italy and Russia and several smaller countries. All parts of the British Empire including India, sprang to arms. Germany hoped that India would rebel against the King Emperor andhelp to defeat him. On the contrary, India by her loyalty showed how much she valued her membership of the British Commonwealth. Apart from the devotion which she owed to the Emperor, she well knew that German Empire rested on the power of the sword, while the British Empire rested on the spirit of liberty and self-determination. Her people and princes therefore joined heartily with Australia, Canada, South Africa and New Zealand in helping England to defeat the Germans and their allies. If Germany had won, she sould have become master of India, and most of the world; but the loyalty and active co-operation of India and of the rest of the Empire completely shattered German ambitions.

अगस्त 1914 का भयंकर युद्ध संसार ने कभी नहीं देखा होगा। आस्ट्रिया, बलगेरीया और टर्की के सहयोग से जर्मन ने ब्रिटिश साम्राज्य पर अन्यायपूर्ण हमला किया। जिसका समर्थन फ्राँस, इटली और रूस जैसे अनेक छोटे देशों ने किया। ब्रिटिशों के सभी भाग, भारत सहित लड़ाई में कूद पड़े। जर्मन ने उम्मीद की कि भारत उस राज्य साम्राट का विरुद्ध करके उनको हराने में सहायता प्रदान करेगी। परन्तु उसके विपरीत, भारत ने ब्रिटिश राष्ट्र परिवार के प्रति अपनी इमानदारी को दिखाया। राष्ट्र के प्रति अपनी समर्पण के अतिरिक्त उसे मालुम था कि, जहाँ जर्मन को अपनी तलवार की ताकत पर विश्वास था वहाँ ब्रिटिश राष्ट्र अपने अधिकार और स्व-निर्णय पर विश्वास करती थी। अतः उनके लोग और राजकुमारों ने आस्ट्रेलिया, कनड़ा, दक्षिण

अफ्रिका और न्यूसीलैंड के सहयोग से इंग्लैंड की सहायता जर्मन और उनके साथियों को हराने में किया। यदि जर्मन जीत जाती तो भारत पर राज्य करती और लगभग सम्पूर्ण संसार उसके कब्जे में होती, परन्तु भारत की वफ़ादारी और सहयोग ने जर्मन की इच्छा को तितर-बितर कर दिया।

~ ~ ~ ~ ~ ~